RNI Number : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

Dhingra Family Foundation
USA

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 9, अंक : 35
अक्टूबर-दिसम्बर 2024
मूल्य 50 रुपये

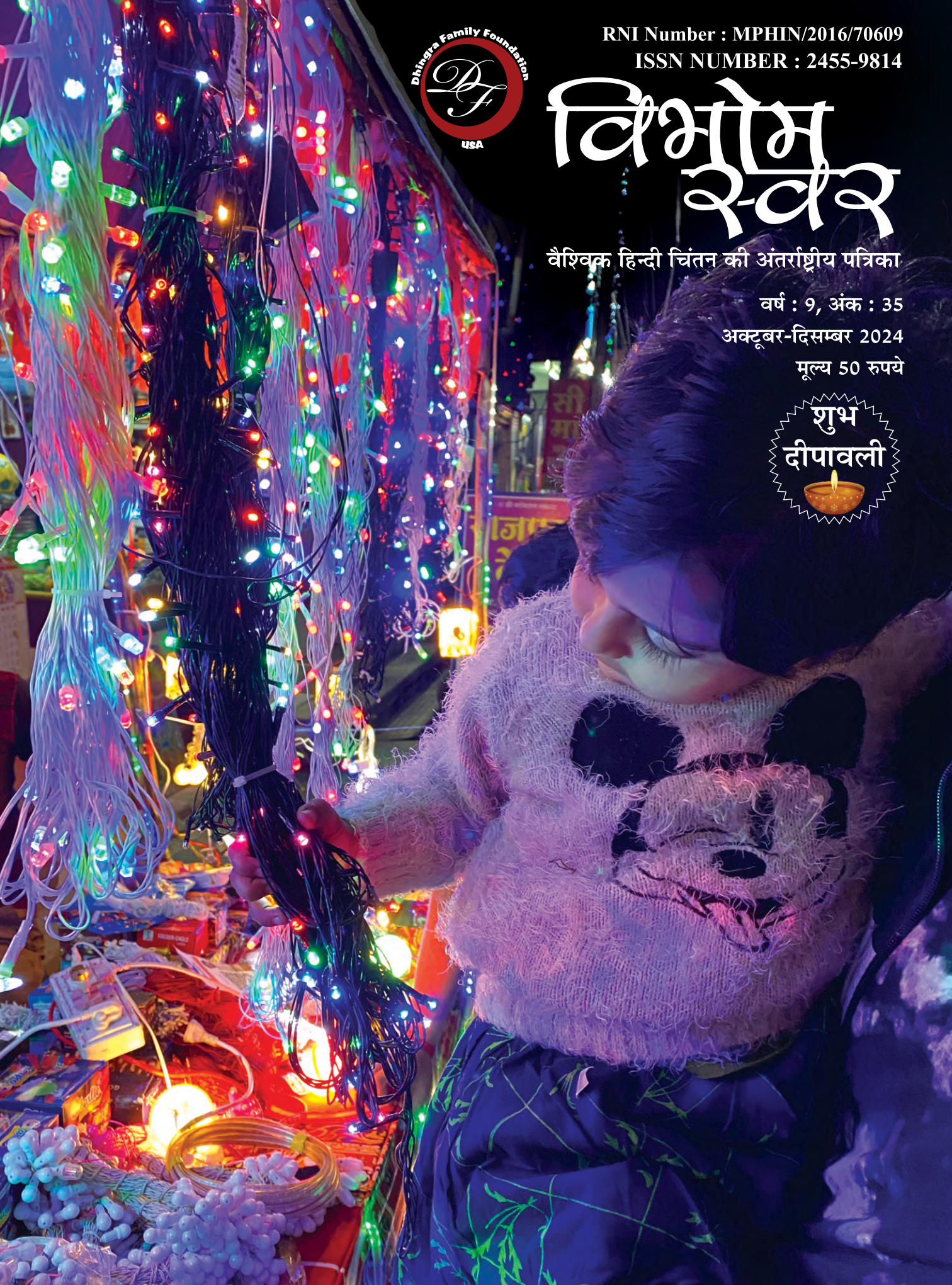

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

फूल को याद थे सारे मौसम
कविता संग्रह
लेखक - विजय बहादुर सिंह
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2024

काली धार
उपन्यास
लेखक - महेश कटारे
मूल्य- 450 रुपये, वर्ष- 2024

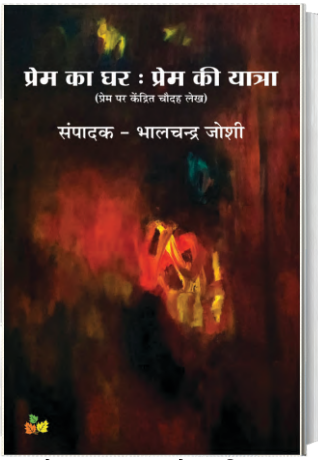

प्रेम का घर - प्रेम की यात्रा
निबंध
संपादक - भालचन्द्र जोशी
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

सुधा ओम ढींगरा का साहित्य -
महत्त्व एवं मूल्यांकन
प्रो. नवीन चन्द्र लोहानी, डॉ. योगेन्द्र सिंह
मूल्य- 500 रुपये, वर्ष- 2024

दण्ड से न्याय तक
शोध
लेखक - प्रवीण कक्कड़
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

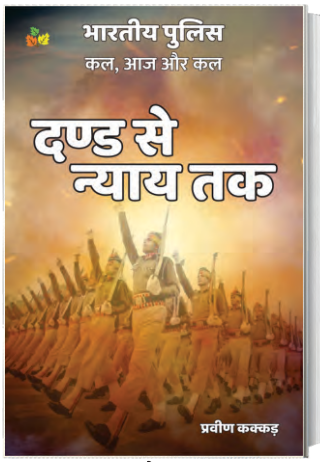

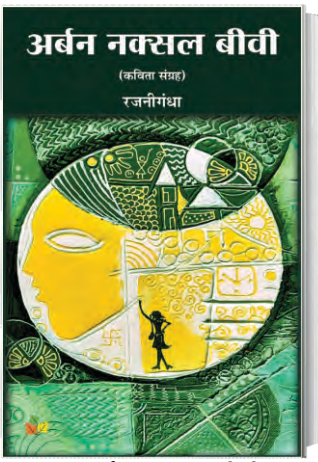

अर्बन नक्सल बीवी
कविता संग्रह
लेखक - रजनीगंधा
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

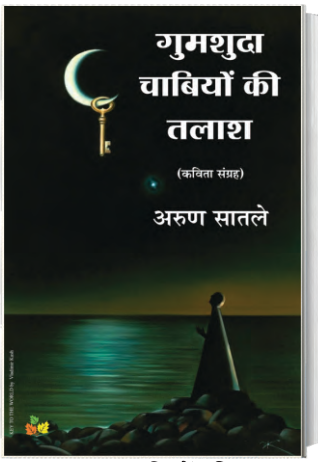

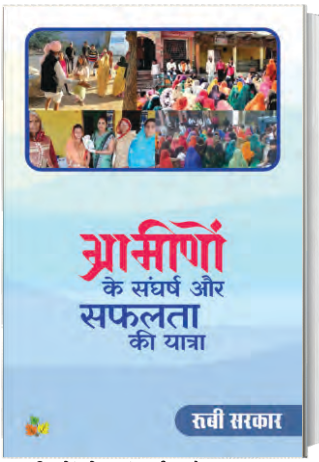

गुमशुदा चाबियों की तलाश
कविता संग्रह
लेखक - अरुण सातले
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

ग्रामीणों के संघर्ष और सफलता की यात्रा, रिपोर्ताज
लेखक - रूबी सरकार
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2024

हरसिंगार सा झरूँगा मैं
कविता संग्रह
लेखक - मनीष शर्मा
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2024

धार्मिक मेले और पर्यटन
निबंध
लेखक - विमल कुमार चौधरी
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

थे मजा करो महाराज
व्यक्तित्व
संपादक - कौसर भुट्टो
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2024

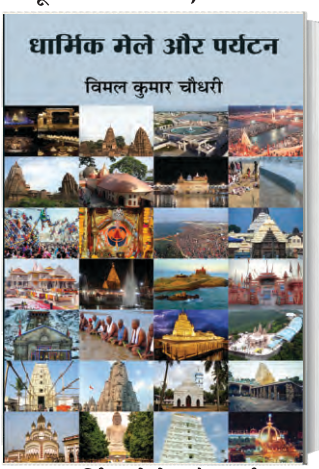

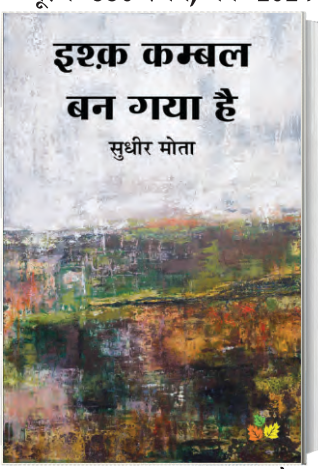

इश्क़ कम्बल बन गया है
ग़ज़ल तथा कविता संग्रह
लेखक - सुधीर मोता
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 2-8, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेंसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372
मोबाइल- +91-9806162184 (शहरयार), +91-6265665580
व्हाट्सएप- +91-8959446244, ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com
वेबसाइट- www.shivnaprakashan.com

Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com
WhatsApp +91-8959446244
twitter https://twitter.com/shivnac
facebook https://www.facebook.com/shivna.prakashan
YouTube https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
available at amazon https://www.amazon.in/s?me=A17JJYGSVM2CEV

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html

फेसबुक पर 'विभोम-स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)

सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)

बैंक खाते का विवरण-
Name: Vibhom Swar
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000312
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 9, अंक : 35, त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2024
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

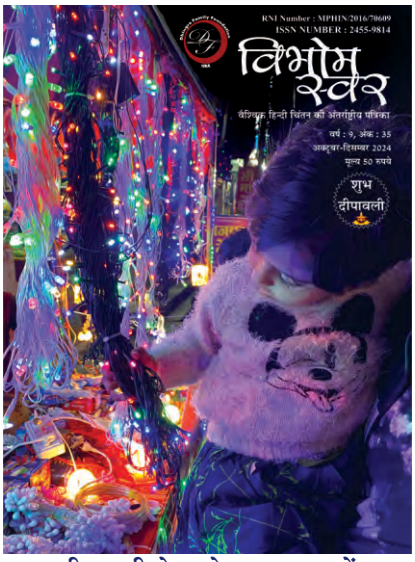

दीपावली के सजे हुए बाज़ार में झिलमिलाती झालरों के आकर्षण में नन्हीं बालिका

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 9, अंक : 35

अक्टूबर-दिसम्बर 2024

संपादकीय 3

मित्रनामा 5

साक्षात्कार

साहित्य-व्यवहार, साहित्य-व्यापार की ओर बढ़ता दिखता है,

कहानीकार-उपन्यासकार महेश कटारे से आकाश माथुर की बातचीत 10

विस्मृति के द्वार

अभिव्यक्ति की प्रबलता

अर्चना पैन्यूली 16

कथा-कहानी

एक दरवाज़ा नया सा

विकेश निझावन 20

ज़रा सा...डांस

टीना रावल 26

लम्हों के साए

अरुणा सब्बरवाल 29

पेंटिंग्स

जिज्ञासा सिंह 33

बिगड़ी हुई लड़की

शराफ़त अली ख़ान 36

जब उनसे मुलाकात हो गई

डॉ. विमला व्यास 38

करवा चौथ

कादम्बरी मेहरा 41

अन्तर्मन में नागफ़णी

रेणु गुप्ता 43

भाषांतर

इतनी-सी बात (पंजाबी कहानी)

मूल लेखक- बलीजीत

अनुवाद- गीता वर्मा 48

लघुकथा

मिडिल क्लास स्त्री-पुरुष का प्रेम उत्सव

सन्दीप तोमर 19

पैरों तले ज़मीन

मनमोहन चौरे 47

मध्यम

मनप्रीत मखीजा 61

लाल बत्ती

कमलेश भारतीय 70

ललित निबंध

एक बिजली का बल्ब और दो पतंगे

गोविंद गुंजन 50

नृत्य और अनुष्ठान

विनय उपाध्याय 52

रेखाचित्र

समझदारों की दुनिया में वह पग्गल

ज्योति जैन 54

व्यंग्य

बड़ा चोर: छोटा चोर

डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल 57

हॉस्पिटल का इंस्पेक्शन

डॉ. मुकेश 'असीमित' 60

शहरों की रूह

अमेरिका यात्रा के बहाने...

डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा 62

ग़ज़ल

जय चक्रवर्ती 56

सत्यशील राम त्रिपाठी 71

आख़िरी पन्ना 72

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष) 11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is "Zero")

(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके: 1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- चैक/ड्राफ़्ट नंबर, 5- ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र है), 6-दिनांक (यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

मानवीय अन्वेषण और सृजनात्मकता का महत्त्व एवं क्रांति

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोरिंस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

पिछले सौ वर्षों से पूरे विश्व में हर क्षेत्र में मानव ने नई-नई सृजनात्मकता के साथ अन्वेषणा की है। कभी यह कहा जाता था कि धरती पर अगर आठ बिलियन लोग हो जाएँगे तो लोगों को खाने को नहीं मिलेगा, धरती का संतुलन बिगड़ जाएगा। 15 नवम्बर 2022 को पूरे विश्व की आबादी आठ बिलियन हो चुकी है, और वैज्ञानिकों ने अन्न, फलों और सब्ज़ियों की अलग-अलग किस्में और अधिक उत्पादन के तरीक़े खोज निकाले हैं, ताकि कहीं भी भोजन की कमी न रहे। हरित क्रांति से पूरे विश्व में कृषि उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। संपूर्ण विश्व ख़ासकर विकासशील देशों को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाया है। उच्च उत्पादक क्षमता वाले प्रसंसाधित बीजों का प्रयोग, आधुनिक उपकरणों का इस्तेमाल, सिंचाई की व्यवस्था, कृत्रिम खादों एवं कीटनाशकों के प्रयोग आदि के कारण संभव हुई इस क्रांति को करोड़ों लोगों की भुखमरी से रक्षा करने का श्रेय दिया जाता है।

दवाइयों के क्षेत्र में देख लें...जो बीमारियाँ आज से सत्तर साल पहले तक प्राणघातक मानी जाती थीं, जब वे फैलती थीं तो लाखों लोग उनकी चपेट में आ जाते थे। अब उनसे बचाव की दवाइयाँ निकाली गई हैं। टीबी, पोलियो तकरीबन पूरे विश्व में समाप्त कर दिए गए हैं, हैजा, मलेरिया की दवाइयाँ तो खोजी ही गई हैं, कैंसर जैसी घातक बीमारी का भी इलाज ढूँढ़ लिया गया है। पहले एक वैक्सीन निकालने के लिए वर्षों लग जाते थे और अब एक वर्ष के अंदर ही मानवी मस्तिष्क ने कोरोना की वैक्सीन निकाल ली। बीमारियों की रोकथाम के लिए एक तरह से मेडिकल क्रांति हुई है।

समझा यह जाता था कि धरती पर जनसँख्या बढ़ जाने से बहुत से संसाधनों और खनिज पदार्थों में कमी आ जाएगी। पर देखिए, अल्मुनियम, स्टील मानव ने क्या-क्या नहीं खोज निकाला! खनिज पदार्थों में तो मानव ने क्रांतिकारी परिवर्तन किये हैं।

आज के युग में तकनीकी अन्वेषण तो कहाँ तक गिनाएँ! बिजली, कंप्यूटर, हवाई जहाज़, बैटरी वाली कार सब मानव सृजनात्मकता की देन हैं। मानव तो चन्द्रमा तक पहुँच गया है और सौरमंडल की जानकारी भी हर दिन बढ़ा रहा है। ए आई (कृत्रिम बुद्धिमत्ता) भी मानव बुद्धि की ही देन है।

आप सोच रहे होंगे कि मैं यह सब आपको क्या बताने की कोशिश कर रही हूँ, आप तो यह सब जानते हैं, बल्कि इससे अधिक जानते होंगे; क्योंकि मैंने तो बस विषय को छुआ है। यह विषय इसलिए आपके सामने रखा है कि चारों ओर नकारात्मकता का, ऐसा जाल सा फ़ैल रहा है, सोशल मीडिया पर अफ़वाहों का ऐसी बारिश होती है, जिसमें कच्चे और परिपक्व दोनों तरफ के दिमाग बह जाते हैं। विश्व के किसी कोने में हल्की सी बुरी ख़बर या नकारात्मक सूचना इतनी

संपादकीय

तेज़ी से वॉयरल होती है, लगता है पता नहीं बस सब मिटने वाला है और वह ख़बर कई दिनों तक सोशल मिडिया पर घूमती रहती है। अच्छे और सकारात्मक समाचार एक दिन में समाप्त हो जाते हैं।

ग्लोबल वॉर्मिंग से काफी नकारात्मकता फैली हुई है। इसका उदाहरण भी मिल रहा है, पर्यावरण परिवर्तित हो रहा है। प्रकृति का प्रकोप विश्व के अलग-अलग कोनों में दिखाई देने लगा है। पर अगर गंभीरता से सोचा जाए तो सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक पर्यावरण में कई बार परिवर्तन हुआ है। प्रकृति तो अपने भिन्न-भिन्न रूप दिखाती ही रही है और अब भी दिखा रही है। डायनॉसोरज़ का पैदा होना और समाप्त होना। खुदाई में कई सभ्यताओं के अवशेषों का मिलना, जो काफी विकसित थीं, इन सबसे मानव को यही समझने की ज़रूरत है कि प्रकृति समय-समय पर करवट बदलती रही है और बदलती रहेगी। पर अब मानव ने प्राकृतिक चुनौतियों से निपटना सीख लिया है।

यह त्रासदी है, मानव भूल जाता है कि जब-जब विश्व में कहीं समस्या आई है तो हल भी मानव ने ही निकाला है। मानव ने ऐसे यंत्रों की खोज कर ली है है जिससे अब उसे पता चल जाता है, प्रकृति कहाँ क्या कहर ढाहने वाली है? पूरा सिस्टम और संसाधन वहाँ जुट जाते हैं। इसी तरह भविष्य में आने वाले संकटों का हल मनुष्य खोज लेगा।

बस दिक़्क़त है तो मानवी मस्तिष्क की नकारात्मकता से पैदा हुई समस्याओं के समाधान खोजने की। सोच की नकारात्मकता से निपटना इतना आसान नहीं; क्योंकि वह झूठे अहम् को बढ़ावा देकर ख़तरनाक हथियारों को बनाने और उन्हें प्रयोग में लाने के लिए उकसाती है। नकारात्मक सोच ही पूरे विश्व में मानवता के लिए घातक है और बहुत सी चुनौतियाँ पैदा कर रही है। अब ज़रूरत है, मानव मस्तिष्क की सकारात्मक सृजना और अन्वेषण की जो नकारात्मक सोच को बदल सके और चुनौतियों से लड़ कर मानवता की रक्षा कर विश्व तथा युवा पीढ़ी को एक नई दिशा दे सके... समय की यह मांग भी है और पुकार भी।

उत्सवों का समय शुरू हो गया है। यह समय तो वैसे ही खुशियों और सकारात्मक ऊर्जा से तन-मन भर देता है। आप भी दीपावली, थैंक्सगिविंग, क्रिसमस और नया साल मनाने के लिए उत्साहित होंगे। विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी की टीम आप सबको ढेर सारी शुभकामनाएँ और बधाइयाँ देती है।

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

आले में रखा हुआ माटी का एक दीप इस बात का प्रतीक होता है कि हम अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ने के लिए कृत-संकल्पित हो चुके हैं। जिस दिन हम दीपों की आवली या पंक्ति लगा कर दीपावली मनाते हैं, उस दिन हम अंधकार को सबसे बड़ी चुनौती प्रदान करते हैं। जीवन अँधेरे से प्रकाश की ओर बढ़ते रहने का नाम है।

मित्रनामा

सच की पारदर्शी गवाही

'विभोम स्वर' में प्रकाशित "मैं और मेरा समय" हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ रचनाकार तेजेन्द्र शर्मा का ज़िंदगीनामा है। इसमें सच की पारदर्शी गवाही है। उनकी साफ़गोई लाजवाब है। वे दो टूक कहते हैं कि उनकी रचनाओं में ग्राम्य प्रभाव नहीं हैं। उन्हें गर्व है कि उनके पूर्वज पंजाब के जगराँव से जुड़े हैं जो लाला लाजपत राय की जन्मस्थली भी है। पिता के जगह-जगह ट्रांसफ़र होने के कारण उन्होंने देश के कई परिवेशों को जिया है। इस वातावरण से ही उनके भीतर के रचनाकार ने आँखें खोली है। उनकी सादगी और निश्छलता तब सामने आती है जब पिता उनकी अच्छी परवरिश के लिए सिगरेट पीना छोड़ देते हैं। पिता के राजनीतिक प्रभावों ने यह भी करिश्मा किया कि वे स्वयं विदेश में एक दल के साथ खड़े हुए हैं। उनके बहुआयामी व्यक्तित्व का पारदर्शी रूप सामने आता है। एक पत्रकार के रूप में उनकी पैनी नज़र विश्व के घटनात्मक परिवेश पर होती है। एक साहित्यकार के रूप में उन पर कोई वैचारिक दबाव नहीं है। वह मानवीय करुणा के पक्षधर हैं।

एक व्यक्ति के रूप में उनका सब के साथ मिलनसार होना उन्हें विराट् बनाता है। ज़िंदगी के सफ़र में अकेले होकर भी सब के साथ हैं। यह गीता का बद्धमुक्त कर्मयोग है। एक ज़िम्मेदार पिता के रूप में वे बच्चों का हौसला बढ़ाते मिलेंगे। उनका व्यक्तित्व प्याज़ की भीतरी परतों की तरह है जो साथ होकर भी अपनी हर परत में स्वतंत्र है जिन्हें ध्यान से समझने की ज़रूरत है। वे निरन्तर लेखनरत हैं। उनके संपादकीय लेखों से गुज़रना आश्चर्यजनक रोमांच से गुज़रना है। उनके साहित्य से गुज़रते हुए जीवन के कई सबक सीखे जा सकते हैं। उनकी कर्म तल्लीनता इसी तरह बरक़रार रहे यही शुभकामनाएँ हैं।

-मीरा गौतम
ट्राईसिटी, चंडीगढ़

000

उत्कृष्टता को देखना सुखद

दोनों पत्रिकाएँ मिलीं। उन्हें देखना, उनकी उत्कृष्टता को देखना सुखद है। कवर और भीतर के पृष्ठों में वज़न के बदलाव से पत्रिका में वज़न आ गया है। हाथ में लेकर देखना बहुत उत्साह से भर देने वाला अनुभव था मेरे लिए। बधाई- आपको और पूरी टीम को।

-प्रज्ञा, नई दिल्ली

000

नया रूप बहुत बढ़िया

आज विभोम- स्वर और शिवना साहित्यिकी मिली। दोनों का नया रूप बहुत बढ़िया है।

-अनिता सक्सेना, भोपाल, मप्र

000

संस्कृति से सीधा संवाद

यात्रा संस्मरण रचनात्मक, ग़ैर-काल्पनिक साहित्य की एक लोकप्रिय शैली है; जो पाठकों को विभिन्न स्थानों और संस्कृतियों में ले जाती है। साथ ही लेखक की व्यक्तिगत अंतरदृष्टि और अनुभवों को भी प्रकट करती है। संस्मरण लेखक द्वारा लिखी गई यादों का संग्रह होता है; जिसका उद्देश्य अपने जीवन की कहानियों को क़ैद करना होता है। ये यादें आमतौर पर लेखक के जीवन की उल्लेखनीय घटनाएँ या अनुभव होते हैं। जिन्होंने उन्हें ख़ास तरीक़े से प्रभावित किया हो। वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका "विभोम स्वर" के अक्टूबर दिसंबर 2023 के अंक में प्रकाशित "अमेरिका का शहर लॉस वेगास जलते रेगिस्तान में चमकता स्वर्ग" तथा 2024 के जनवरी-मार्च अंक में प्रकाशित "ग्रैंड कैनियन का सफर तृष्णा या तृप्ति" रेखा भाटिया द्वारा लिखे गए यात्रा संस्मरण पढ़े। संयोग से अमेरिका के कैलिफोर्निया और एरीजोना की सीमाओं के पास नवोदा के दक्षिणी कोने पर क्लर्क कंट्री में मोजावे रेगिस्तान में स्थित दुनिया का ख़ूबसूरत शहर लॉस वेगास और ग्रैंड कैनियन (चट्टानी घाटी) ये दोनों स्थान मेरे भी घूमे हुए हैं। इन पर मैंने भी अपने यात्रा संस्मरण" रोशनी में नहाया विश्व का सबसे ख़ूबसूरत शहर लास वेगास, ग्रैंड कैनियन (चट्टानी घाटी) की सैर लिखे हैं। जिनमें रेखा भाटिया द्वारा लिखे गए दोनों संस्मरण काफी सामान होते हुए भी रेखा भाटिया जी ने इन दोनों स्थानों के विज़िट की अनुभवजन्य काफी व्यापक विषद व्याख्या की है। उल्लेखनीय बात यह है कि रेखा भाटिया यात्रा में आने वाली कहानियों को बताने के साथ-साथ उस स्थान विशेष की प्राकृतिक संपदा, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख करती जाती हैं जो रेखा भाटिया के सौंदर्य और इतिहास बोध को दर्शाता है। इनके यात्रा वृतांत इतिहास दर्शन और संस्कृति से सीधा संवाद करते हैं। आपकी यात्रा में संवेदनशीलता के साथ- साथ बौद्धिक गहराइयों का भी अनुभव होता है।

-अरुण नामदेव, एफ 24,
ग्रीन सिटी, शहडोल, मप्र 484001

000

'विभोम-स्वर' के जुलाई-सितम्बर 2024 अंक में प्रकाशित पूजा गुप्ता की कहानी 'कार्ड' पर खंडवा में साहित्य संवाद तथा वीणा संवाद ने चर्चा की। इस चर्चा के संयोजक गोविन्द शर्मा तथा समन्वयक राजश्री शर्मा थे।

सुंदर अभिव्यक्ति

पूजा गुप्ता की कहानी 'कार्ड' एक वृद्ध दंपति पर केंद्रित है। पत्नी गिरिजा अपने घर के बाहर साँझ ढले तक अपने बच्चों के द्वारा भेजे हुए कार्ड की प्रतीक्षा में हैं। इस साँझ के गहराते अँधेरे का एक गहरा प्रतीकात्मक महत्त्व है, यह अँधेरा माता- पिता के जीवन के उत्तरार्ध को भी इंगित करता है जब उन्हें अपने बच्चों की, परिवार के साथ की उत्कंठा अधिक तीव्र हो जाती है।

गिरिजा अपने पति के साथ मीठी नोंकझोंक करते हुए भी विगत कई स्नेहिल स्मृतियों को सहेजती रहती है। फ़ोन पर बात कर लेना भी उन्हें चिट्ठियों के स्पर्श की ऊष्णता, उसका सुख नहीं दे पाता। आज के द्रुत गति से भागते जीवन में चिट्ठियों का लोप तो हो ही चुका है, किंतु कहीं-कहीं कार्ड आज भी इस ऊष्मा के सेतु को बचाये हुए हैं।

कहानी संक्षिप्त है एवं भाषा शिल्प प्रभावी

है। यथा 'यहाँ सब कुछ मिलता है, सब कुछ बिकता है। सुंदर शब्दों की सुंदर अभिव्यक्ति भी। बस आवश्यकता है 'मनी' की। इस मनी ने सबको 'मिनी' कर दिया है। इन संक्षिप्त वाक्यों में आज की युग मे बढ़ते भौतिकवादी दृष्टिकोण पर गहरा व्यंग्य है। अंत में डाकिये नाथूराम की आमद पर यह फिर सिद्ध हो जाता है की भावनाओं का सम्प्रेषण अन्य सभी सम्प्रेषणों की तुलना में सबसे अधिक द्रुत एवं प्रभावी होता है। एक सुंदर कहानी के लिए, पूजा गुप्ता को हार्दिक बधाई।

-गरिमा चवरे (रतलाम)

000

हृदय-स्पर्शी कहानी

विकसित युग में बदलते समय की जीवन शैली में बुज़ुर्ग माता-पिता का एकाकीपन के भावों ख़ासकर प्रतीक्षा को प्रस्तुत करती हृदय-स्पर्शी कहानी। कहानी की नायिका गिरिजा द्वारा यह कहलाना कि रिश्ते, एहसास, कर्त्तव्य, अपनापन जैसे मानवीय गुणों को पैसों से तोला जा रहा है, सच्चाई को उजागर करता है। भाषा शैली सरल, सुगठित है। जिस माँ को पहले कार्ड के आदान-प्रदान से सख़्त एतराज़ था और फ़िज़ूल ख़र्ची लगती थी आज उसे भी विदेश में बसे अपने बच्चों से फ़ोन पर बात होने के बावजूद भी उनके द्वारा प्रेषित कार्ड का बेसब्री से इंतज़ार है।

ख़ुशी से कार्ड पहुँचाने वाले को बख्शीश देना और मिठाई खिलाना ऐसा दर्शाता है मानों उसे बहुत बड़ी निधि मिल गई हो। कार्ड को हृदय से लगा लेना, मानों अपने बच्चों को बाहों में समेट हृदय से लगा रही हो और अपनी आतुरता को शांत करना अत्यंत मार्मिक है। चंद लाइनें लिखा हुआ एक निर्जीव कार्ड दो पीढ़ियों के बीच सेतु है, यही कहानी के शीर्षक की सार्थकता को प्रतिपादित करता है।

-ललिता अग्रवाल 'आशना'
संबलपुर, ओड़ीशा

000

बहुत ही सार्थक कथा

प्रस्तुत कहानी 'कार्ड' की लेखिका पूजा गुप्ता उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर की निवासी हैं। इस कहानी द्वारा उन्होंने आज के माहौल को या यूँ कह सकते हैं पारिवारिक दशा को हूबहू रखने की सार्थक कोशिश की है।

'कार्ड' कहानी द्वारा विदेश में रह रहे बेटे का इंतज़ार करते बूढ़े माँ-बाप की मार्मिक मन:स्थिति को चित्रित किया गया है। अपने बच्चे को देखने, उसकी आवाज़ को सुनने की तड़प तथा संवेदना पूरी कहानी में शुरू से अंत तक दिखती है। कहानी कार्ड का इंतज़ार करती माँ से आरंभ होती है और कार्ड मिलने की ख़ुशी से ख़त्म होती है। फ्लैश बैक में चले जाने से कहानी थोड़ी खींची गई लगता है पर पाठक हर क्षण इससे अपने को जुड़ा हुआ महसूस करता है।

कहानी में दो मुख्य पात्र हैं, गिरिजा और उसका पति। गिरिजा के दो बच्चे हैं जिनके ईर्द-गिर्द कहानी घूमती है, न होते हुए भी उनके होने का पूरा एहसास होता है। पोस्टमैन नाथूराम भी अहम भूमिका निभाता है।

भाषा शैली बिल्कुल सरल है। मानवीय रिश्तों को लेकर बनी कहानी, भावनाओं की हर पोर को खोलते शब्द, जान उड़ेल देते हैं। बर्थडे, एनिवर्सरी, न्यु ईयर, मनी, पोस्टमैन आदि के साथ ही कार्ड जैसे बोल-चाल वाले अंग्रेज़ी शब्द का प्रयोग हुआ है। लेखिका ने बदलते हुए आज के ज़माने को लेकर, 'कुछ नहीं से कुछ भला' कहावत का उदाहरण दिया है। सम्पूर्ण कहानी संवाद पर ही टिकी है। आरंभ में ही गिरिजा और उसके पति के बीच हुई बातचीत से कालखंड की स्थिति साफ होती जाती है। अतीत को याद करती गिरिजा का अपने बच्चों के संग संवाद से उनके बीच के ममता- वात्सल्य की झलक मिलती है। पति बहुत देख भाल ध्यान रखने वाले हैं, दोनों के बीच बहुत अच्छा सामंजस्य स्थापित है, यह उनके संवाद से झलकता है। मुख्य पात्र मन ही मन यादों में बातें करती है, जो थोड़ा अनावश्यक भी लगता है।

लेखिका इस कहानी का उद्देश्य परिलक्षित कर पाने में सफल हुई है। आज के दौर में हर दूसरे परिवार के बच्चे विदेशों में रह कर काम कर रहे हैं। बच्चों की सोच भी वैसी हो गई है, अच्छा रहन-सहन और धनोपार्जन करना। इधर वृद्ध माता-पिता उनके इंतज़ार में पथराई आँखों से निहारते रहते हैं कि वे कब आएँगे। नि:संदेह कहानी से हर अभिभावक ख़ुद को उस स्थान पर पाता है। मैंने स्वयं को वहाँ पाया और द्रवित हो गई। बहुत ही सार्थक कहानी बनी है। लेखक को कहानी के लिए आभार, बधाई।

-रोशनी सेकसरिया "प्रभा"

000

मार्मिकता का चरम चित्रण

संवेदनाओं को व्यक्त करना मनुष्य की प्रकृति है। कभी बोलकर कभी हँस कर कभी क्रोधित होकर तो कभी लिख कर अपनी भावनाएँ उकेरता है वह। इसी विशिष्ट गुण के कारण ही तो मनुष्य सबसे अलग है। इंसान कितनी भी कोशिश कर ले अपनों का मोह छोड़ नहीं पाता है।

कहानी की नायिका गिरिजा जी का भी यही हाल है। जिन बच्चों के साथ हँसते, खेलते, रोते यह ज़िंदगी बीती है उन्हें कैसे छोड़ दिया जाए। उनकी प्रतिक्रिया की चाहत रहती है हमेशा। इंतज़ार रहता है उनके कार्ड का। जी हाँ चिट्ठियों को कार्ड ने मात दे दी है। समय कम लगता है परन्तु पैसे ज़्यादा लगते हैं। भावनाओं को भी व्यक्त करने की ज़रूरत नहीं होती। क्योंकि क्षमा, धन्यवाद, बधाई जैसे शब्द बड़े सुंदर तरीक़े से अंकित रहते हैं। शादी की सालगिरह हो या जन्मदिन ऐसे मौकों पर बच्चे कार्ड भेजकर अपनी ज़िम्मेदारी निभा लेते हैं। पत्रों की तरह हृदय की भावनाएँ हर शब्दों में चाहे प्रतिबिंबित ना हों लेकिन 'नहीं से कुछ तो अच्छा है'। मशीनीकरण के युग में हमने कुछ इस प्रकार का समझौता कर लिया है।

यौवन से लेकर वृद्धावस्था तक पति - पत्नी साथ रहते रहते एक दूसरे को कितनी बारीकी से समझने लगते हैं, इस ओर कहानीकार ने इंगित किया है। हर रिश्ते से ज़्यादा मज़बूत बन जाता है यह रिश्ता। तभी तो गिरिजा का पति कहता है -'तुम क्या चाहती हो, क्या सोचती हो सब पता है मुझे'। माता पिता को अपने बच्चों की भेजी चीज़ों से इतना लगाव होता है कि वे उन्हें अपने कलेजे से सटा कर रखते हैं। गिरजा ने कब के भेजे

कार्डों को सहेज कर रख रखा है। ममत्व की बात तो है ही बुज़ुर्ग आज के लोगों की तरह ख़रीदो और फेंको में विश्वास नहीं करते, एक एक पैसों की क़ीमत समझते हैं। 'इस कार्ड पर फ़िज़ूलख़र्च करने की क्या ज़रूरत थी, तुम्हारा प्यार ही काफी है।' ऐसी सोच है उनकी।

आज इसी कार्ड को वो इस प्रकार सीने से लगा लेती हैं जैसे माँ अपने बच्चे को लगा लेती है।

कुल मिलाकर कहानी आज परिवार में बुज़ुर्ग किस प्रकार बीती यादों को समेटे, विदेशों में बसे 'मनी माईंडेड' बच्चों का इंतज़ार करते थक जाते हैं, इस कड़वी सच्चाई को उजागर किया गया है। कहानी बड़ी ही सरल संवाद शैली में कही गई है। मन को छूती है। कहीं कृत्रिमता नहीं है। भाषा प्रवाहमयी है। प्रमुख तीन पात्र हैं पति-पत्नी और डाकिया नाथूराम। नाथूराम का कहानी में प्रवेश करना किसी उत्सव से कम नहीं। शीर्षक 'कार्ड' सटीक है जिसके अंदर सारी दुनियादारी सिमट चुकी है।

सचमुच मार्मिकता का चरम चित्रण है कहानी। वृद्धावस्था की धुँधली आँखें, जिनमें मोतियाबिन्द के साथ-साथ निराशा भी है और अश्रु भी। इन पालनहारों की आँखों की यह उदासी कब मिटेगी, समाज के समक्ष यह ज्वलंत सवाल है।

-मधु रुंगटा भव्या

000

बहुत बारीकी से चित्रण

प्रस्तुत कहानी कार्ड में लेखिका पूजा गुप्ता ने तारीख़ के साथ ही परिवर्तित होते मानव मन के उद्‌गारों व वृद्धावस्था के एकाकीपन का बहुत बारीकी से चित्रण किया है।

आज हर रिश्तों के निभाना एहसासों के स्थान पर कर्त्तव्य-पूर्ति का-सा बोध कराता है। आधुनिक होते समय ने विशेष दिवस, जन्म दिन या त्यौहारों पर आपसी संवादों की जगह काग़ज़ निर्मित कार्डों ने ले ली है। क्या आज के मशीनी युग में विदेश में रहती अपनी ही संतति के पास माँ-बाप को ख़ास मौक़ों पर बधाई देने के लिये एक फ़ोन तक करने का समय नहीं रह गया है। कहानी की नायिका ने इस वस्तु-स्थिति को सही शब्दों में कहा कि आज की पीढ़ी मानवीय संवेदनाएँ, अहसास व कर्त्तव्य को सिर्फ पैसों से ही तौलती है। पैसे के बूते पर सब कुछ संभव है। कार्ड का आदान-प्रदान यों तो विदेशी चलन है पर कहानी की नायिका गिरिजा आज समय के अनुसार ढलती उम्र में समझौता कर बच्चों के कार्ड का ही इंतज़ार करती है एवं उसे ही अपना बच्चा समझ ख़ुश हो जाती है। वस्तुत: भाव-पक्ष की ओर कहानी बहुत ही मार्मिक है जिसमें वयोवृद्ध लोगों की मानसिकता व मजबूरी का वर्णन सुंदर, सरल व सहज भाषा में किया गया है। कहानी छोटी है पर पाठक की रुचि को बनाये रखने में सहायक रही है साथ ही पूरी कहानी में समाज के लिये संदेश भी देती प्रतीत होती है।

-मंजु बंसल 'रमा', बैंगलोर

000

सार्थक कहानी

कहानी 'कार्ड' में पूजा गुप्ता ने बूढ़े माँ-बाप की व्यथा को बख़ूबी दर्शाया है। विदेश में रह रहे अपने बेटे के कार्ड की आस में कितने व्यथित हैं। उन्होंने एकाकीपन के परिवेश का समसामयिक चित्रण किया है। कैसे माँ-बाप अपने जीवन के सुनहरे दिन अपने बच्चों को लायक बनाने में लगा देते हैं, परंतु वही बच्चे उनसे अलग होकर उन्हें कितनी मानसिक पीड़ा देते हैं, इसका अंदाज़ा नहीं लगाया जा सकता।

कहानी एक माँ बेटे के इर्द-गिर्द घूमती है, जिसमें विदेश में बसे हुए बेटे के कार्ड का इंतज़ार गिरिजा बड़ी बेसब्री से करती है। वह कहती है - माया मोह नहीं त्याग सकती। इसी माया मोह ने तो ज़िंदगी के 70 वर्षों को सुंदर बनाया है।

लेखिका द्वारा लिखी गई सकारात्मक सोच को नमन है - "जब इतनी उम्र हँसी ख़ुशी में बिताई है, तो क्या कुछ और वर्ष नहीं बिता सकती"।

लेखिका ने बड़ी ही ख़ूबसूरती से कार्ड का महत्त्व बताते हुए उस ज़माने में लिखी हुई चिट्ठियों पर भी प्रकाश डाला है। उन्हीं के शब्दों में - दिल के ग़ुबार को काले अक्षरों में अभिव्यक्त कर चाहने वालों को भेजा जाता था। हर शब्द जैसे साकार हो उठता था। भेजने वाले का व्यक्तित्व प्रत्यक्ष खड़ा हो जाता, और पाने वाला का धन्य हो जाता। कितना सुखद लगता था चिट्ठी का मिलना और चिट्ठी को भेजना।

उन्होंने बहुत ही ख़ूबसूरती से पत्रों का महत्त्व बताते हुए उनकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला है। कहानी को आगे बढ़ते हुए उन्होंने जो आधुनिक जीवन शैली का एहसास कराया, वह भावपूर्ण अभिव्यक्ति सराहनीय है, जैसे यहाँ सब कुछ मिलता है, हर कुछ बिकता है, सुंदर शब्दों की सुंदर अभिव्यक्ति भी, प्रस्तुतीकरण भी, बस आवश्यकता है 'मनी' की। इस 'मनी' ने सबको 'मिनी' बना दिया है।

रिश्तों पर करारी चोट करते हुए मार्मिक अभिव्यक्ति है। पुराना समय याद करते हुए गिरिजा बाहर बैठी बेसब्री से पोस्टमैन के इंतज़ार में, जैसे उन्हें कार्ड का नहीं, बेटे का ही इंतज़ार है। कार्ड में लिखी चंद पंक्तियाँ ही उनके दिल को कितनी शीतलता प्रदान करती है, वह शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

आज बच्चे उच्च शिक्षा या धन उपार्जन हेतु अधिकतर घर से बाहर रहते हैं। और घर में माँ- बाप उनके बिना कितना अकेलापन महसूस करते हैं। यह स्थिति बख़ूबी दर्शाई गई है। कहानी में एक कार्ड कैसे दो पीढ़ियों के बीच सेतु बन जाता है। यह लेखिका ने अपनी कहानी के माध्यम से, ख़ूबसूरत शब्दों द्वारा दर्शाया है। मार्मिक एवं सधे हुए शब्दों के साथ, समाज में रह रहे बुज़ुर्गों के एकाकीपन को दर्शाती हुई सार्थक कहानी के लिए लेखिका हार्दिक बधाई।

-रश्मि पाण्डेय, जबलपुर, मध्यप्रदेश

000

कथानक सुगठित

प्रस्तुत कहानी कार्ड का नाम पढ़ कर हृदय में अनेक अनुमान जिज्ञासा स्वरूप उमड़ने लगे कि कहानी या तो विवाह अथवा अंत्येष्टि या नामकरण के कार्ड से संबंधित

होगी। किंतु कहानी बिल्कुल अलग ही निकली। कहानी का प्रारंभ पढ़कर ही हृदय में एक पीर की लहर सी उठी। कहानी ने बाग़वान फ़िल्म की याद दिला दी जहाँ बूढ़े माता-पिता बालकों से अपेक्षाएँ लगाए रखते हैं। कहानी आज के समाज का दर्पण है। कहानी में कहानीकार ने पत्रों और पोस्ट कार्डों का ज़माना फिर से स्मरण करा दिया। ख़त की लिखावट ही जहाँ व्यक्ति के व्यक्तित्व का प्रत्यक्ष आभास करा देती थी। जैसे एक पुराने फिल्मी नग़मे के भाव याद आ गए- "ख़त लिख दे साँवरिया के नाम बाबू, वो जान जाएँगे, पहचान जाएँगे।"

कुछ ऐसा ही होता था पत्रों का ज़माना, जहाँ लिखावट एक अरसे तक मन -मस्तिष्क पर स्थाई असर डालती थी। काले रंग की स्याही विरह और लाल रंग की स्याही प्रेम का प्रतीक मानी जाती थी।

लेखिका ने कई शाश्वत सत्य भी अपनी कहानी के माध्यम से उजागर किए हैं जैसे -

"यहाँ सब कुछ मिलता है, यहाँ हर कुछ बिकता है। सुंदर शब्दों की सुंदर अभिव्यक्ति भी। प्रस्तुतीकरण भी। बस आवश्यकता है पैसों की। यानी मनी की। इस मनी ने सबको मिनी बना दिया है। रिश्तों को, एहसासों को, कर्त्तव्यों को, नज़दीकियों को, अपनेपन को।"

लेखिका ने उक्त कहानी में समाज के उस ज्वलंत मुद्दे को उठाया है जिसे हम वृद्धावस्था कहते हैं। आज आधुनिक युग में यह वृद्ध अकेलेपन का दंश झेल रहे होते हैं। क्योंकि बच्चे तो अपनी-अपनी दुनिया में व्यस्त हो जाते हैं। घर पर रह जाता है तो एक अकेलापन और विदेश गए बच्चों की प्रतीक्षा।

अंत में कहानी भावुकता की पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है तथा पाठकों के हृदय को अनकही टीस से भर देती है। कहानी का कथानक सुगठित है साथ ही साथ लेखन शैली भी हृदय को स्पर्श करने वाली है। पात्रों का चरित्र-चित्रण यथार्थ के धरातल को स्पर्श करता है। कहानी उद्देश्यपूर्ण एवं रोचक है।

-प्रीति चौधरी "मनोरमा",
बुलंदशहर

000

सच्चाई को दर्शाती कहानी

प्रस्तुत कहानी 'कार्ड' किसी भी तरह की संवेदनाओं को कार्ड द्वारा व्यक्त करने के नए तरीके की अभिव्यक्ति को दर्शाती है। जैसे कि शुभ कामनाएँ देना, आभार व्यक्त करना, यहाँ तक कि माफ़ी माँगना तक जैसे संवाद भी आज कार्ड द्वारा ही हो रहे हैं। आज अधिकतर घरों में बच्चों का पढ़-लिख कर विदेश में बस जाने की रिवाज ने आपसी संबंधों को बस कार्ड द्वारा ही जोड़ रखा है। जिसके पास जितना पैसा है, उसी हिसाब के संवाद वाले कार्ड बाज़ार में मौजूद हैं।

अपनों के मोह-जाल में फँसी अपने आप को इस नए युग के विचारों में ढालती कहानी की मुख्य किरदार कहानी में साफ शब्दों में अपने पति से कहती हैं, अब तो रिश्ते 'मनी माइंडेड' हो गए हैं जी। नायिका 'कुछ नहीं से कुछ ही सही' जैसी कहावत को स्वीकार कर हर जन्मदिन, शादी की सालगिरह, नया साल जैसे हर मौके पर विदेश में बसे अपने बेटे के कार्ड आने का बेसब्री से इंतज़ार करती है। और कार्ड आते ही उसमें अपने बेटे का अक्स और आवाज़ महसूस कर उसे सीने से लगा कर संतुष्ट हो जाती है। लेखिका ने आज की कड़वी सच्चाई को बख़ूबी उजागर किया है। जब कि इनके पति की सोच बिल्कुल अलग है।

जिन बच्चों को माता पिता अपना जीवन न्यौछावर कर लायक बनाते हैं, वही बच्चे वृद्धावस्था में माता पिता की सेवा करने के बजाए, भूले भटके बस कार्ड भेजकर अपनी ज़िम्मेदारी का एहसान नामा पूरा कर देते हैं। इधर बूढ़े पति-पत्नी एक दूसरे का सहारा बन एक दूसरे के हर एहसासों को, हर जज़्बे को समझते हुए कुछ हँस कर कुछ रो कर ज़िंदगी गुज़ारने को मजबूर हो जाते है। यह कहानी एक कहानी नहीं होकर जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करती है।

कहानी 'कार्ड' में जिस तरह से उम्र के इस मोड़ पर मोतियाबिंद से धुँधलाई आँखें एक दूसरे की मन की गहराई को भावनाओं से ही पढ़ लेते हैं। जहाँ दोनों पति-पत्नी में इतना अच्छा तालमेल दर्शाया है, वहीं यह सोचकर ही आत्मा काँप उठती है कि जिस दिन दोनों में से किसी एक ने साथ छोड़ दिया तो दूसरे का क्या होगा। आज हम भी उम्र के इस पड़ाव पर हैं कि इस एहसास मात्र से ही रूह काँप उठी।

कहानी में सबसे ज़्यादा तो डाकिया नाथूराम का किरदार दिल को छू लेने वाला है, जो बूढ़ी माँ की भावनाओं की क़द्र करते हुए इतनी देर से भी कार्ड देने आता है। आज की सच्चाई को दर्शाती यह कहानी दिल के अंदर तक उतर गई।

-नीलम अग्रवाल "रत्न", बैंगलोर

000

अच्छी कहानी

वैसे तो वर्तमान इंटरनेट मीडिया/ वाट्सअप, एक्स, फेसबुक और अनेक मैसेंजर प्लेटफार्म का दौर है, पर पूजा गुप्ता द्वारा प्रस्तुत कहानी 'कार्ड' ने बरबस ही डाक चिट्ठी- पत्री-अंतर्देशीय पत्र और पोस्टकार्ड की याद दिला दी। जब पोस्टमेन काका खाकी ड्रेस पहन कर अपने पारम्परिक भारतीय थैले में डाक भरकर लाते थे। हम लोग टकटकी लगाए उनका इंतज़ार करते थे। और बुकपोस्ट के मज़मून को भाँपने की शर्त भी लग जाया करती थी आपस में घर पड़ौस के हमउम्र लोगों में।

कार्ड, कहानी के माध्यम से पूजा गुप्ता द्वारा सरल, सहज शब्दावली में कहानी की केंद्रीय पात्र, सीनियर आयु वर्ग की गिरिजा, उसके पति और अपने बच्चे की यादों के इर्दगिर्द घूमती है। गिरिजा परदेस में बसे बच्चों को, उनकी शरारत और चुलबुले एहसास को बार-बार महसूस करती है।

कहानीकार ने जहाँ वृद्धावस्था में मन के उद्गार और एकाकीपन में क्या-क्या चलता है, उस अवस्था का सटीक और सूक्ष्म चित्रण किया है। वहीं वे, भावनाओं की अभिव्यक्ति हेतु कार्ड के अनेक स्वरूप और उसकी महत्ता जैसे बर्थडे कॉर्ड, एनिवर्सरी कार्ड, दीपावली शुभकामना कार्ड और तो और माफ़ी कार्ड इत्यादि से पाठकों को रूबरू करवाती चलती हैं। भले ही कहानी यह भी याद दिलाती है कि आज मानवीय संवेदना और एहसास 'मनी', के कारण, "मिनी "होते

जा रहे हैं। नाथूराम की बेसब्री से प्रतीक्षा करती गिरिजा को देख कर, "किसका, इंतज़ार कर रही हो अब पोस्टमेन नहीं आएगा", गिरिजा से उनका पति कहता है। और यहाँ पर पति-पत्नी संवाद की अंतरतम टिप्पणियों से पाठक मन भी आलोकित सा हो उठता है। कहानी का कुछ हिस्सा, कहीं-कही आशा-निराशा के बीच भी झूलता सा लगता है।

आज हर रिश्ते को सँभालना कठिन हो रहा है और मात्र औपचारिकता या खानापूर्ति लगता है। दुनिया सिमट रही है पर रिश्ते में आपसी संवादों की जगह काग़ज़ के कार्डों और मीडिया के आधुनिक माध्यम ने ले ली है। सच्चाई यह है कि गिरिजा के माध्यम से कहानी द्वारा पाठकों को सत्य से रूबरू कराने की भी एक कोशिश सी लगती है, क्योंकि, शायद? वर्तमान पीढ़ी में मानवीय संवेदना का प्रतिशत लगातार गिरता सा महसूस हो रहा है। कहानी में पात्र का मर्म, वर्णन सुंदर, सरल व सहज भाषा में किया गया है। कहानी धाराप्रवाह और अविरल कथ्य रख कर पाठक की रुचि को बनाये रखने में सफल लगी। और अंत में, कथ्य की दमदार आवाज़, "नाथूराम क्या लाया है?"---उतावली से गिरिजा कहती है, "कार्ड" और गिरिजा ने कार्ड को छाती से लगा लिया, जैसे कार्ड नहीं उसका बेटा हो। यह आशावादी, सकारात्मक संदेश देती प्रतीत हो रही है। पूजा गुप्ता कहानी का उद्देश्य पूरा कर सफ़ल होती हैं।

-डॉ. अशोक कुमार नेगी, खण्डवा

000

सरल सहज और प्रवाहमय

वर्तमान के आधुनिक दौर में आधुनिक जीवन शैली में बुज़ुर्ग अभिभावकों के एकाकीपन के भावों ख़ासकर प्रतीक्षा को रेखांकित करती मर्मस्पर्शी एवं भावप्रवण कहानी। यह बुज़ुर्ग माता पिता की बच्चो से मिलने की तड़प का प्रत्यक्ष सजीव वर्णन प्रतीत होता है। कहानी की बुज़ुर्ग नायिका गिरिजा के मुँह से ये कहलवाना की रिश्ते, एहसास, कर्त्तव्य, अपनापन जैसे इंसानी गुणों को पैसों की तराजू में तोला जा रहा है, यथार्थ बयाँ करता है।

लेखिका की भाषा शैली सरल सहज और प्रवाहमय है। जिस जननी को पहले कार्ड के लेन-देन पर कड़ी आपत्ति थी और उसे यह पैसों की बरबादी लगती थी आज उसे भी विदेश में स्थापित अपनी संतानों से फ़ोन पर बात होने के बावजूद भी उनके द्वारा भेजे गए कार्ड की बेसब्री से प्रतीक्षा है। कार्ड पहुँचाने वाले को ईनाम देना और मिठाई खिलाना इस बात का संकेत देता है मानों उसे बेशक़ीमती ख़ज़ाना मिल गया हो। वह कार्ड को यूँ हृदय से लगा लेती है मानों अपने बच्चों को अपनी बाहों में बाँध कलेजे से लगा रही हो। यह शब्द चित्र अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। कुछ लिखे हुए वाक्यों वाला एक निर्जीव कार्ड दो पीढ़ी के मध्य सेतु मानिंद कार्य करता है और यही कहानी के शीर्षक की सार्थकता को स्पष्टतया स्थापित करता है।

-रेणु गुप्ता, जयपुर

000

सुंदर चित्रण

"कार्ड" कहानी माँ का बच्चों के प्रति असीम प्रेम, उनके प्रति हमेशा कुशल क्षेम का भाव होना और बच्चों के लिए सदैव फ़िक्रमंद रहने की वृत्ति को बख़ूबी चित्रित करती है। कहानीकार ने कहानी की केंद्रीय पात्र गिरिजा, जो मोतियाबिंद से ग्रसित शायद सत्तर वर्षीय वृद्धा है, को अपने बच्चों के प्रति अतिसंवेदनशील, भावुक और फ़िक्रमंद निरूपित किया है। गिरिजा, बच्चों के जन्म की किलकारी से लेकर उनके बड़े होने तक के जीवन के हर पड़ाव में उनके हँसी -ख़ुशी, हर्ष, आनंद, रोना, ग़ुस्सा, मान-मनौव्वल में हृदय से जुड़ी रही। आगे कहानी में, कहानीकार के अनुसार गिरिजा भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए चिट्ठियों के प्रचलन को ज़्यादा बेहतर समझती है क्योंकि अपने हाथों से लिखे शब्दों द्वारा मन की संवेदना और भावनाओं का सही प्रतिबिंब उभरता है।

मशीनी युग में कालांतर में चिट्ठियों का स्थान काड्र्स ने हथिया लिया। जन्म दिन, मैरिज एनिवर्सरी, दीपावली, नववर्ष अथवा अन्य प्रसंगों पर बाज़ार में उपलब्ध काड्र्स के माध्यम से व्यक्ति अपनी भावनाएँ प्रेषित करने का आडंबर करता है। अधिक पैसा ख़र्च कर आकर्षक और बेहतरीन अभिव्यक्ति वाले काड्र्स ख़रीद सकते हो लेकिन वे भावना शून्य होते हैं। गिरिजा इस तरह के काड्र्स द्वारा अभिव्यक्ति से नाइत्तेफ़ाक़ रखती हैं। गिरिजा का मानना है कि व्यक्ति को अपनी ख़ुशी या बधाई अथवा शुभकामनाएँ व्यक्त करना है तो स्वयं मुलाकात ले सामने वाले को अपनी भावनाएँ प्रेषित करें। इससे संवेदना को आप सही मायने में प्रस्तुत कर सकते हो। रूबरू मिलकर बधाई या धन्यवाद देने से सामने वाले को एहसास के साथ रोमांच पैदा होता है। गिरिजा को इन सब बातों से नाराज़गी के बावजूद विदेश में रह रहे बेटे के कार्ड या चिट्ठी का इंतज़ार बेसब्री से रहता था। लेखक ने कहानी की केंद्रीय पात्र की बेटों के प्रति आसक्ति को बहुत ही सुंदर तरीक़े से वर्णित किया है। बाहर बैठकर पोस्टमैन का इंतज़ार करना और पति द्वारा समझाने के बावजूद घर में वापस अंदर आते- आते मुड़ कर आशान्वित हो पोस्टमैन के आगमन की प्रबल संभावना व्यक्त करना, कहानी को मज़बूती प्रदान करता है। यहाँ कहानीकार माँ की अमेरिका में रह रहे बेटे की कुशलक्षेम या कोई समाचार जानने की अति उत्सुकता के चरमोत्कर्ष को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। पोस्टमैन जब सचमुच आकर गिरिजा को अमेरिका से बेटे का भेजा हुआ कार्ड देता है तो माँ की ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहता, कार्ड को इस तरह छाती से लगाती हैं जैसे वह उसका सचमुच बेटा हो।

कहानीकार ने वृद्धावस्था में पति-पत्नी के बीच संवादों को बख़ूबी क़लमबद्ध किया है जहाँ पति बेटे के लिए हमेशा चिंताग्रस्त रहने वाली गिरिजा को ढांढस बँधाने की कोशिश करता है। कहानीकार ने माँ की संवेदनाओं और हृदय की भावनाओं का संवादों एवं अपनी लेखनी से सुंदर चित्रण किया है जो पाठकों को बाँधने एवं प्रभावित करने में सफल रही है। कहानीकार पूजा गुप्ता को "कार्ड" कहानी के लिए हार्दिक बधाई।

-राकेश दवे, नासिक

000

साहित्य-व्यवहार, साहित्य-व्यापार की ओर बढ़ता दिखता है, पर मैं निराश नहीं हूँ

कहानीकार-उपन्यासकार महेश कटारे से आकाश माथुर की बातचीत

महेश कटारे
निराला नगर, शाहपुर रोड,
मुरार, ग्वालियर 474006, म.प्र.
मोबाइल- 9425364213, 95160 68132

आकाश माथुर
152, राम मंदिर के पास, क़स्बा, सीहोर,
मप्र 466001,
मोबाइल- 9200004206
ईमेल- akash.mathur77@gmail.com

जन्म- जनवरी 1948, ग्राम बिल्हैटी, ग्वालियर (म.प्र.)

शिक्षा- हिंदी, संस्कृत, राजनीति शास्त्र में एम.ए.

प्रकाशित कृतियाँ-

कहानी संग्रह- समर शेष है, इति कथा कथा, मुर्दा स्थगित, पहरुआ, छछिया भर छाछ, सात पान की हमेल, फागुन की मौत, मेरी प्रिय कथाएँ, ग़ौरतलब कहानियाँ।

नाटक- महासमर का साक्षी, अँधरे युगांत के, हे राम, विभाजन, गाँवगाथा, पंचरगी (बाल नृत्य-नाटक) इन्द्रधनुष (कथा नाट्य)।

उपन्यास- भतृहरि काया के बन में (पहले 'कामिनी काय कांतारे') कालीधार, भवभूति कथा।

यात्रा वृत्त- पहियों पर रात दिन, देश विदेश दरवेश।

अन्य- नज़र इधर-उधर, समय के साथ-साथ कहानी 'पहियों पर चढ़े सुख' पर (टेली फिल्म और मंचन) आदमी, आग और सृष्टि (मंचन) 'वसुधा' (कहानी विशेषांक) का संपादन, कुछ रचनाओं का भाषांतर प्रकाशन।

सम्मान- वागीश्वरी सम्मान (म.प्र.साहित्य सम्मेलन), मुक्तिबोध पुरस्कार (म.प्र. साहित्य परिषद), सुभद्रा कुमारी चौहान (कथा-सम्मान, म.प्र. साहित्य अकादमी), बिहार राजभाषा परिषद सम्मान, शमशेर सम्मान-2004, कथाक्रम सम्मान-2009, ढींगरा फ़ैमिली फाउण्डेशन (अमेरिका) कथा-सम्मान 2014, कुसुमांजलि साहित्य सम्मान 2015, श्रीलाल शुक्ल स्मृति इफ्को सम्मान 2019, स्पंदन-कथा शिखर सम्मान, रजा फाउंडेशन फेलोशिप 2022।

संप्रति- खेती और लेखन

आकाश माथुर- आपको साहित्य की दुनिया का अजातशत्रु कहा जाता है। आप विवादों से दूर रहते हैं। आपके सबसे अच्छे संबंध हैं। जबकि अब यहाँ निर्विवाद रहना संभव नहीं। आप यह कैसे कर पाते हैं?

महेश कटारे- प्यारे भाई। अजात शत्रु का अर्थ, आशय है- जो किसी का शत्रु न हो। जिसका कोई शत्रु न हो। यह मूलत: संतगुण है और मैं निश्चय ही संत नहीं हूँ। महाभारत में अजातशत्रु युधिष्ठिर को कहा गया है, किंतु वह शत्रुहीन न रह सके। एक हद तक गांधी जी थे, पर अपनी ही ओर से तो हर पाये। मेरा पितृ पक्ष भिण्ड में है और चंबल क्षेत्र में तो कहा ही जाता था कि "जिसका कोई जानलेवा दुश्मन न हो, वह आदमी भी क्या।" रही मेरी बात तो मैं बस कोशिश करता हूँ कि अपनी कथनी करनी से किसी का शत्रु न बनूँ। साहित्य चूँकि सत्य का पक्षधर तथा उद्धत, उद्दण्ड, अशुभ शक्तियों के विरोध में खड़ी आवाज़ है तो उस आवाज़ को दबाने वाले स्वत: ही शत्रु बन जाते हैं। क़लम पकड़ने वाले की तो प्रतिज्ञा ही है- "मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम: शाश्वती समा" अर्थात् "वह वधिक को प्रतिष्ठा न पाने देगा।" क़लम का सिपाही जो ठहरा। हाँ, समान्यत: मैं किसी रचनाकार से द्वेष नहीं रखता।

रही विवाद वाली बात तो रचने के मार्ग पर वाद और संवाद ज़रूरी है। वाद तो विवक्षा की ज़मीन पर खड़ा करता है और संवाद से विवेक का मार्ग खुलता है, पर विवाद वाद की विकृति है जो हठ के कारण आता है कि "मैं जो जानता, मानता हूँ। वही सही है।" हठधर्मियों से तो संवाद भी व्यर्थ है। मैं स्यादवाद से बचाव का मार्ग खोज लेता हूँ। हमारे छोटे से लेखक समाज में भी अपने-अपने आग्रह-दुराग्रह हैं। अनेक मानवीय कमज़ोरियाँ हैं। मुझमें भी हैं, हो सकती हैं। फिर भी हम लेखकों, कलाकारों का समाज दूसरे झुण्डों, रेवड़ों से बेहतर व अधिक मानवीय है। एक शेर सुनाता हूँ-

"उस आदमी की बहुत क़द्र है मेरे दिल में,

भला तो वो भी नहीं है मगर बुरा कम है।।"

आकाश माथुर- भर्तृहरि पर आपने उपन्यास लिखा, पौराणिक पात्रों पर आपने पहले भी लिखा है। इस तरह के उपन्यास लिखने का कोई विशेष कारण? क्या आप कुछ नए या वर्तमान के पात्रों पर भी लिख रहे हैं।

महेश कटारे- भर्तृहरि पौराणिक नहीं ऐतिहासिक पात्र है। उज्जयिनी के शासक गर्दभिल्ल का ज्येष्ठ पुत्र जो न्यायशील, सहृदय कवि भी है। वस्तुत: हमारा इतिहास "हिस्ट्री" की भाँति व्यवस्थित नहीं है, वह रचनाओं तथा लोकश्रुति के माध्यम से ही हम तक आता है। भर्तृहरि की जीवन-धारा को जानने समझने के लिए मैंने भी इन दोनों माध्यमों का उपयोग किया। यूँ इस राजा, कवि, प्रेमी और योगी की व्याप्ति पूर्व से सुदूर पश्चिम तक है। पाकिस्तान में इन्हें पीर के रूप में जाना जाता है। छत्तीसगढ़, बंगाल और आसाम तक तो ये पहुँचे ही हैं। वह महान् भाषाविद् भी हैं। भारत के धार्मिक द्वंद्व तथा राजनैतिक पतनकाल में हमारे अनेक महापुरुषों, कृतियों को आक्रांता-सत्ता ने धुंध में धकेलकर अपनी सांस्कृतिक श्रेष्ठता लादने के प्रयास किये हैं, किंतु लोक ने अपनी स्मृति में इसे बचाकर रखा। देश, काल की मिलावट भी इसमें होती रही। मैंने इसी अँधेरे यथार्थ को छानने का प्रयास किया। आगे "भवभूति कथा" उपन्यास की इसी कड़ी में जुड़ा। पौराणिक पात्रों पर मेरे नाटक हैं- "महासमर का साक्षी" व "अँधेरे युगीत के"। अपने समय और समाज पर मेरा उपन्यास है- "काली धार" जो शिवना प्रकाशन से नए कलेवर में छपकर तैयार है।

आकाश माथुर- आप लगातार नाटक लिख रहे हैं। फिलहाल नाटक कम लिखे जा रहे हैं। लोगों को स्क्रिप्ट लिखना ज़्यादा पसंद आ रहा है। नाटक लेखन को लेकर आगे क्या संभावना है?

महेश कटारे- नाटक मेरा पैशन है- उत्कण्ठा या लालसा जो भी नाम दिया जाए। इसे लिखना या लिखकर निभा पाना कठिन ज़रूर है, किन्तु यह साहित्यिक रस और सामाजिक शिक्षण को जनसामान्य तक ले जाने की सबसे समर्थ विधा है, क्योंकि इसमें दृश्य और श्रव्य परस्पर पूरक हैं। मेरे अब तक पाँच पूर्णकालिक नाटक हैं- महासमर का साक्षी, अँधेरे युगांत के, विभाजन, हे राम तथा गाँव गाथा। इंद्रधनुष "कथा नाट्य" है। विश्व की श्रेष्ठ कहानियों पर आधारित। भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ कहानियों पर कथानाट्य की पुस्तक "शिवना प्रकाशन" को दी है। मैंने नृत्यनाट्य भी लिखे हैं, जिनमें प्राय: सभी का मंचन हुआ और मानदेय भी मिला। हाँ, नाटकों में यह सौभाग्य केवल "महासमर का साक्षी" को मिला। इनके अतिरिक्त बच्चों के नृत्य नाट्य की भी पुस्तक है। "पचरंगी" ये स्कूलों में मंचित हुए। कथा-नाट्य नया प्रयोग है। लगभग अपरिचित सा, जिसमें जन-नाट्य बनने की संभावनाएँ पैवस्त हैं।

रही बात नाटक कम लिखे जाने की तो इसका प्रमुख कारण प्रयोगधर्मी, साहसी, नवाचारी नाट्य निर्देशकों व नाट्य संस्थाओं की कमी है। प्रकाशन एक अलग समस्या है। आज मात्र "जो रचेगा वो बचेगा" वाली रोमांटिक धारण सफल नहीं है इसके साथ "जो बिकेगा वो रचेगा" भी जुड़ गया है। "बेस्ट सेलर" के विज्ञापनी प्रदर्शन इसी मानसिकता का उपांग है। इसीलिए समर्थ कवि, कथाकार नाटक लेखन से लगभग विमुख हैं। अन्यथा आप आज़ादी के संघर्ष वाले समय पर निगाह डालिए, भारतेन्दु ने नाटक लिखे ही नहीं खेले भी हैं। प्रसाद के नाटकों को कुछ ने मंचीय न होने तक ही बात की थी। और तो और प्रेमचंद ने नाटक लिखे हैं क्योंकि ये सब जनता को जगाना तथा भारत भूमि की इयत्ता के अंकुर उगाना चाहते थे। अब सवाल स्क्रिप्ट लिखने की ओर जाने का तो यह समय का दबाव है। लेखक भी हाड़मांस वाला आदमी है। आज वह तुलसीदास या निराला नहीं हो सकता। माने अपनी पारिवारिक, सामाजिक ज़िम्मेदारियों को तिलांजलि नहीं दे सकता। अभाव भले झेल ले। ये सही है कि स्क्रिप्ट लेखन में वह बाज़ार का हिस्सा हो जाता है। और माँग के अनुसार पूर्ति का पुर्ज़ा बनना पड़ता है फिर भी रचनात्मकता की आश्वस्ति तो शायद वहाँ भी है। यश के साथ मूल्य भी मिलता है। मैंने भी दो स्क्रिप्ट लिखी थीं। एक वृत्तचित्र के लिए तथा एक फ़िल्म के लिए प्रसिद्ध नाट्य निर्देशक बी एम शाह ने लिखवाई थी। एक अन्य के लिए स्वर्गीय अरुण कौल ने कहा था, पर वह कहानी बीच में ही अटक गई। ये बीती सदी की बातें हैं। रही बात नाटक की तो वह जारी है। कहा भी जाता है कि " शो मस्ट गो ऑन"।

वैसे नाटक सभी भाषाओं में कम लिखे जा रहे हैं। बांग्ला में अब कोई बादल सरकार शंभुमित्र, मराठी में कोई विजय तेंदुलकर, देशपाण्डे कहाँ दिखाई देता है।

आकाश माथुर- ग्रामीण परिवेश की कहानी लिखने वाले लेखक, धोती पहन कर विदेश जाते हैं। वे अपनी पहली विदेश यात्रा में कैसा अनुभव करते हैं?

महेश कटारे- ग्रामीण परिवेश की कहानियों पर आलोचना की दृष्टि कम जाती है तो इस परिवेश वाले लेखकों के उन केन्द्रों से संपर्क कम होते हैं, जहाँ से विदेश यात्राएँ संभव होती है। ये राजधानियों में रहने-बसने वाले संपर्क संपन्न कवि लेखकों का क्षेत्र है। मैंने अभी तक मात्र दो विदेश यात्राएँ की हैं। जिनमें एक निजी व्यय पर पशुपतिनाथ के दर्शन की नेपाल यात्रा है। नेपाल यात्रा विदेश यात्रा नहीं मानी जाती। दूसरी यात्रा "ढींगरा

फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन" के सौजन्य से कनाडा की हुई। जिसमें उपन्यास "कामिनी काय कांतारे" (भर्तृहरि काया के वन में) पर सम्मान ग्रहण करने टोरंटो (स्कारबरो) बुलाया गया था। इसके लिए मेरा पासपोर्ट बनवाने से लेकर वीज़ा तक के खट्टे-मीठे अनुभव हैं। फिर एयरपोर्ट पर प्रवेश से वायुयान, बीच में हीथ्रो पर यान बदलना। मेरी वेशभूषा लोग ऐसे देखते जैसे बावरे गाँव में ऊँट आ पहुँचा हो। कथाकार पंकज सुबीर साथ थे तो यात्रा में कोई परेशानी नहीं हुई, हाँ शौचालय में पानी उपलब्ध न होकर पेपर था, तो रास्ते पर स्वयं को अस्वच्छ अनुभव करता रहा। होटल में मैंने इसका तोड़ निकाल लिया था। स्कारबरो के हॉल में भारतीयों के बीच बड़े सुखद क्षण थे। बच्चे मेरी धोती को कौतुक से देख रहे थे तो एक माँ ने बताया- "ओह दिस इस अवर नेटिव, इंडिअन ड्रेस"। ढींगरा दंपति का सत्कार और डॉ. ओम ढींगरा की विनम्रता तो भुलाई नहीं जा सकती। वहाँ श्री श्याम त्रिपाठी और सुश्री सुरेखा जी की आत्मीयता, जैसे हम अपने किसी निकट रिश्तेदार के घर में हों। इस यात्रा के अनुभव "भारतीय ज्ञानपीठ" से प्रकाशित यात्रावृत्त "देस बिदेस दरवेश" में संकलित हैं।

दो विदेश यात्राएँ होते-होते रह गईं। सूचना पाते और हल्की सी तैयारी के बाद पता चला कि मेरे स्थान पर कोई अन्य मित्र गए। अच्छा यह रहा कि संभावित यात्राओं को हमने प्रचारित नहीं किया। ख़ैर, राजधानियों का चरित्र कुलटा होता है।

आकाश माथुर- आपकी साहित्य यात्रा बहुत लंबी है। इस यात्रा में आपने कई बदलाव देखे, आपकी शुरुआत से लेकर अब तक क्या-क्या बदलाव आप देखते हैं और उनका असर क्या हुआ?

महेश कटारे- उम्र के लिहाज से मेरा लेखन में प्रवेश कुछ विलंब से हुआ। ललक बचपन से थी। गाँव भर में हमारा घर ही मात्र ऐसा था जिसमें रामचरित मानस, सबल सिंह चौहान कृत- हिन्दी में महाभारत (दोहा चौपाई) सुख सागर, प्रेम सागर, श्री मद्भागवतगीता जैसे धार्मिक ग्रंथों के अलावा

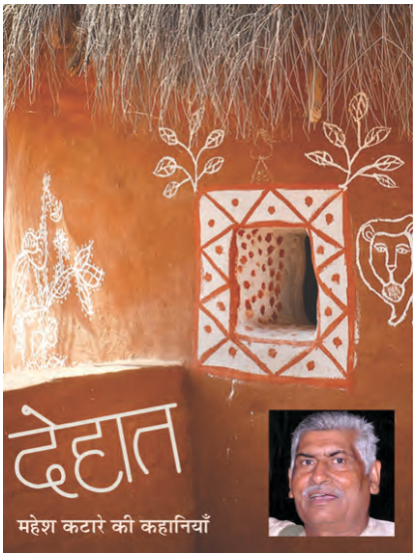

कुछ किताबें थीं। जैसे क़िस्सा तोता मैना, हातिमताई, बारामासी, गीतावली, प्रेमचंद की कहानियाँ और शरदचन्द्र का उपन्यास, सुदामाचरित्र तथा राधेश्याम रामायण व कुछ नौटंकी जैसीं। आल्हखण्ड ठाकुरों तथा ठकुराई वाले (अब मण्डल ठाकुर या पिघड़ा ठाकुर) घरों में पाया जाता था। उसके पश्चात् कुछ पारिवारिक स्थितियाँ ऐसी बनीं और रहीं कि पढ़ाई में व्यवधान हुआ व ज़िम्मेदारियाँ सिर पर आईं। हाँ, वह कठिन समय था हमारे लिए। माँ ने वह समय सहा, पार किया। मैं भी सहायक था। बी ए तक की पढ़ाई इसी समय से लड़ते, सहते हुई। इसबीच पढ़ने-लिखने की लत भी लगी। मेरी तरुणाई व युवतर काल में कवि, लेखक हमारी पीढ़ी के हीरो होते थे। ग्वालियर की सड़कों पर जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, विरेंद्र मिश्र, आनंद मिश्र, प्रकाश दीक्षित, जगदीश सलिल, मुकुट बिहारी सरोज, शांतिस्वरूप "चाचा" कोमल सिंह सोलंकी जैसों को हम आते-जाते या मंचों पर देखते, सुनते। मार्ग में हम उन्हें नमस्कार करते और मुस्कराहट के साथ उत्तर मिल जाता तो निहाल हो जाते। मन में उन जैसा होने की कामना जागती। मिलिंद जी का एक पाठ हाई स्कूल के कोर्स में था। अँग्रेज़ी में सॉक्रटीज़ (सुकरात) का पाठ था। मिलिंद की देहयष्टि या वपु ऐसा था कि वह हमें सुकरात जैसे लगते। समाजवादी थे तो छोटी-बड़ी सभाओं में भाषण देकर सत्ताधीशों को ललकारते भी थे, जेल भी गए।

सन् 1978 में प्रकाश दीक्षित के संपर्क में आया। वह कवि, कथाकार, उपन्यासकार थे और विद्वता की ऐसी धाक कि कवि लेखक भी उनसे कन्नी काटते। उनके कारण प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़ा। तब मैं कविता, कहानी, गीत सब लिखने लगा था। प्रलेस से जुड़ने पर जाना कि लिखने के लिए पहले पढ़ना ज़रूरी है। उछ्वास उगल देना रचना नहीं हो पाती।

प्रलेस की स्थानीय गोष्ठी में रचना पर बातचीत होती थी। वरिष्ठ टिप्पणी करते, सुझाव भी देते। वे उत्साह बढ़ाते पर वाह-वाह, प्रशंसा बहुत नाप-तौल कर करते। मुझे कहने में हिचक नहीं कि तब नया या प्रौढ़ लेखक भी प्रलेस के परिवार में शामिल होता था। परसाई जी, डॉ. कमला प्रसाद, ज्ञानरंजन जैसे दिग्गजों का व्यवहार आत्मीय था। आयोजनों में यह होता कि किसी धर्मशला या स्कूल के कक्ष में सबके बिस्तर ज़मीन पर एक या दो बड़े कमरों में ही रहते थे, गैलरी में भी। आप सोचिए कि एक कोने में हम जैसे नागार्जुन के आसपास झिमटे हैं, तो दूसरे कोने में त्रिलोचन जी के बिस्तर के आसपास भी वही हाल है। शमशेर जी के आसपास भी महफ़िल सजी है। आज विश्वास कर पाना कठिन है कि सुबह जब निस्तार या फ़गरात होने शौचालय पर पंक्ति लगी है तो आप पाते हैं कि दूसरे, तीसरे, चौथे क्रम पर भीष्म साहनी सिर झुकाए खड़े हैं तथा पहले आप, नहीं पहले आप ही हो रही है। यह अलग बात है मैंने संगठनों को व्यक्तिगत अहम्, मैं अधिक शुद्ध/ शुद्धतावादी प्रदर्शन में क्षरित होते भी देखा है। यह मेरी दुखती रग है।

1984 में "सारिका सर्वभाषा कहानी प्रतियोगिता" में मुझे कहानी "इतिकथा-अथकथा" पर पहला स्थान मिला था। सर्वभाषाओं की कहानियों में प्रथम होना उस समय बड़ी साहित्यिक परिघटना थी, सो भी मेरे जैसे नाम गोत्र हीन ग्राम कथाकार के लिए। इसके बाद मुझे ख्यात कथाकार गोविन्द मिश्र का पत्र मिला। अज्ञेय जी के संयोजन में "वत्सल निधि" द्वारा आयोजित रचना शिविर के लिए। मैं नया-नया प्रगतिशील था और अज्ञेय प्रगतिशीलों के

निशाने पर होते थे। बहरहाल मैंने तब के प्रदेश कार्यकारी अध्यक्ष प्रलेस डॉ. कमला प्रसाद को तथा प्रलेस महासचिव ज्ञानरंजन जी को पत्र लिख अनुमति चाही। ज्ञान जी का तो उत्तर नहीं मिला, हाँ डॉ. कमला प्रसाद ने यह लिखकर अनुमति दी कि "चाहो तो चले जाओ।" वहाँ मुझे अज्ञेय जी, विष्णुकांत शास्त्री, विद्यानिवास मिश्र तथा गोविन्द मिश्र एवं अन्य वरिष्ठ लोगों के सानिंध्य व प्रियंवद, नवीन सागर, नवनीत मिश्र जैसे युवा कथाकारों के साथ बैठने, रहने, चर्चाओं में शामिल होने का अवसर मिला। प्रलेस से इतर यह सात दिन का सुविधा संपन्न रचना शिविर था। खुलकर बहस, मेल-मिलाप वाला। सबको मेरे प्रलेस से जुड़े होने की जानकारी थी, किन्तु यहाँ भी मुझसे दुराव, अलगाव न था बल्कि स्नेह, आत्मीयता ही मिली और बनी रही। क्या कहूँ कि एक समय प्रगतिशीलों के परम आलोचक एवं उसी समय अनेक प्रगतिशीलों के मित्र भी अशोक वाजपेयी जी ने भी मुझे उस तरह अन्य न माना। आज भी अपनी आदत के अनुसार मैं बिना समय लिये उनसे मिलने पहुँच जाता हूँ, तो पर्ची पहुँचने के पश्चात् कुछ देर प्रतीक्षा कर आकास्मिक प्रसंग की भाँति स्वयं को उनके कक्ष की कुर्सी पर सामने बैठा पाता हूँ। कहना चाहता हूँ कि वैचारिक असहमति, पाले, खेमों के बावजूद रचनाकारों के बीच संवाद था जो कम होता जा रहा है। अभी मेरा इलाहबाद जाना हुआ तो वहाँ से मात्र डॉ. काशीनाथ सिंह से मिलने बनारस चला गया और अस्वस्थता के बावजूद वह ऐसे मिले जैसे कोई बिछुड़ा आत्मीय आया हो, घण्टों बैठे रहकर बातचीत की। मेरे होटल में ठहरने पर नाराज़ी प्रकटकर सामान वहीं लाने को कहा। तो साहित्य में ऐसी प्राप्ति कम नहीं है।

इधर ऐसी फुर्सत, आत्मीयता कम हुई है। किसी रचना पर आप अप्रिय जैसी टिप्पणी नहीं कर सकते। कोई त्रुटि बताना चाहें तो नहीं बता सकते। स्वयं को युवा मानने वाले कुछ मित्र ऐसे हैं जो वरिष्ठ पीढ़ी से कुछ सीखना नहीं चाहते। "अहो रूप अहो ध्वनि" का चलन बढ़ रहा है। साहित्य-व्यवहार,

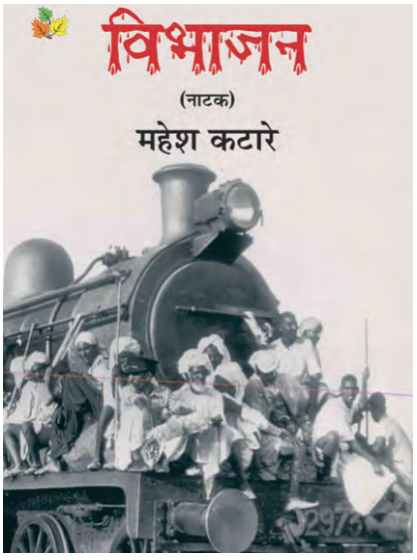

साहित्य-व्यापार की ओर बढ़ता दिखता है, पर मैं निराश नहीं हूँ। उपेक्षित, अदेखे क्षेत्रों, समाज से नए विषय, नया जीवन, संघर्ष, ऊर्जा दर्ज करते कवि, कथाकार, कलाकार भी सामने आ रहे हैं। जिनके पास नई भाषा व नई कहन है। यह अच्छा लगता है-

"रहिमन यों सुख होत है बढ़त देखि निज गोत।

ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि अँखियन को सुख होत।।"

आकाश माथुर- अपनी शुरुआत से लेकर अब तक के बदलाव के बारे में आपने बताया। अब भविष्य की बात करते हैं। नए कहानीकार लेखन को किस तरफ ले जा रहे हैं।

महेश कटारे- यद्यपि मेरा बहुतेरा समय जीवन पाथेय जुटाने में जाया हो जाता है फिर भी मैं नई कृतियों, नए रचनाकारों तथा वे भी जो अब प्रसिद्धि की सीढ़ियाँ चढ़ रहे हैं, इन सबको पढ़ने के लिए समय चुराता हूँ। इसमें मेरा भी स्वार्थ है कि कुछ हद तक नए समय, नई चुनौतियों, वर्तमान के संघर्ष, तिकड़मों, इन्हें खोजने वाली भाषा से परिचित हो लेता हूँ। आत्मीयों का नाम लेते संकोच होता है पर आप "चौपड़े की चुड़ैलें" पढ़ लीजिए। वहाँ जटिल जीवन का तकनीकी विन्यास है। प्रज्ञा, प्रवीण कुमार, राकेश तिवारी, निर्देश निधि, गीताश्री, किरन सिंह, उर्मिला शिरीष, उदयन कितने तो नाम हैं, लीजिए मनोज पाण्डे, चरण सिंह पथिक आदि कितने तो छूट रहे हैं गिनाने में। "को बड़ छोट कहत अपराधू" जिनकी प्रशंसा (रचना की) में मैंने पत्र तक लिखे हैं। कितने नाम गिनाऊँ? पर एक बात मैं ज़रूर चाहता हूँ कि कभी कहीं व्यक्ति के रूप में जानने का अवसर मिलने पर यदि किसी में चतुराई, आत्ममुग्धता दिखती है तो उसे मैं स्वीकार नहीं कर पाता। जो हो पूँजी, बाज़ार और टेक्नोलॉजी ने भाषा बदली है, व्यवहार बदले हैं यहाँ तक कि रिश्ते भी बदले हैं। जाने क्यों कुछ लेखक कूट-व्यवहार अपनाते से दिखते हैं। यूँ तो "दूर के ढोल सुहावने ही लगते हैं।" पर पास आने पर पता चलता है कि उनके बजने में बड़ी पोल है। तब उनसे तो क्या अपने लेखक होने पर भी वितृष्णा सी होती है। चलो! मैं कह रहा था कि बदलाव की गति तीव्र है। भारत में पहले के चार वर्ण अब नए चार वर्ण हैं- दलित, आदिवासी, पिछड़ा और सामान्य। प्रजातंत्र जातितंत्र के नगाड़े बजा रहा है। राजनेताओं की आत्मा मण्डी का माल है। गणतंत्र के संविधान में सत्ता तक पहुँचने, सत्ता बचाने के लिए सैकड़ों थेगड़े टाँके जा चुके हैं, टाँकने की तैयारी है सो भी लोकतंत्र के नाम पर। सांप्रदायिक और जातियुद्ध की बिसात तैयार की जा रही है तो ऐसे में नख दंतहीन साहित्यकार, लेखक, कथाकार, कवि अगर शतरंज के कुछ पैंतरे अपना लेता है तो उसी पर दोष क्यों धरूँ? गोकि क़लम पकड़ने वालों की आदि प्रतिज्ञा है कि अन्यायी सबल को प्रतिष्ठा नहीं दूँगा, न मिलने दूँगा। हमारे भारत में तो सीकरी (सत्ता) को पनहियाँ टूटने से भी कमतर कहा गया है।

ऐसी आपाधापी के बीच भी हिन्दी कवि कथाकार की आत्मा मण्डी से मुँह मोड़ लेती है तो मुझे गर्व होता है। कुछ नए कथाकार इन परिवर्तनों को पकड़ने की कोशिश करते दिखते हैं। इस कोशिश में कोई फंतासी की ओर जाता है तो कोई अमूर्तन व वैयक्तिकता की ओर। वह भी क्या करे समाज व संसार के ऊपर राजनीति, अर्थप्राप्ति, स्वार्थ के पाखण्ड का ऐसा घटाटोप है कि आगे का मार्ग सूझना मुश्किल हुआ है। कोई स्पष्ट गंतव्य ही नहीं कि मनुष्य को कहाँ जाना, ले जाने को सुझाना है। इसलिए आप कहानी, कविता की कोई सामयिक प्रवृत्ति भी नहीं बूझ सकते। जैसे

कहानी, नई कहानी, समांतर कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी जैसे विशेषण। ठीक है कि नया है कहानी में हल्ला-सा भी है, पर यह हल्ला दूसरों से ज़्यादा स्वयं को विश्वास दिलाने के लिए ही होता है कि नया ही है सचमुच। मैं तो बहुत जानता नहीं हूँ। स्याद् वाद को मानता हूँ कि मैं नहीं वही सही हो सकते हैं। साहित्य कर्म यों भी सत्ताकेन्द्री शहरों में छाँव पा रहा है या उधर का मुखालेखी है। कहानीकार लिखने में लगा है, सामर्थ्य होने पर भी उसके पास दिशा नहीं दिखती है, तो किस और जाना है का संकेत कैसे देगा। हाँ विविध समाजों, जीवन के चित्र बड़ी ख़ूबी से उपस्थित कर रहा है, जो शुभ है। मुझे विश्वास है कि नया कहानीकार संवेदना के शून्य में धँसते जा रहे समय में सृजनात्मक मुठभेड़ का मार्ग तलाश लेगा।

आकाश माथुर- कहानियों के भविष्य की चर्चा की, अब आपकी भविष्य की योजनाओं के बारे में भी पाठक जानना चाहेंगे। हमें और पाठकों को आपकी रचनाओं का इंतज़ार रहता है।

महेश कटारे- आपके इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मुझे भय है कि कोई ऊँची या किताबी बात मेरे मुँह से न निकल जाए, पर कहना चाहूँगा कि मेरे लेखन का स्वभाव जड़ीभूत यथार्थ की सौन्दर्याभिरुचि व आस्था के तुमुल कोलाहल से कुछ भिन्न है। भाँति-भाँति के विमर्श कोलाहल की ओर मुड़ते देखता हूँ तो यहाँ मैं विवेक की कमी और कलात्मक ह्रास के चिह्न भी देखता हूँ। प्रयास में रहता हूँ मेरी कहानी, उपन्यास या नाटक भी आज के सत्ता संदर्भो की परिक्रमा न करते हुए जीवन के वर्तमान को, मूल्यों को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ पकड़े ताकि पाठक भविष्य के संभावित संकेतों को खुलता देख सकें।

मैं टेबिल पर बैठकर लिखने वाला नियमित लेखक नहीं हूँ। मेरे घर की देहरी व खिड़की भी सीधी गली सड़क पर खुलती है। कोई भी समय-बे-समय मेरे लिखने-पढ़ने के बीच आ पहुँचता है। गाँव के रिश्ते औपचारिकता नहीं जानते, तो लेखन अनिश्चित है। आजीविका का स्वरूप भी

अनिश्चित। लेखन मन के मौसम तथा बाह्य प्रभावों के सामंजस्य पर टिका होता है। फिर भी कुछ रूपरेखा तो तय करनी ही पड़ती है। अगला उपन्यास आल्ह खण्ड पर आधारित है। आल्ह खण्ड एक ऐसा लोक महाकाव्य है जिसमें प्रतिपग युद्ध है, बात-बात पर युद्ध, जीवन और मृत्यु के बीच मात्र साँस भर का फासला और आश्चर्य कि इस लोककाव्य की व्याप्ति अहिन्दी भाषी प्रदेशों तक है। आपस में लड़ने-मरने का नतीज़ा यह कि अनेक बार हार कर भागा हुआ विदेशी आक्रांता गौरी तराइन के युद्ध में पृथ्वीराज चौहान को परास्त कर बंदी बना लेता है और देश आठ सौ वर्ष की ग़ुलामी में चला जाता है। इसलिए इस उपन्यास को मैंने "आत्महंता अध्याय" नाम दिया है। विडंबना यही कि हम आज भी मोर्चे जमा रहे हैं। कथानाट्य का संग्रह जो भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ कहानियों पर हैं- "रंगरूपक" नाम से "शिवना प्रकाशन" के पास है। सोचता हूँ कि इसी कड़ी में एक कथा-नाट्य संग्रह श्रेष्ठ हिन्दी कहानियों पर भी हो। कुछ कहानियाँ मेरी नज़र में हैं। समय ने अवकाश और शरीर ने साथ दिया तो एक बड़े नाटककार पर उपन्यास लिखने की भी इच्छा है। इस प्रकार भर्तृहरि, भवभूति के साथ मिलाकर एक "त्रयी" बन जाएगी। देखें कितना व कैसे बन पाता है।

आकाश माथुर- इन दिनों साम्प्रदायिकता बढ़ी है। ऐसे में नए कहानीकार साम्प्रदायिकता की चुनौती का कैसे सामना कर रहे हैं?

महेश कटारे- मित्र, ये बड़ा चिंतनीय प्रश्न है। भारत में आक्रांताओं से जो ग़ुलामी सन् 1192 के तराइन युद्ध में पराजय के बाद आरंभ हुई वह अकबर के समय में सामाजिक समरसता की ओर बढ़ी। सूफ़ी संतों का इसमें बड़ा योगदान रहा। रहीम, रसखान, बेगमताज, नज़ीर, मीर जैसे कवियों ने हिन्दू, मुस्लिम के फ़ासले को भरपूर कम किया, फिर अँग्रेज़ों की तिकड़म ने इसे भरपूर बढ़ाया। आज भी कुर्सी की चाहत इस खाई को चौड़ा ही कर रही है। रचनाकार इस घाव पर मलहम लगाने की भरपूर कोशिश करते हैं। शायद ही कोई साहित्यकार, कलाकार हो जो सांप्रदायिक फाँक को न पाटना चाहता हो, पर विडंबना देखिये कि लोकतंत्र के नाम पर वोट की राजनीति ही इस घाव को नासूरी बनने में मदद कर रही है। सांप्रदायिकता ही नहीं तुष्टि-पुष्टि की राजनीति ने जाति आग्रह भी मज़बूत किया है। आज राजनैतिक दलों में पार्टी टिकिट ईमानदारी, लोकप्रियता पर नहीं जाति संख्याबल के आधार पर दिये जाते हैं, खुले आम। संसद, विधान सभाओं में जाति के सांड अपने सींग तान-तान कर दहाड़ते हैं। कोई छिपी बात नहीं है। गांधी जी ने वंचितों को बड़ा पवित्र व आत्मीय संबोधन दिया था- हरिजन। गांधी, गांधी कहने वालों ने उस जगह दलित शब्द बिठाकर संवैधानिक कर दिया। क्या यह गांधी के विचार की हत्या नहीं है? यूँ सांप्रदायिक सौहार्द के पक्ष में बहुतेरी कहानियाँ लिखी जा रही हैं, हाँ जाति सौहार्द पर शायद कम है। सांप्रदायिक सौहार्द्र पर मेरी एक बड़ी प्रिय कहानी है- "इन दिनों मैं पाकिस्तान में रहता हूँ।" इस कहानी के जन्म से मुस्लिम "भाई सा" पर सौ-सौ हिन्दू निछावर किए जा सकते हैं। मैंने स्वयं एक कहानी लिखी थी- "फ़तह"। एक शानदार कहानी है- "मैं पीर मनावण चल्ली"। तो लिखा जा रहा है। दसियों कहानियाँ हैं। कोई भी रचना अशुभ को सीधे नहीं रोकती, वह रोक सकने वाली शक्ति के दिमाग़ का हथियार बनती है जिससे अशुभ रुके। आज जिनके हाथों में शक्ति है उनका साहित्य से

नाता टूट गया है, उन्हें जोड़-तोड़, कुर्सी गिराने-कुर्सी बचाने से ही फ़ुर्सत नहीं। नासूर के लिए बड़ा ऑपरेशन चाहिए। कहानी का मलहम अब कारगर नहीं दिख रहा। लेखक तो अपना धर्म निभा ही रहा है।

आकाश माथुर- जितना हिन्दी साहित्य को लेकर भारत में काम हो रहा है, उतना ही विदेश में भी हो रहा है। प्रवासियों के योगदान को आप किस तरह देखते हैं।

महेश कटारे- निश्चय ही विदेश में हिन्दी रचनात्मकता उल्लेखनीय है। प्रवासी भारतीयों के लेखन से मेरा कम परिचय है। पहले अभिमन्यु अनंत, रामदेव धुरंधर, ऊषा प्रियंवदा आदि कुछ लेखकों की रचनाओं से परिचय था फिर तेजेंद्र शर्मा, सुधा ओम ढींगरा, सुषम बेदी की रचनाएँ पढ़ी। सुधा ओम ढींगरा की तो कहानियों के साथ कविताएँ भी मिल गईं, तो उन्हें पढ़ा और मुझे लगा कि अरे यह तो मेरे संज्ञान की नई खिड़की खुल रही है। फिर उपन्यास "नक़्क़ाशीदार केबिनेट" पढ़ा तो उधर बस रहे भारतीयों के द्वंद्व, जद्दोजहद और अपनी सांस्कृतिक स्मृतियों को बचाये रखने व नए स्थानिक मूल्यों से सामंजस्य बनाने की ज़रूरतों का जायज़ा मिला। कोरोना काल पर तो हिन्दी में शायद उनका पहला उपन्यास है। बाद में दीर्घनारायण का वृहत्काय उपन्यास आया "रामघाट में कोरोना"। सुदर्शन प्रियदर्शिनी ने बहुत अच्छी कहानियाँ लिखी हैं। आदरणीय श्याम त्रिपाठी ने "हिन्दी चेतना" के कुछ अंक दिए थे। उन्हें पढ़ा। पता लगा कि विदेश में भारतीयों की मातृभाषा चाहे कुछ भी रही तो पर वे सब हिन्दी को अपने मूल उत्स की पहचान मानकर व्यक्त करते हैं। इसके बाद "विभोम-स्वर" के माध्यम से विदेश के हिन्दी रचना संसार से परिचय का दायरा बढ़ा, बढ़ रहा है। यह पत्रिका विदेश के हिन्दी लेखकों व हिन्दी भाषी पाठकों के बीच सेतु का काम कर रही है। गुणवत्ता से समझौता किये बिना। हंसा दीप, पुष्पा सक्सेना, अरुणा सब्बरवाल ऐसे ही कुछ नाम स्मरण में आ रहे हैं। माने, लगा कि विदेश में भी हिन्दी में बहुत कुछ श्रेष्ठ लिखा जा रहा है, श्रेष्ठतर भी। यह

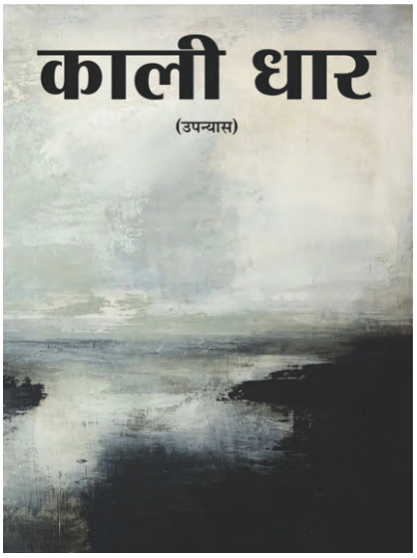

बड़ा उपक्रम है। हिन्दी आलोचना को इसे समझते हुए अपना दायरा बढ़ाना चाहिए।

आकाश माथुर- किन प्रवासियों के लेखन को आप पसंद करते हैं और क्यों?

महेश कटारे- मैंने कहा है कि विदेश में हो रही हिन्दी रचनात्मकता में मेरा गहरा प्रवेश नहीं है जो नाम मैंने बताए हैं, उन्हीं में से दुहराव होगा। वैसे उन सबमें एक सामान्य बात लगी। वह है भारतीय संस्कृति को उसकी विशिष्टता और स्वायत्तता में बचाये रखकर नई ज़मीन व संस्कृति से सामंजस्य बनाने की प्रवृत्ति। वहाँ कहानी, कविता मूल्य निर्णय के बीच से पैदा होती है, सिद्धांत और राजनीति की कोख से नहीं। यद्यपि मेरा अनुमान कहीं ग़लत भी हो सकता है। मॉरीशस के हिन्दी साहित्यकारों की स्थिति कुछ अलग लगी। वे मानव जीवन की अपरिहार्य नियति के संदर्भों में धँसते हैं पर विदेश के हिन्दी लेखकों में प्रस्थान, प्रवाह, उथल-पुथल के युगीन आयाम प्राय: सब जगह हैं।

आकाश माथुर- आप पुराने लेखकों की कहानियों का नाट्य रूपांतरण कर रहे हैं, इस प्रक्रिया में क्या मापदंड होते हैं। आप कैसे कहानियों का चयन करते हैं और किसी वर्तमान समय के लेखक की कहानियों में आपको यह संभावना नहीं दिखती।

महेश कटारे- इस विषय में कुछ ऊपर ज़िक्र हो चुका है कि कथानाट्य नई और सम्मिश्र विधा है। कम से कम हिन्दी में तो है ही। नाटक में रुचि रखने व श्रेष्ठ कहानियों को पढ़ने की चाह वाले पाठकों, अध्येताओं के लिए यह बहुत उपयोगी है। जहाँ व्यवस्थित रंगमंच उपलब्ध नहीं वहाँ तो यह और भी मौजूँ है। इसका पाठ हो सकता है, एकल प्रस्तुति हो सकती है तथा मंचीय भी। कहानी ऐसी चुननी होती है जो श्रेष्ठ, बहुपठित तो हो ही पर उसमें नाट्य तत्व भी हों। जैसे पहले कथा नाट्य संग्रह की बात करूँ तो उसमें विश्व की श्रेष्ठ कहानियों से चयन है जिसमें जयशंकर प्रसाद, निकोलाई गोगोल, आंतोन चेखव, ज्यों पाल सार्त्र, प्रेमचंद, सआदत हसन मंटो व येनो आन्द्रेई की कहानियों पर कथा नाट्य है। चेखव की सबसे प्रसिद्ध कहानी यूँ तो "वार्ड नं. 6" है पर मैंने "घोंघा" को लिया है क्योंकि यह नाट्य के अनुकूल है। इसी प्रकार "शिवना प्रकाशन" जो कथानाट्य संग्रह आना है "रंग रूपक" उसमें भारतीय भाषाओं के बारह प्रसिद्ध लेखकों की कहानियों को चुना है। मंटो की कहानियों से "मोज़ेल" है। जिसमें नाटकीयता के साथ उत्सुक, विलक्षण व्यंजना भी है। हिन्दी से भी ऐसी कहानियाँ चुन रहा हूँ। जिसमें अभी दो वर्तमान लेखक मेरे सामने हैं। नाम न लूँगा क्योंकि एक लेखक मित्र से मैंने इस विषय में जानकारी चाही तो वह मेरी उम्मीद से अधिक सहयोग को तत्पर दिखे, हर प्रकार का सहयोग। ख़ैर वह अच्छे लेखक के साथ समर्थ भी हैं, पर अपेक्षा उनकी भी होगी कि मैं उनकी कहानी शामिल करूँ। मुझे यथासंभव ऐसी अपेक्षाओं से बचना भी है। स्वीकृति का पेंच भी है, पर उसमें वरिष्ठ व वर्तमान के अनुसार विभाजन हो। यह सब करने के बीच कुछ व्यवधान भी है पर रास्ता तो निकलता ही है। मैंने तो जाना और पाया है कि जो कुछ अपने हाथ में होता है उसमें कुछ नियति भी तय करती है।

आकाश माथुर- महेश जी धन्यवाद इतने विस्तार के साथ चर्चा करने के लिए। निश्चित ही इस चर्चा से नए लेखक लाभान्वित होंगे। आपकी आने वाली किताबों के लिए अग्रिम शुभकामनाएँ, हमें भी अन्य पाठकों के साथ आपकी इन किताबों का इंतज़ार रहेगा।

000

अभिव्यक्ति की प्रबलता

अर्चना पैन्यूली

मैं क्यों लिखती हूँ? मेरी साहित्यिक यात्रा कैसी रही? इस यात्रा को शुरू करने के लिए मुझे किस बात ने प्रेरित किया? जब मुझसे ये प्रश्न पूछे जाते हैं तो मन में कई तरह के विचार आते हैं। मनन करने लग जाती हूँ अपनी लेखन प्रक्रिया पर। कब शुरू हुई? क्या कारण था, क्या प्रभाव था, कौन सी वह शुरुआती चिंगारी थी जिसने रचनात्मक लेखन में मेरी रुचि जगाई? जहाँ तक मुझे ध्यान आता है ऐसा कुछ भी विशिष्ट उत्प्रेरक नहीं था, न कोई ट्रेजडी, न कोई प्रोत्साहन जिससे मैं कागज़ और क़लम उठाने के लिये प्रेरित या बाध्य हुई। न कोई अकेलापन, न अलगाव की भावना। यह भी नहीं था कि किसी अभावग्रस्त, अशिक्षित परिवार में जन्म लिया और अनगिनत सपने और उम्मीद के साथ एक नई दुनिया में प्रवेश किया, या शिक्षा प्राप्त करने के लिए परिवार और समुदाय के साथ संघर्ष करना पड़ा। न मैं किसी विद्वान् परिवार से हूँ कि मुझे समाज को बदलने और एक क्रांति को लाने के लिए लिखना है। कोई भावनात्मक अशांति, मानसिक भ्रम, विद्रोह, प्रतिबंध नहीं कि अपने अस्तित्व को सँजोने के लिये, एक साधन व हथियार के रूप में क़लम उठाया।

जबसे होश सँभाला स्वयं को बस पढ़ते-लिखते पाया। हाँ, उस लेखन को दिशा अवश्य बाद में मिली। अख़बार, पत्रिकाओं के लिये लिखना बाद में शुरू हुआ। उपन्यास प्रकाशन का नंबर तो बहुत बाद में आया। अगर मैं अपनी साहित्य सर्जन प्रगति की बात करूँ तो वह कुछ-कुछ इस तरह है-पढ़ने-लिखने को शौक बचपन से ही था। परिवार में माहौल भी था। कहते हैं कलाएँ विरासत में मिलती हैं। मैंने एक ऐसे परिवार में जन्म लिया जो साहित्य अभिरुचियों से परिपूर्ण था। घर में अख़बार के आलावा तीन-चार पत्रिकाएँ - साप्ताहिक हिन्दुस्तान, अखंड ज्योति, सरिता, इण्डिया टुडे, वगैरह नियमित आती थीं। पत्रिकाएँ – सरिता, गृहशोभा, धर्मयुग और साप्ताहिक हिन्दुस्तान ने प्रारंभिक प्रभाव डाला। साहित्यकार प्रेमचन्द के अलावा हिमांशु जोशी और शिवानी की रचनाओं ने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया और मैं लिखने के लिए प्रेरित हुई। देहरादून, जहाँ मेरी परवरिश हुई, उस दौर में ऐसा शहर था जहाँ साहित्य लोगों के दिलों में धड़कता था। जब एक छात्रा थी तो स्कूल एवं कॉलेज की वार्षिक प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में मेरी लेखन सामाग्री हमेशा छपती थी। तुकबन्दियाँ लिख कर दोस्तों व अपने आस-पास के लोगों को हँसाया भी। किशोरावस्था में मनोरमा व सरिता वगैरह के लिये रचनाएँ भेजने की गुस्ताख़ी की, बाक़ायदा पिताजी से पैसे लेकर उन्हें बाज़ार से टाइप करवा कर टाइप्ड रचनाएँ भेजी, या तो जवाब नहीं आया या वे अस्वीकृत हो गईं।

फिर 1987 में, विवाह उपरांत, अपने मूल शहर देहरादून छोड़ मुंबई आई और वहाँ एक माध्यमिक स्कूल में अध्यापन शुरू किया तो लेखन को कुछ नए आयाम मिले। वैसे तो मैं विज्ञान की अध्यापिका थी, मगर हिन्दी भाषा में मेरा अधिकार देख प्रिंसिपल बच्चों को वादविवाद प्रतियोगिता के लिये तैयार करवाने व पन्द्रह अगस्त, छब्बीस जनवरी जैसे राष्ट्रीय दिवसों पर स्पीच वगैरह लिखने का दायित्व मुझे ही सौंपती थीं। उस वक्त मेरा लेखन स्कूलों तक ही सीमित था। मैं स्कूल में आयोजित होते राष्ट्रीय दिवस समारोह एवं सालाना सांस्कृतिक कार्यक्रमों में प्ले व स्क्रिप्ट लिख कर छात्र-छात्राओं का डायरेक्शन करती थी। फिर, एक बार मुंबई में एक विस्तृत इंटर-स्कूल डिबेट कम्पीटीशन का आयोजन हुआ; जिसमें कई स्कूलों के बच्चे भाग ले

अर्चना पैन्यूली
Islevhudvej 72 B, 2700
कोपनहेगन, डेनमार्क
फ़ोन-4571334214
ईमेल- apainuly@gmail.com

रहे थे। सन् 1992 का दौर था, कंप्यूटर ज़ोर पकड़ रहा था। वाद विवाद का विषय था –'क्या कंप्यूटर अध्यापक का स्थान ले सकता है?' अपने स्कूल से भाग लेने वाले विद्यार्थी को प्रतियोगिता के लिये तैयार करवाने की ज़िम्मेदारी मुझ पर आई। वह लड़की जिसे मैंने गाइड किया, प्रतियोगिता में प्रथम आई, जोकि स्कूल के लिये एक विशेष उपलब्धि की बात थी। स्कूल का स्टाफ मेरे लिखे प्ले, स्क्रिप्ट व स्पीच आदि की सराहना कर मुझे निरंतर प्रेरित कर रहा था कि मैं स्कूल के दायरे से बाहर निकल देश की राष्ट्रीय पत्रिकाओं के लिये साहित्य सर्जन करूँ। कुछ शरारती अध्यापकों ने चुटकी भी ली, "तुम तो हिन्दी टीचर से भी अच्छा लिखती हो। कहीं उनकी छुट्टी न कर दो।"

बहरहाल अपने स्कूल के साथियों से मिले निरंतर प्रोत्साहन से मैंने एक साथ दो कहानियाँ व दो लेख लिख कर उन्हें भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन हेतू भेज दिये। मेरे सुखद आश्चर्य के लिये चारों की स्वीकृति आ गई। एक कहानी 'उमंग' सरिता में प्रकाशित हुई, दूसरी कहानी 'मन भटक गया था' - मेरी सहेली में। एक लेख 'देश के नेता कठघरे में' जनसत्ता में व दूसरा लेख 'दूरदर्शन के ये लंबे धारावाहिक' सरिता में प्रकाशित हुआ। जनसत्ता में छपे लेख पर कई पाठकों की मेरे पास पोस्टकार्ड से साकारात्मक प्रतिक्रियाएँ भी आईं। इससे मेरा मनोबल अत्यधिक बढ़ा व लेखन की दिशा में ठोस क़दम उठे। मेरी रचनाएँ सरिता, और गृहशोभा में छपने लगीं। मेरी लेखनी अभी भ्रूण अवस्था में ही थी कि ज़िंदगी में अकस्मात् एक परिवर्तन यह आया कि सितम्बर 1997 में मेरे पति ने डेनमार्क में एक राष्ट्रीय अनुसन्धान केंद्र में रिसर्चर का जॉब ले लिया और मैं अपने परिवार के साथ अपना देश छोड़ विदेश, डेनमार्क आ गई। एक नए मुल्क व नए परिवेश में मेरे लेखन का फ़लक नि:संदेह विस्तीर्ण हुआ। डेनमार्क एक छोटा देश होने के बावजूद एक बहुराष्ट्रीय देश है। विविध संस्कृतियों के नाना प्रकार के लोगों से रूबरू होकर अपने भारत और अपनी भारतीय संस्कृति को और अच्छे से जानने-समझने का मौक़ा मिला। डेनिश भाषा सीखते हुए हिन्दी भाषा की व्यापकता और ख़ूबियों का पता चला। डेनिश साहित्यकारों से मेरा साक्षात्कार हुआ, जिनमें कारेन ब्लिक्शन, पीटर होएग और हेल्ले हेल्ले की रचनाओं ने मुझे विशेष प्रभावित किया।

फिलहाल प्रवास के अनुभव मेरे लिये प्राथमिक आँकड़े थे, जिन्हें मैं साहित्य के माध्यम से अपने घर तक पहुँचा सकती थी। यहाँ एक इंटरनेशनल स्कूल में शिक्षण करने के अलावा जो कुछ भी अतिरिक्त समय मुझे मिलता, वह लेखन में व्यतीत होने लगा। मेरे प्रवास की पहली कृति 'लक्ष्मी' कहानी को पाठकों ने बेहद सराहा। कई पाठकों ने इसे मेरे लेखन यात्रा का मील का पत्थर घोषित किया। जिन पात्र को लेकर मैंने लक्ष्मी कहानी रची, उन्होंने मेरी ज़िंदगी को बड़े क़रीब से छुआ। लक्ष्मी (नाम बदल दिया है) मेरी बाई थी–मुंबई में मेरे घर काम करती थी 1992 से 1997 तक, यानी हमारे डेनमार्क प्रस्थान तक। लक्ष्मी ने उस वक्त मेरे परिवार की बहुत मदद की जब हमें किसी सहायक की नितांत आवश्यकता थी, वह भी पूरी निष्ठा से। वह हमारे लिए सिर्फ एक बाई ही नहीं थी। वह हमारी कुक थी, बच्चों की बेबीसिटर, हमारे घर की केयरटेकर, हमारा संबल, हमारी दोस्त थी। मेरे बच्चे जो कि अब बहुत बड़े हो गए हैं, आज तक लक्ष्मी को भूले नहीं। आज भी लक्ष्मी का नाम हमारे घर में बहुत इज़्ज़त से लिया जाता है।

विगत पच्चीस-तीस वर्षों से निरंतर लिख रही हूँ। हिन्दुस्तान की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाएँ जनसत्ता, इंडिया टुडे, हंस, वागर्थ, साहित्य अमृत, कादम्बिनी, नया ज्ञानोदय, गगनांचल, कथादेश, वूमेन एरा, अलाइव, आदि पत्रिकाओं में अपनी तमाम रचनाएँ छपवा चुकी हूँ। डेनिश विख्यात लेखिकाएँ कारेन ब्लिक्सन एवं हेल्ले हेल्ले की रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद भी किया।

हिमालय पर्वतों से डेनिश तट, 1995 से 2023 तक की साहित्यिक यात्रा में मेरे लेखन को कई नए आयाम व सोपान मिले। मैंने शोध आलेख, कहानियाँ, कविताएँ, उपन्यास, कहानी संग्रह और अनुवाद का सर्जन किया। मेरे अब तक के लेखकीय खाते में चार उपन्यास, चार कहानी संग्रह, दो डेनिश-हिन्दी अनुवाद, और कई शोध आलेख दर्ज हैं। एक उपन्यास और दो कहानी संग्रह प्रकाशाधीन हैं। 2003 में अभिरुचि प्रकाशन से प्रकाशित और उत्तराखंड की पृष्ठभूमि पर रचित मेरे प्रथम उपन्यास 'परिवर्तन' को नवनिर्मित राज्य उत्तराखंड का प्रथम उपन्यास होने का गौरव प्राप्त है। भारतीय ज्ञानपीठ से 2009 में प्रकाशित हुआ दूसरा उपन्यास, 'वेयर डू आई बिलांग' डेनिश समाज पर लिखा पहला हिन्दी उपन्यास है। इसका अंग्रेज़ी अनुवाद रूपा पब्लिकेशन्स ने 2014 में प्रकाशित किया। राजपाल एंड संस से प्रकाशित तीसरा उपन्यास 'पॉल की तीर्थयात्रा' को फेमिना सर्वे ने 2016 के दस सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में घोषित किया। 2020 में भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित 'कैराली मसाज पार्लर' का अंग्रेज़ी, कन्नड़, और मराठी अनुवाद प्रकाशित हुआ। डेनिश लेखिका डेनिश पुरस्कृत उपन्यास का हिन्दी अनुवाद– 'आज की बात करें' 2021 में प्रभात प्रकाशन से प्रकाशित हुआ।

अपने साहित्यिक योगदान के लिए डेनमार्क एवं भारत स्थित साहित्यिक संस्थानों से पुरस्कार सम्मान भी प्राप्त हुए। इंडियन कल्चरल एसोसिएशन, डेनमार्क द्वारा प्रेमचंद पुरस्कार, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान द्वारा पद्मभूषण डॉ. मोटूरि सत्यनारायण पुरस्कार, मध्यप्रदेश शासन संस्कृति विभाग द्वारा डॉ. निर्मल वर्मा सम्मान, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त मेमोरियल ट्रस्ट द्वारा उपन्यास 'वेयर डू आई बिलांग' के लिए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार, साहित्यिक संस्था धाद महिला सभा, उत्तराखंड द्वारा सम्मानित हो चुकी हूँ। विश्वविद्यालयों के कई शोध विद्यार्थी मेरी रचनाओं पर शोध कर रहे हैं। अम्बेडकर विश्वविद्यालय के बीए के कोर्स में उपन्यास 'वेयर डू आई बिलांग' लगा है। महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक के बीए कोर्स में उपन्यास 'पॉल की तीर्थयात्रा' लगा हुआ है।

मनुष्य भावों को प्रकट करने के जितने भी

रूप उभरे हैं, लेखन सर्वाधिक व्यापक व आकर्षक भाव है। अपने विचारों और भावनाओं को अभिव्यक्त करने, अपने चिंतन को एक दिशा देने के लिए ही कोई लिखता है, फिर इस पर भी निर्भर करता है किसी के पास लिखने की कितनी क्षमता है। अनुभव सभी के पास है उसे शब्द देने की काबिलियत किसी-किसी के ही पास है। कितने ही लोग हैं जो कलम और कागज़ उठा कर चार पंक्तियों से अधिक नहीं लिख पाते। अपने साथ (किसी भी लेखक के साथ) आलम यह है कि किसी विषय-वस्तु में लिखने बैठती हूँ तो अविराम लिखती ही जाती हूँ। बाद में छँटनी करनी पड़ती है, ज़्यादा बकवास करने की ज़रूरत नहीं, टू द प्वाइंट बात करूँ। व्यावहारिक और व्यापारिक दृष्टि से भी सोचती हूँ तो आज के ज़माने में किसी के पास इतना वक़्त नहीं कि कुछ लंबा पढ़े, सब कुछ लघु और सीधा हो।

अन्य कलाओं की तरह लेखन एक कला है, जिसमें वातावरण, आनुवंशिक, अवसर व भाग्य सभी अपना योगदान देते हैं। मेरे घर में मेरे अन्य भाई-बहनों में भी लिखने की दक्षता है। दो बहनें तो प्रकाशित रचनाकार हैं। पिताजी बहुत अच्छा लिखते थे, वह बात अलग हैं कि उनका लिखना केवल अपने ऑफ़िस के दस्तावेज़ व ख़तों तक ही सीमित रहा। विवाह उपरांत पति व बच्चों से पूरा पारिवारिक सहयोग मिला। कई लोगों का सहयोग मिला, कईयों से प्रोत्साहन मिला, मगर अपनी बड़ी बहन सरोजिनी नौटियाल, भूतपूर्व प्रिंसिपल जीजीआईसी कॉलेज, की मैं विशेष आभारी हूँ जो मेरे लेखन में अत्यधिक रुचि लेती हैं और मुझे लिखने के लिये हमेशा प्रेरित करती हैं, जिनका मुझसे वार्तालाप इस वाक्य से शुरू होता है: क्या लिखा जा रहा है आज? जो जब भी मुझसे बात करती हैं तो अधिकतर बात मेरे लेखन पर केन्द्रित रहती है।

कभी कोई बात, कोई भाव, या किसी की कोई अदा दिल को इस तरह छू जाती है कि वह लेखन के लिए प्रेरणा बन जाती है। कई बार ऐसी घटनाएँ घटती हैं जो मन को मंथन में डाल देती हैं, और तब लेखनी उठाना स्वाभाविक हो जाता है। समाज के जटिल और अबूझ विषयों पर भी लिखने का मन करता है, जिसके लिए गहन शोध की आवश्यकता होती है। मेरी लेखनी ने विभिन्न सामाजिक मुद्दों को छुआ है—जैसे वेश्यावृत्ति पर आधारित मेरी कहानी गॉडमदर, गे किरदारों और ट्रांसजेंडर के अनुभवों पर लिखी कहानियाँ 'मैं लड़का हूँ' और 'मेरी माँ मेरे साथ है', जो वागर्थ में प्रकाशित हुईं। इसके साथ ही, आधुनिक तकनीक, चैट जीपीटी को लेकर लिखी मेरी कहानी, 'आभासी यार' कथादेश में प्रकाशित हुई। चूँकि मैं एक शिक्षिका हूँ, इसलिए स्कूल कैंपस, छात्रों और अध्यापकों से जुड़े अनुभवों को भी कहानियों में ढाला है। विभिन्न विषयों पर लिखते हुए हर बार एक नया दृष्टिकोण खोजने की कोशिश रहती है, जो मेरे लेखन को और समृद्ध बनाए।

एक रचना में कई घटनाओं का समावेश रहता है, एक पात्र कई पात्रों को लेकर निर्मित होता है। पाठकों की प्रतिक्रियाएँ भी लिखने को प्रोत्साहित करती हैं। जब लेखन की स्थापना हो जाती है तो उसे एक दिशा मिल जाती है, और लेखन का एक जुनून छा जाता है। लेखक अपनी कृतियों द्वारा दूसरों को भी उन अनुभवों से गुज़ारता है, पाठकों का किसी वस्तुविशेष पर दृष्टिकोण बदलता है। लेखक कईयों की आवाज़ बनता है। मुझे कई पाठकों ने मेरी स्त्री विमर्श रचनाओं को पढ़ कर कहा कि जो बात उन्हें पहले अनुचित लगती थी, मेरी रचना में वह इस तरह प्रस्तुत रहती है कि उन्हें वह उचित लगने लगती है।

मेरे पाठक कहते हैं कि उन्हें मेरी रचनाओं में एक अलग परिवेश- स्कैंडिनेविया प्रायद्वीप, डेनमार्क- के मानव जीवन और व्यवस्था को प्रमुखता से जानने-समझने का अवसर मिलता है। डेनमार्क के सामाजिक जीवन का चित्र, यहाँ के आम लोगों की सत्यनिष्ठा, नियमबद्धता, मानवीय मूल्य, लोकतांत्रिक आचरण और राज्यप्रदत्त नागरिक सुरक्षा जैसी विशिष्टताओं को मैं अपने लेखन में उजागर करती हूँ। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी-मैंने अचर्चित-उपेक्षित देश डेनमार्क को अपनी रचनाओं से बहुचर्चित कर दिया। एक पाठक की टिप्पणी- 'चूँकि अर्चना के लेखन का फ़लक बहुत फैला हुआ है, अत: उनकी क़लम से विश्व के भिन्न-भिन्न भू-दृश्यों में पसरी मानव सभ्यता की झलक भी देखने को मिलती है।'

कई उपलब्धियाँ प्राप्त हुईं तो कई चुनौतियाँ भी आई। विदेश में हिन्दी का कोई माहौल नहीं, अपने हिन्दी प्रकाशन और पाठक कोसों दूर, जिनसे संपर्क करना भी आरंभिक दौर में सरल नहीं था। फिर भी लिखने की जिजीविषा ने लेखन को सतत रखा। हालाँकि हिन्दी एक बड़ी आबादी द्वारा बोली जाती है, लेकिन पाठक वर्ग बहुत बड़ा नहीं, विशेष कर ख़रीद कर पुस्तकों को पढ़ने वाले बहुत कम हैं। व्यापक पाठक वर्ग तक अपने लेखन को पहुँचाना एक बहुत बड़ी चुनौती है। विगत कुछ वर्षों में हिन्दी पाठकों की तुलना में हिन्दी लेखकों की संख्या में काफी बढ़ोत्तरी हुई है। एक सही प्रकाशन खोजना चुनौतीपूर्ण है।

विदेश में रह कर साहित्य सर्जन करने से सांस्कृतिक बारीकियों के संदर्भों संरक्षण के बारे में भी सोचना पड़ता है। पाश्चात्य समाज बहुत खुला है, कितना हमें अपने हिन्दी पाठकों को प्रस्तुत करना है इसकी भी कशमकश रहती है। विदेशी और देशी सांस्कृतिक तत्वों के संरक्षण को संतुलित करना एक नाजुक काम है। हिन्दी का एक मानकीकृत रूप चुनना या किस भाषा का उपयोग करना है यह तय करना भी चुनौतीपूर्ण है, ख़ासकर जब विविध दर्शकों को आकर्षित करने का प्रयास किया जा रहा हो।

वैश्विक साहित्यिक या अंतरराष्ट्रीय मंच पर मान्यता प्राप्त करना हिन्दी लेखकों के लिए बहुत अधिक चुनौतीपूर्ण है। प्रवासी साहित्य के खेमे में हमारे लेखन का मूल्यांकन करना भी हतोत्साहित करता है।

बहरहाल मैं जब लिखती हूँ तो सारी एकाग्रता लेखन पर ही होती है। रचना कहाँ जाएगी, कहाँ छपेगी, इसकी फ़िक्र नहीं होती। बस लिखने की धुन रहती है। मगर मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपनी बात व विचार अन्यों के साथ साझा करना चाहता है।

इसलिए बाद में तलाश होती है किसी प्रकाशक की, अपनी कृति के प्रकाशन के लिये। सो लेखन के दो परिप्रेक्ष्य उभर जाते हैं। एक तो अभिव्यक्ति की प्रबलता, हृदय से उपजे जज़्बात, भावनाएँ और दूसरा उनका प्रकाशन करवाना – जो कि एक वाणिज्यिक समझौता है। अगर पैसों के लिये लिख रही होती तो अब तक भूखी मर चुकी होती। ध्येय लेखन से कमाना नहीं है। अगर हमारा मकसद लेखन से आर्थिक लाभ है तो एक लेखक के रूप में हम कभी स्थापित नहीं हो सकते। अपने विचारों को प्रकट करना और लोगों के साथ साझा करने की चाह है। बेशक यह चाह भी है कि मेरे लेखन को कुछ मान्यता मिले, साहित्य जगत् में मेरे लेखन की चर्चा हो। यदि लेखन में कोई नयापन है तो उसे रेखांकित किया जाए। रचनाओं की समीक्षा हो व उनको पढ़ा जाए। अचर्चित रहना लेखक की सबसे बड़ी पीड़ा है। किसी रचना विशेष पर पाठकों की टिप्पणी लेखक को एक नवीन ऊर्जा से भर देती है।

अंत में यही कहूँगी कि मेरी रचनाओं से पाठकों को स्कॅन्डिनेविया प्रायद्वीप, डेनमार्क – में मानव जीवन और सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था को प्रमुखता से जानने-समझने का अवसर मिलता है। भारत और डेनमार्क के मध्य एक साहित्यिक सेतु बनाना चाहती हूँ। मेरी रचनाएँ संभावित वैश्विक अपील के साथ भारत उपमहाद्वीप से एक मज़बूत संबंध रखती हैं। कथा साहित्य के आलावा डेनमार्क में हिन्दी और भारतीय संस्कृति के संरक्षण की दिशा में भी मैंने सारगर्भित शोध लेख लिखे हैं। प्रवासी साहित्य पर भी शोध आलेख लिखे हैं।

मेरा उद्देश्य मात्र मनोरंजन करना नहीं, रोचकता के साथ गंभीर, मार्मिक और ज्ञानप्रद भी हो। लोगों के पूर्वाग्रहों को तोड़े। साहित्य में कुछ नई खोज प्रस्तुत करे। मैं दिल से लिखती हूँ, लिखने के लिये कोई दबाव नहीं, अनावश्यक तनाव नहीं। लेखन से आनन्द लेती हूँ। कुछ भी हो जाए, लिखती रहूँगी। साहित्य सर्जन थमेगा नहीं। उम्मीद है यह और चमकेगा।

000

लघुकथा

मिडिल क्लास स्त्री-पुरुष का प्रेम उत्सव

सन्दीप तोमर

"सुनो! सोच रहा था, समय पर मालिक तनख़्वाह दे देता तो तुमको इंडिया गेट घुमाने ले जाता, गुलाब के फूलों का एक गुच्छा देता और रात को लौटते वक्त बाहर ही खाना खाकर आते।"

"तनख़्वाह मिलते ही पहले छोटे की फीस जमा करनी है, तीन दिन से स्कूल नहीं जा रहा, टीचर ने बोला है कि फीस लेकर ही स्कूल आना। पिंकी की खाँसी नहीं रुक रही, उसे अच्छे डॉक्टर को दिखाना है। राशन के सभी डिब्बे भी ख़ाली होते जा रहे हैं। किराने वाला पिछला चुकता करने पर ही आगे उधार देगा।"

"वह सब तो ठीक है लेकिन सुना है, फरवरी प्रेम का माह है, कब से तुम्हें ऐसा वाला प्रेम नहीं किया, जो शादी से पहले करता था।"

"अजी यह सब प्रेम-श्रेम शादी से पहले के ही चोंचले हैं, गृहस्थी सही से चल जाए, हर माह सही समय पर तनख़्वाह मिल जाए तो प्रेम ही प्रेम है, वरना तो...।"

"अच्छा, एक कप चाय के साथ दो रस्क दे दो, काम पर जाने का समय हो रहा है।"

"चाय ले आती हूँ, रस्क तो जो बचे थे शाम को पिंकी ने खा लिए, ज़िद तो रोटी की कर रही थी लेकिन अगर उसको रोटी दे देती तो अभी आपके टिफिन लायक आटा न बचता।"

वह ख़ाली चाय पीकर टिफिन ले सड़क की ओर निकल गया। पत्नी भारी आँखों से बच्चों को जगाने अंदर की ओर चली गई।

000

सन्दीप तोमर
डी 2/1 जीवन पार्क, उत्तम नगर, नई दिल्ली 110059
मोबाइल- 8377875009
ईमेल- gangdhari.sandy@gmail.com

एक दरवाज़ा नया सा

विकेश निझावन

जाने क्या था जिसे माही रात भर खुरचती और थपथपाती रह गई थी। रात के सन्नाटे में भला कोई आवाज़ छिप सकती है क्या। आदमी ज़रा ऊँचे से साँस भी ले तो दूसरे की नींद उखड़ जाए। इस खुरचन और थप-थप की आवाज़ से चैताली की नींद उखड़ गई तो वह एक झटके से उठ बैठी। पलंग से पाँव नीचे धरे और दीवार का सहारा ले बिजली का बटन दबाती बोली- अम्मा, यह थप-थप की आवाज़ कैसी? माही, जो पहले से जग रही थी, एकाएक बोली- आवाज़! कैसी आवाज़, मैंने तो न सुनी।

-हाँ, तू काहे को सुनेगी। चैताली लगभग चीखती हुई बोली- तू तो पहले से ही बहरी हो रही, मैं तो भूल ही गई थी। चैताली ने उठकर सभी दरवाज़ों की सिटकनियाँ देखी, खिड़की के पल्लों से बाहर को झाँका, फिर माही की ओर एक नज़र घूर कर देखा। इस वक्त माही का चेहरा काला-स्याह लग रहा था। एक बार तो चैताली को लगा, अम्मा ने कोई दैवीय रूप तो नहीं ले लिया। ज़रा इधर-उधर नज़र दौड़ा चैताली ने बत्ती बुझाई और पलंग पर आ धँस गई। चैताली की कब आँख लग गई उसे नहीं पता, लेकिन बीच-बीच में वह बुदबुदा कर रह गई थी, मेरी तो नींद हराम कर दी इस आवाज़ ने। पता नहीं कौन-सा कीड़ा रेंग रहा है इन दीवारों पर।

सवेरे आँख खुलते ही चैताली अम्मा पर चिल्लाई- अब जल्दी से तैयार हो ले। जाने रात भर क्या करती रही तू। कभी दीवार पर थप-थप करती, कभी खुरचने लगती। दीवार को खुरच कर उस पर कौन सी अपनी निशानी छोड़ कर जा रही है। तुझे अपना नाम तो लिखना आए न, फिर कौन सी इबारत घड़ने जा रही थी। और अम्मा, यह कोई प्रेम पर्वत तो है नहीं, जिस पर लोग तेरा लिखा देखने आएँगे। यह तो ऐसी कच्ची दीवार है, इस पीढ़ी के साथ ही दफ़न हो जाएगी। चैताली ने ये सब क्या कह दिया, माही झेंप कर रह गई। उसे लगा, जैसे सच में कोई चोरी करती पकड़ी गई हो। चैताली को कहीं कोई अंदेशा तो नहीं हो गया। अभी कल दोपहर को ही तो आई है। और पिछले चौबीस घंटे में तिलक ने इधर क़दम तक न रखा।

मुई ज़िंदगी भी क्या चीज़ है, माही अपने आप से बुदबुदाने लगी, व्यक्ति सारी ज़िंदगी लड़ता ही रहता है। कभी दूसरों से कभी अपने से ही। जाने कैसा रण-क्षेत्र उग आता है उसके भीतर। अपने ही सवाल, अपने ही जवाब। बाऊ से भी ना पटी उसकी। उसे भी चैन से ना जीने दिया कभी। उसके अपने ही कर्मों का फल है जिन्हें वह अब भुगत रही है। बाऊ के साथ एक ठिकाना तो था उसका। बाऊ के जाने के बाद तो वह भी बिखर गई। भूख भी ख़त्म हो गई और सिर पर

विकेश निझावन
मकान नंबर 45, आदर्श नगर, मॉडल टॉउन, अम्बाला शहर-134003, हरियाणा
मोबाइल- 8168724620
ईमेल- vikeshnijhawan@rediffmail.com

छत भी न रही। बाऊ के तेरहवें पर ही चैताली ने ऐलान कर दिया था, मैं अब तुम्हें अकेली न रहने दूँगी अम्मा।

-तो क्या अपना घर बार छोड़ मेरे पास आ बैठेगी?

-नहीं अम्मा, तुझे अपने साथ ले जाऊँगी।

-क्या लड़की के घर बैठ ज़िंदगी काटूँगी?

-हाँ अम्मा। ज़माना बदल गया है, तेरे दामाद ने भी खुलकर कह दिया है, अब वह तेरे को यहाँ अकेली नहीं रहने देगा।

-कैसी बात करती है तू। तेरे बाऊ ने यह जो मकान बनवाया था, इसे ताला लगा जाऊँगी क्या?

-यह सब तो ईंट पत्थर का है अम्मा। साथ न जाने का। बाऊ भला क्या साथ ले गया। इसका मोह छोड़ दे अब। तेरे दामाद ने इसका सौदा करा दिया है। पैसे तेरे को मिल जाएँगे, इसकी चिंता तू मत कर।

माही थोड़ी देर के लिए विचलित हुई, परंतु इस बात से उसे राहत भी मिली कि बेटी और दामाद को उसकी चिंता है। वे उसे अकेला नहीं छोड़ रहे। दामाद और बेटी के प्रति उसके मन में जो स्नेह उमड़ा, उसे सोच उसकी आँखों से दो बूँद आँसू भी टपक पड़े।

रात के वक्त चैताली ने माही का एक बैग और एक झोला तैयार कर लिया था। सोने से पहले चैताली ने स्पष्ट रूप से माही से कह दिया, अभी रजिस्ट्री में एक महीना लग जाएगा। तब तक थोड़ा-थोड़ा करके तेरा बाक़ी का सामान भी चला जाएगा। माही को राहत मिली थी परंतु चैताली के घर पहुँच वह इतना समझ गई कि उसका कदम ग़लत उठ गया है। वह जिस लक्ष्मण-रेखा को पार कर आई है, अब उस पार लौटना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन है। सारी उम्र के बाद आज रिश्तों के अर्थ समझ पायी माही। रिश्तों के अर्थ हैं, अपना स्वार्थ पूरा करना। चैताली ने माही को ऊपर वाला कमरा दे दिया था। माही ख़ुश थी। ठंडी हवा आर-पार आती रहेगी। लेकिन जीने के लिए केवल ठंडी हवाएँ काफी नहीं होती। व्यक्ति को अपनों की गर्मी की ज़रूरत भी तो होती है। अब सारा दिन कमरे में बैठी दीवारों से बातें करे।

यह सब तो हुआ, बरसात की पहली झड़ी ने ही माही के कमरे को इस कदर भिगो दिया, जैसे कोई सुनामी आ गई हो। माही ने शिकायत की तो चैताली मुँह बिचकाती बोली, "अब बारिश है, छत तो कहीं से भी टपक सकती है।" बात सिर्फ कमरे की नहीं, ऊपर से नीचे आने में कितनी दिक़्क़त! कहीं पाँव ज़रा इधर-उधर पड़ गया, वह तो गई। आख़िर माही रिरियाती सी बोली- नीचे कोई कमरा ख़ाली न?

-नीचे तो कोई कमरा ख़ाली न। पीछे वाले कमरे में तेरे दामाद के दोस्त आवें। उनके आने से तेरे को और भी परेशानी रहेगी। माही चुप! अब क्या कहे? चैताली ने अम्मा की समस्या शमशेर के आगे रखी तो वह झट से बोला- इसमें दिक्कत क्या है। अम्मा को नीचे पीछे वाले कमरे में शिफ्ट कर देते हैं।

-कैसी बात करते हो। नीचे कितने लोगों का आना-जाना बना रहता है।

-अरी, इस वक़्त लोगों की नहीं, अम्मा की सुन।

-क्या मतलब? चैताली समझ नहीं पा रही थी।

-अरी, नादान मत बन। अम्मा को उसके पैसों का हिसाब भी तो देना है। ऊपर से नीचे आने-जाने में ख़र्च तो आता है न। और सब पैसे काटेंगे तो गुज़ारा होगा। बिन्नी की फीस-वीस भी तो तभी निकल पाएगी। चैताली का माथा ठनका। शमशेर ने बात तो ठीक कही। अम्मा सीधे से तो पैसे देगी नहीं। और फिर ऊपर नीचे की साफ-सफाई, मरम्मतें... महँगाई, मज़दूरी कितनी बढ़ गई है। चैताली ने उँगलियों पर हिसाब लगाने की कोशिश की। अम्मा ने पैसा कौन सा छाती पर धर के ले जाना। बैंक में पड़ा-पड़ा तो सड़ ही जाना। चैताली और शमशेर आपस की फुसफुसाहट के बाद ठहाका लगा हँस पड़े। अगली शाम ही चैताली थप-थप करती ऊपर आई थी- तूने तो अच्छी-खासी डाँट पिलवा दी मेरे को।

-क्या मतलब? माही चौंकी थी।

-तेरी तकलीफ़ का ज़िक्र कर बैठी तो तेरा दामाद तो मेरे पीछे ही पड़ गया। बोला, अम्मा को ऊपर तकलीफ़ है तो नीचे क्यों नहीं ले आती। वह तो ख़ुद ही ऊपर चला आने लगा था। एक रोज़ में ऊपर मर थोड़े न जाएगी, मैंने रोका था। बोल अम्मा, मैंने ग़लत कहा?

-पर उसके दोस्त कहाँ बैठेंगे?

-अरी बैठ जाएँगे जहाँ बैठना होगा। जवान हट्टे-कट्टे हैं, ऊपर बिछवा दूँगी खाट उनके लिए।

अगली सवेरे माही का छत पर पड़ा सामान नीचे उतरवा दिया गया था। चैताली रात को ही तीशे को बोल आई थी कि अम्मा का सामान छत से नीचे उतरवा देगा। माही को पीछे वाले कमरे का अंदाज़ा तो था, पर अब जब कमरे में घुसी तो उसे लगा, जैसे आसमान से गिरी और खजूर पर लटक गई हो। आधा कमरा तो घास-फूस से भरा पड़ा था। है तो यह जानवरों का तबेला। दो महीने पहले दो गाय मर गईं। एक रह गई, उसे अब बाहर पेड़ के नीचे बाँध दिया जाता है। दो गाएँ इकट्ठी मर गईं, जो भी सुनता, हैरान रह जाता। माही ने भी पूछा तो चैताली बात को टालती बोली थी, अब यह उनका भाग। मैं क्या जानूँ! लेकिन बीरे से माही को ख़बर हो गई थी, कमरे में बड़ा अजगर आ गया था, अपना ज़हर पिला गया। हे राम! माही तड़प उठी। आज भी उसे लगता है, जैसे वह अजगर इस कमरे में ही कहीं छिपा हो। कमरा बदबू से भरा पड़ा था। माही ने दुपट्टे से नाक को दबोच लिया- अरे कहाँ नरक में आ गई। माही ने भीतर आते ही दाएँ ओर वाली खिड़की के पल्ले खोल दिए। बाहर से हवा का झोंका आया तो माही ने चैन की साँस ली।

माही कुछ देर खिड़की के पास खड़ी रही। बाहर खुला मैदान और हरे भरे पेड़ देख माही को शांति मिली। मैदान में थोड़ी दूरी पर बच्चे गेंद खेल रहे थे। उन बच्चों में उनका नातिन चंदन भी था। माही ने दूर से पहचान लिया। चैताली थाली परोस भीतर ले आई थी तो माही बोली, ज़रा चंदन को तो आवाज़ दे। जब से आई हूँ, घड़ी भर न बैठा मेरे पास।

-वाह! दूर से दिख गया तेरे को। यूँ तो कहे, नज़र कमज़ोर हो गई। कुछ न दिखे।

-अरी! अपनों की तो ख़ुशबू भी खींच लेती है। नाते पोतियों की ख़ुशबू तू क्या जाने।

चैताली पूरी तरह से चिढ़ गई। माही की बहुत बातें उसकी समझ में न आएँ। खिड़की से बाहर एक तरफ जामुन का काफी बड़ा पेड़ है तो दूसरी तरफ कंटीली झाड़ियाँ। माही के भीतर डर बना रहता है, बच्चे दौड़ते कूदते इन झाड़ियों में न फँस जाएँ। कल माही ने चंदन को आवाज़ दे डाली तो वह दौड़ता हुआ खिड़की के पास आ खड़ा हुआ था- कहो नानी, क्या कहना है? कुछ चाहिए क्या?

-नहीं रे! मैं तो कह रही थी, उधर दूर तक मत चले जाना। वहाँ काँटों वाली झाड़ियाँ हैं।

-बस नानी, तुम भी न... चंदन बात अधूरी छोड़ वापस भाग गया था। माही खिड़की से हट चारपाई पर आ बैठी। तभी धड़ाम की आवाज़ आई तो माही ने हड़बड़ाते हुए इधर-उधर देखा। बच्चों की गेंद खिड़की से भीतर आ गई थी। अरे! कहीं उसके माथे पर लग जाती तो? चंदन खिड़की के पास आ खड़ा हुआ था

- नानी, गेंद तो पकड़ा दे।

-मैं न देने की। मेरे माथे पर आ लग जाती तो? माही ने ग़ुस्सा दिखाया।

-कैसी बात करती हो नानी! रबड़ की गेंद है, गेंद भले फट जाती, पर तेरा माथा नहीं फूटना था।

-चल हट! शरारती कहीं का। अच्छा, गेंद चाहिए तो भीतर आकर ले ले।

-यही से दे दे न नानी। हमारा मैच चल रहा है, सारा खेल बिगड़ जाएगा। चंदन के याचना भरे शब्दों से माही पिघल गई- देती हूँ बेटा, अभी देती हूँ। और माही चारपाई के पल्ले का सहारा ले बोली- अभी देती हूँ। माही चंदन को गेंद पकड़ाती बोली- आज मेरे पास आएगा क्या?

-ज़रूर आऊँगा नानी। थैंक्यू नानी। चंदन के शब्दों पर तो माही निहाल हो आती। अब तो यह रोज़ का किस्सा बन गया। बच्चे मैदान में गेंद खेलते और माही खिड़की के पास जा बैठती। एक दो बार तो गेंद खिड़की के पास आ ही पड़ती और माही उसे झपटकर पकड़ लेती। फिर तो माही को चंदन को चूमने-चाटने का मौका मिल ही जाता। एक बार तो चैताली ने भी माही को गेंद झपटते देख लिया था। वह चिल्ला पड़ी थी- क्यों बच्चों के साथ बच्चा बन रही हो। उम्र देखी अपनी। कोई पसली इधर-उधर हो गई तो रोती फिरोगी।

आज चैताली माही को चाय की प्याली पकड़ाने आई तो बोली- कल से तुझे छत वाले कमरे में जा रहना है। माही चैताली के चेहरे की ओर देखने लगी। दबे से बोली- क्यों?

-देख नहीं रही, छत का कोना कैसे टूट रहा है। बरसात आने से पहले इसे ठीक कर लेना होगा, वरना दिक़्क़त तो तेरे को ही आएगी। बड़ी मुश्किल से मन रमा था माही का। शाम को खिड़की के पास बैठ बच्चों को देखते-देखते वक़्त निकल जाता।

आज की शाम का आनंद तो ले ही ले। माही के भीतर कुछ कुलबुलाने लगा तो वह खिड़की के पास आ बैठी।

आज भी बच्चे रोज़ की तरह मैदान में इकट्ठे हो गए थे। यूँ तो माही की नज़र हर बच्चे पर रहती है परंतु चंदन को तो वह उसकी चाल से ही पहचानने लगी है। बाकी सब तो ठीक है, परंतु जब गेंद ऊपर की ओर जाती है तो माही की निगाहें आकाश पर ही लटकी रह जाती हैं। गेंद कब नीचे आ गई, उसे पता ही नहीं चल पाता। चंदन नानी की इन निगाहों को ताड़ गया था। एक रोज़ दौड़ता हुआ पास आया- नानी, गेंद तो आसमान में ही रह गई।

-आसमान में! माही चौंकी थी। चंदन ने ठहाका लगाते हुए मुट्ठी खोली तो गेंद उसके हाथ में थी।

- मैंने तो गेंद ऊपर फेंकी ही नहीं। वह तो खाली हाथ हवा में उछाला था।

-चल, शरीर कहीं का! माही भी हँसती चली गई थी। चंदन खिड़की के पास सटते हुए बोला, नानी, कल थोड़ा जल्दी खिड़की के पास आ बैठना। कल हमारा मैच है।

-कल से तो न बैठ पाऊँगी यहाँ। कल सवेरे ही मुझे छत वाले कमरे पर चले जाना है। तेरी माँ हुकम कर गई है।

-तुम भी न नानी, बस गेंद की तरह कभी ऊपर, कभी नीचे, कभी इधर, कभी उधर। चंदन भाग खड़ा हुआ था। चंदन की बात देर तक माही के कानों में गूँजती रही। चैताली ने तो सवेरे माही को सोते से जगा दिया- जल्दी उठ अम्मा! मिस्त्री-मज़दूरों ने आ जाना है। दिहाड़ी पर लगाए हैं। माही हड़बड़ा कर उठ बैठी। गुसल में जा आँखों पर पानी के छींटें मारे।

माही ने घसीट-घसीट कर सामान कमरे से बाहर निकाला। शुक्र है, छत पर ले जाने के लिए बिन्नी आ गया था। बोला, काहे को हलकान हो रही हो नानी। मैं हूँ न। कॉलेज से 3 दिन की छुट्टी है। कुछ हैल्प चाहिए तो बता। दिन रात पढ़ाई में डूबा बिन्नी आज नानी के गलबहियाँ डाल रहा था। सामान ऊपर पहुँचा नानी के लिए चाय भी बना लाया।

-नानी, मम्मी तो आज बिज़ी रहेगी, मिस्त्री-मज़दूरों को डाँटने के लिए। तुम्हारे लिए रोटी-पानी में लाता रहूँगा, तुम चिंता मत करना।

-तुम बच्चों के होते मुझे चिंता किस बात की। माही बिन्नी के सिर पर हाथ फेरती बोली।

दोपहर का भोजन भी बिन्नी छत पर ले आया था। थाली नानी के आगे रखते बोला- नानी, कभी-कभी हमारा ध्यान भी रख लिया कर।

-हाँ-हाँ बोल तो, कुछ चाहिए क्या तुझे?

-मम्मी कल कह रही थी, तुम्हारी नानी के पास बहुत पैसा आ गया है। मम्मी-पापा नीचे वाले कमरे की छत भी उन्हीं पैसों में से तो ठीक करवा रहे हैं।

-तुझे क्या चाहिए, तू बता।

-नानी, एक मोटर साइकिल तो दिला दे। तुझे भी सैर करा दिया करूँगा। माही सोच में पड़ गई। बिन्नी उठने को हुआ तो माही एकाएक बोली- अरे रुक तो! यूँ ख़ाली मत जा। अब मेरी ज़िंदगी तो तुम लोगों के साथ ही है। तुम ख़ुश रहोगे तो मुझे ख़ुशी मिलेगी। माही भोजन से निपट अपना अटैची खोलती बोली- ये कुछ पैसे पकड़ और सौदा पक्का कर के आ। बाकी के पैसे बैंक से निकलवा लाना। बिन्नी लगभग उछल पड़ा। नानी का हाथ चूमते हुए नीचे की ओर भाग गया। नीचे से छत को ठोकने की आवाज़ आ रही थी। माही नई छत के सपनों में डूबने लगी कि अगले ही दिन चैताली छत पर आ माही से बोली- हमें पता है अम्मा, तेरा यहाँ मन नहीं लगता। सारी

उम्र शहर में रही हो, वहाँ की रौनक वहाँ की चहल-पहल देखने को मन करता होगा तेरा।

ऐसी बात नहीं है री! अब कैसी रौनक और कैसी चहल-पहल। बच्चों में मन रमने लगा है यहाँ। धीरे-धीरे सब अच्छा हो जाएगा। कल का किसने देखा अम्मा! तेरे दामाद को तो तेरी आज की चिंता है।

-चिंता किस बात की? चैताली की इन पहेलियों से माही अक्सर विचलित हो जाती है। लड़खड़ाती ज़ुबान से बोल पाई- "कुछ कहा है दामाद जी ने?"

-हाँ, कहता है। अब चैताली सीधे मुद्दे पर आ गई।

-क्या कहता है?

-वह अपना धर्मपुर वाला मकान है न, पिछले आठ महीने से बंद पड़ा है। तेरे दामाद ने बोला है, तू वहाँ जाकर रहेगी।

-मैं वहाँ अकेली? माही चौंक पड़ी।

-अरी, दो बड़े कमरों वाला खुला मकान है। गली-मोहल्ला है वहाँ। दो लोगों के बीच बैठेगी तो अकेली कहाँ रही। देर-सवेर हम लोग वहाँ आते ही रहेंगे। चूल्हे-चक्की वहाँ सब पहले से रखे हुए हैं।

-नीचे वाला कमरा? उसका क्या रहा?

-अरी, वह तो तेरे नाम का है ही। अब देख न, तेरे दामाद को मिलने कितने लोग आते हैं। उनके बैठने की जगह भी तो चाहिए। तेरे बीच बैठ तुझे खज्जल करना है क्या। बिन्नी कल तक मोटरसाइकिल भी ले आएगा, कभी भी तेरे पास आ जा सकता है।

माही क्या कहे अब। सब कुछ उसकी सोच के बाहर है।

तीसरे दिन चैताली और बिन्नी माही को शहर वाले मकान में ले आए। माही को लगा, वह एक कठपुतली है, जो चल नहीं रही, फुदक रही है। छोटी उम्र में जब माही गली-मोहल्ले में कठपुतली का डांस देखती थी तो ख़ूब हँसा करती थी। लेकिन आज माही आँसू बहा रही है। बहा नहीं रही, आँसू तो बह रहे हैं उसके भीतर। उसकी आँखें तो शुष्क पड़ी हैं। ख़ुद पर ही माही मुस्करा दी।

आठ महीने से बंद पड़े दो कमरों में लगे जालों को बिन्नी ने झाड़ू के साथ उतार दिया था। पिछले कमरे की दीवार पर सीलन इस कदर थी मानों अभी टप-टप बूँदें बाहर आने लगेंगी। चैताली होंठों को चबाती बोली-हवा लगेगी तो दो दिन में अपने आप सूख जाएँगी दीवारें।

रसोई की साफ-सफाई कर चैताली ने साथ लाए राशन-पानी को सलीक़े से लगा दिया था। कमरे में लगी चारपाई पर धुली चादर भी बिछा दी। जाती-जाती बोली, नुक्कड़ वाले हलवाई को बोल दिया है, रोज़ सवेरे एक थैली दूध की तेरे को दे जाया करेगा। और हाँ, रात को दरवाज़ा अच्छी तरह से बंद कर लिया करना। गली-मोहल्ला है, जान पहचान हो ही जाएगी।

चैताली के जाते ही माही चारपाई पर निढाल हो गई। इधर-उधर, ऊपर-नीचे जाते वह थक भी गई थी। मानसिक थकान भी उस पर हावी हो रही थी। दो-तीन घटे माही गहरी नींद में डूबी रही। आँख खुली तो परेशान हो आई। वह कहाँ आ गई। चैताली उसे कहाँ छोड़ गई। इस वक्त चैताली उसके सामने होती तो माही ने सच में फट पड़ना था- "अरी, इससे अच्छा तो मुझे किसी क़ब्रिस्तान में छोड़ आती। यहाँ तो मैं जीते जी धुआँ-धुआँ हो रही। कुछ पल बाद माही ने ख़ुद को सँभाला। दीवार पर लगे भगवान् श्री कृष्ण के कैलेंडर के आगे हाथ जोड़ दिए। रात के लिए चैताली डिब्बे में रोटी और सब्ज़ी छोड़ गई थी। जानती थी, आज के दिन माही कुछ पका न पाएगी। खाना गरम तो कर ही लेगी। पर माही ने डिब्बे को हाथ तक न लगाया। उसका भाग्य अच्छा था, सामने वाले मकान में रहने वाली औरत ने दरवाज़ा आ खटखटाया था- "अम्मा, आज ही आई हो, कुछ चाय पानी भिजवा दूँ क्या?" माही का चेहरा खिल गया। बोली- "हाँ-हाँ, चाय तो ले ही लूँगी। भगवान् तुम्हारा भला करें।" पड़ोसन के व्यवहार से माही को काफी तसल्ली हुई। रात को आँख देर से लगी परंतु माही ने अपने बारे में काफी कुछ सोच लिया। कोई बात नहीं, अकेली रहेगी, रह लेगी। अपनों से सारी उम्मीदें छोड़ दे तो अच्छा है। सगी बेटी उसे दरकिनार कर गई, फिर और कौन साथ देगा! अब कम से कम अपने तरीक़े से जी तो पाएगी। माही के भीतर जाने कैसी ताकत आ गई थी। हाथ ऊपर उठाती बोली- "तू चिंता ना करना चैताली के बापू, मैं जी लूँगी, अच्छी तरह से जिऊँगी।"

रात के नौ बज रहे थे, माही की आँखों से नींद कोसों दूर थी। गाँव में तो सात बजे खाना खा लेने के बाद जम्हाइयाँ आने लगती थीं। सहसा माही के कानों में कुछ आवाज़ आई। कोई खाँस रहा था। खाँस ही नहीं, चिल्ला रहा था। यह तो लगता है, किसी की तबीयत बिगड़ गई है। कोई कराह रहा है। उल्टियाँ कर रहा है। माही ने आगे वाली खिड़की खोली। कहीं पड़ोस से आवाज़ आ रही थी। माही ने हिम्मत की, दरवाज़ा खोल बाहर आ गई। गली की रोशनी में सब दिखाई दे रहा था। पड़ोस वाले थड़े पर कोई बुज़ुर्ग बैठा उल्टी पर उल्टी कर रहा था। कमाल है, सभी लोग घरों के अंदर बंद पड़े हैं। क्या किसी को इसकी आवाज़ नहीं आ रही? माही ने हिम्मत की, उन तक जा पहुँची- क्या बात, क्या हो गया तुम्हें?

-पता नहीं, अभी थोड़ी देर पहले भोजन खाया था। जाने क्यों मितली आने लगी।

-घर में कोई नहीं है क्या? माही के लिए नई जगह, नए लोग।

-कोई होता तो देखता। उन्होंने टूटे-टूटे शब्दों में कहा।

-भीतर पानी तो होगा, लेकर आती हूँ। माही बिना कुछ जाने घर के भीतर चली गई। गड़वे में रसोई के नल से पानी भर लाई- हाथ मुँह धो लो, घबराने की कोई बात नहीं। जो था निकल गया। अब आराम से सो रहो, सुबह आऊँगी। बुज़ुर्ग माही के चेहरे की ओर देखने लगा तो माही बोली- परेशान मत हो। तेरे साथ वाले मकान में आई हूँ। पड़ोसन हूँ तेरी। आज ही आई हूँ। मेरी बेटी का मकान है यह। बुज़ुर्ग ने हाथ जोड़ दिए। माही धीरे-धीरे क़दम रखती अपने दरवाज़े तक आ गई।

हे परमात्मा! इंसान को कैसा जीवन दिया तूने। माही ने एक बार फिर हाथ खड़े कर दिए- "क्यों इतना सता रहा है तू?"

इस पृथ्वी पर कितने लोग हैं। हर जगह भीड़ ही भीड़ है। फिर भी हर आदमी अकेला है। कहाँ तक सोच गई माही। बाऊ के सामने

भी कभी-कभी ऐसी बातें किया करती थी माही। तब बाऊ कहा करते थे- "तुझे तो दार्शनिक होना चाहिए था।"

रात के पिछले दो पहर माही गहरी नींद में डूब गई। आँख खुली तो रोशनदान से धूप छन-छन कर भीतर आ रही थी। तभी दरवाज़े पर ज़ोर से दस्तक हुई तो माही सोचने लगी, यहाँ दरवाज़ा खटखटाने वाला कौन आ गया? शायद रात वाली औरत हो। नहीं, माही ने देखा, एक छोकरा हाथ में दूध की थैली लिए खड़ा था। माही दूध की थैली पकड़ रसोई में आ गई। माही झट से बाहर की ओर गई। एक बार पड़ोस में नज़र तो डाल लेती। अब देखा तो बुज़ुर्ग बाहर कुर्सी पर बैठा हुआ था।

माही पास जा पहुँची। बोली -अब तबीयत कैसी है?

-अब थोड़ा ठीक हूँ। भीतर गर्मी थी, बाहर आ बैठा।

-कुछ चाय-वाय ली क्या?

-ज़रा हिम्मत आ जाए तो बनाता हूँ।

-मैं बना रही हूँ न। अभी लेकर आती हूँ। तू भीतर चल कर बैठ। माही तो यूँ घुलमिल गई जैसे बरसों से जानती हो। बुज़ुर्ग कुछ नहीं बोला। चेहरे पर विस्मय के भाव तो उभर आए थे।

माही केतली भर चाय ले आई थी। रसोई में से दो प्याली उठा लाई। चाय उड़ेलती बोली- सोचा, मैं भी तेरे साथ बैठ पी लेती हूँ। बुज़ुर्ग ने प्याली उठाई तो माही की नज़र उसकी उँगलियों पर जा पड़ी- ये उँगलियाँ कैसे जली पड़ी हैं?

बुज़ुर्ग मुस्करा दिया। बोला- "रोटी सब्ज़ी बनाते हुए कभी रोटी जल जाती है, तो कभी उँगलियाँ।

-अकेला क्यों पड़ा हुआ है। कोई नहीं है तेरा?

-मुझे तो तू भी अकेली लग रही। तेरा भी कोई नहीं?

-सुख से बेटी है मेरी। उसी का मकान है जहाँ आई हूँ।

-सुख से मेरा भी एक बेटा है।

-कहाँ है?

-बस नज़दीक ही रहता है। अमरीका में। कहता था, जब आवाज़ दोगे दौड़ा चला आऊँगा।

-तो बुला ले न। मरने के बाद बुलाएगा क्या?

-बेटे मरने के बाद ही आते हैं। कुछ था माही के भीतर, जो चटाक से टूटा। कुछ न बोल पाई। चाय ख़त्म हो गई तो ख़ुद को समेटती हुई बोली- अब उँगलियाँ मत सेंकने बैठ जाना। जो दाल-भात बनाऊँगी, लेती आया करूँगी। चाय की केतली उठाती माही बोली- "अपना नाम तो बता दे। किस नाम से बुलाऊँ तुम्हें?"

-बुलाने के लिए नाम ज़रूरी होता है क्या?

-ज़रूरी तो नहीं होता, पर मालूम तो होना चाहिए।

-मेरा नाम तिलक राज है। पर कोई पूरा नाम नहीं ले पाता। कोई तिलक कहता है तो कोई राज। अब तू जैसे भी कह ले। माही दबे कदमों से दहलीज़ लाँघ आई थी।

दाल-भात का कह तो आई पर उसने तो देखा न कि चैताली राशन पानी में क्या-क्या छोड़ गई है। माही ने लगभग सभी डिब्बे और लिफ़ाफ़े खोल कर देख लिए। एक बार जायज़ा तो लेना पड़ेगा। शुक्र परमात्मा का, दाल-भात के लिए पीली दाल और चावल गठरियों में बँधे मिल गए। माही को रसोई बनाने में कभी आलस नहीं आया। बाऊ तो कहा करता था- "तू असली गृहिणी है। समय पर सब खाना पकाती है और स्वाद भी बहुत होता है। कभी तो उँगलियाँ चाटने का मन होता है।

-मेरी या अपनी? एक बार माही ने ठिठोली में कहा। बाऊ कुछ नहीं बोल पाया। हँसता रह गया था।

कोई दो घंटे बाद ही माही दाल-भात पका लाई थी। तिलक को थाली परोसती बोली- "मैंने नमक-मिर्च हल्का डाला है। कोई कमी लगे तो बता देना।"

-तू अपने लिए न लाई ?

-अरे नहीं, अपने दरवाज़े पर ही खाऊँगी। यहाँ मालकिन बनने न आई। माही इतनी मुँहफट पर ज़ुबान में कोई कड़वाहट ना। सालों बीत गए, किसी ने गली-मोहल्ले में यूँ माही-सा न पूछा, तिलक सोचने लगा, जो भी आता, बेटे को बुलाने का या बेटे के पास चले जाने का उपदेश दे चलता बनता। माही ने बड़े साफ से कह दिया- "अब रोटी पानी की ज़हमत तू मत लेना। मुझे तो बनानी होती है, दो चपाती तेरे लिए भी उतर जाएँगी। कोई एहसान न होगा। महीने का राशन पानी ले लूँगी तेरे से।"

माही जब-जब आती, मन की दो बातें तिलक से कह जाती और दो बातें उसकी सुन जाती। एक रोज़ तो तिलक के मुँह से जैसे फिसल पड़ा-"अकेले रह जाने पर आदमी का कोई जीवन रह जाता है क्या?"

-यह तो प्रकृति का दस्तूर है। कभी कोई इकठ्ठा आया या फिर इकठ्ठा गया? जीवन तो काटना ही है न, इसलिए तो बाल-बच्चे, परिवार बनाया जाता है।

-लेकिन मर्द के लिए कितना मुश्किल है।

-मर्द के लिए! माही जैसे तड़प उठी- "औरत के लिए आसान है क्या? यह कैसे कह दिया तूने। बोल तो, क्यों कहा यह तूने?"

माही के चेहरे की कठोरता देख तिलक काँप गया। ख़ुद को सँभालता बोला- "मेरा मतलब, आदमी के लिए रोटी-पानी बनाना कितना मुश्किल होता है। उसे आदत जो नहीं होती।"

-तुम्हारी बातों के मतलब मैं समझ रही हूँ। तुम्हारी रोटी वाली समस्या का हल मैंने कर दिया ना। दिन में तीन-चार बार तो माही को जाना ही पड़ता। नाश्ता, दोपहर का भोजन और शाम की चाय।

आज शाम का मौसम बहुत अच्छा था। आकाश पर घने बादल, लगा जैसे अभी बरस पड़ेंगे। माही चाय की केतली ले तिलक के यहाँ पहुँची तो वह बोला- "मैंने सोचा था आज चाय के साथ कुछ पापड़ भी हो जाएगा।"

माही मुस्करा दी। बोली, शुक्र मना यह सब मिल रहा है। एक बात और बताने आई हूँ।

-वह क्या?

-कल से मैं नहीं आने की।

-क्यों, क्या हो गया? तिलक एक पल में कहीं अंदर से बुझ सा गया।

-ये गली मोहल्ले वालियाँ जाने क्या-क्या बातें बना रही हैं।

-क्या मतलब?

-अरे मतलब कुछ भी रहा हो, पर मैं नहीं आने की। लेकिन तू चिंता मत कर। तुझे रोटी-पानी मिलता रहेगा।

-किसके हाथ भिजवाएगी? तिलक के भीतर जाने कितने सवाल उठ खड़े हुए। उसके हर सवाल की रेखा उसके मस्तक पर उभर रही थी जिन्हें माही ने पढ़ लिया। उसे ज़्यादा उलझन में न डाल माही थोड़ा पास सरकती बोली- "मेरी बात ध्यान से सुन। कल मैंने देखा, मेरे पीछे वाले कमरे की दीवार भुरभुरा रही है। ज़रा उसको झाड़ू से साफ करने लगी तो सीमेंट का पूरा टुकड़ा मेरे ऊपर आन पड़ा। बचाव हो गया। पर मैंने गौर से देखा, दो ईंटें बाहर को आ रही हैं। कहीं यह भी मेरे ऊपर न आन गिरें। मैंने उन ईंटों को खींचकर बाहर निकाल दिया। तिलक को तो लग रहा था, जैसे किसी फिल्म की कहानी देख-सुन रहा है।

-फिर

-फिर क्या! मैंने देखा, वहाँ से तेरा कमरा साफ-साफ दिख रहा है। माही खी-खी कर हँसने लगी।

-इसमें हँसने जैसी क्या बात?

-अरे मुझे तो नया दरवाज़ा मिल गया। वहीं से तेरे को दाल-भात की कटोरी पकड़ा दिया करूँगी।

-एक बात तो बता माही।

-क्या कुछ ग़लत लगा?

-तेरा नाम माही किसने रखा था ?

-मेरा नाम मेरे माँ-बाप ने ही रखा होगा।

-बहुत सही नाम रखा उन्होंने।

-सो कैसे?

-तू माँ ही तो है। तिलक ने 'माही' शब्द को टुकड़ों में बाँटकर कहा। माही के चेहरे पर मुस्कान तो उभरी, कहीं भीतर से भी खिल-खिल आई। माही दहलीज़ से क़दम बाहर रखने को हो रही थी कि तिलक ने फिर आवाज़ देकर रोक लिया- "अरी रुक तो।"

-अब क्या हुआ?

-अरी अगर कभी किसी की तेरे इस नए दरवाज़े पर नज़र पड़ गई तो?

-मैंने वहाँ भगवान् श्री कृष्ण का कैलेंडर लटका दिया है। उन्होंने द्रौपदी की लाज रखी थी, मेरी ना रखेंगे। अब माही दहलीज़ पार कर चुके थी।

माही ने तिलक के दरवाज़े पर आना छोड़ दिया था। जो भी संदेश होता, वे दीवार के आर-पार खड़े एक दूसरे से कह देते। अब गली वालों की ज़ुबान क्या कहती हैं, माही ने तो जैसे कान ही बंद कर लिए।

कल सवेरे माही ने चाय-पानी रख दिया था, तिलक ने वक़्त पर उठा लिया। पर रोटी सब्जी उठाते हुए तिलक बोला- "बस एक ही चपाती रख जा। जी अच्छा नहीं।" आज क्या हो गया। ध्यान रख अपना। आज रात खिचड़ी पका दूँगी। और दोपहर बाद ही चैताली आ गई थी तो माही ने झट से भगवान् कृष्ण का कैलेंडर उन उखड़ी ईंटों के आगे लटका दिया। इस वक्त जैसे, यह नया दरवाज़ा बंद कर दिया गया हो।

चैताली के कल यहाँ से सुबह चले जाने के आदेश पर माही पूरी तरह से विचलित हो गई। रात तिलक को खिचड़ी तो क्या देनी, उसका हाल तक न पूछ पाई। अब कौन देखेगा उसे? कैसे बताए उसे कि वह कल जा रही है। रात भर पूरी कोशिश के बावजूद तिलक दीवर के पास नहीं आया।

चलने से पहले माही ने एक बार फिर चैताली ने दोहराया- "तू मुझे यहाँ से ले जाने पर क्यों तुली है?"

-अब सारी उम्र क्या तेरे को ही देखती रहूँ! मुझे अपने बच्चों का भी तो सोचना है। मेरे बेटे ने यहाँ कॉलेज में दाखिला लिया है। वह यहाँ रहकर पढ़ाई करेगा।

-तो क्या मैं साथ नहीं रह सकती?

-तू साथ रही तो हो गई पढ़ाई उसकी। फिर तो तेरे पढ़ाए पाठ ही पढ़ेगा वह।

माही के भीतर जैसे कुछ धसक कर रह गया। इंसान इस औकात पर भी आ सकता है। और वह भी अपनी कोख से जनी बेटी। सवाल तो बहुत उठे माही के भीतर। पर जिह्वा तालु से चिपक कर रह गई। आँखों की नमी को तो न छिपा पाई। चैताली और भड़क उठी- "मुझे अपने बेटे का भविष्य देखना है। तुझे तो वक़्त काटना है न, यहाँ काट ले चाहे वहाँ।" चैताली पाँव पटकती बाहर को निकल आई।

चैताली ने रिक्शा पहले से बुला लिया था। माही का बैग और दोनों गठरियाँ रिक्शा पर रखवा ली गईं। पहले माही का हाथ पकड़ उसे रिक्शा पर चढ़ाया और फिर चैताली ख़ुद चढ़ती बोली- "यह एक गठरी मेरी गोद में दे दे। पीछे से गिर जाएगी।"

रिक्शा दो क़दम आगे बढ़ा तो गली में खेल रहे बच्चों का गेंद माही की गोद में आन पड़ा। सामने उसके जैसे चंदन आन खड़ा हुआ- तुम भी नानी गेंद की तरह कभी ऊपर कभी नीचे, कभी इधर कभी उधर---।

-अरे रिक्शावाले, ज़रा रुक तो! माही ने अपनी काँपती आवाज़ से रिक्शा रुकवा ली।

-अब क्या हो गया? चैताली चिल्ला सी पड़ी- "गेंद है न। डर क्यों गई। फेंक दे इसे।" चैताली ने बाएँ हाथ से गेंद उठा एक और फेंक दी।

-अरे नहीं! मैं अपना पैसों वाला रुमाल तो रसोई में ही छोड़ आई।

-तू भी न अम्मा--अब जल्दी जा, उठा कर ला। मैं यहीं बैठी हूँ। चैताली के घुटने पर हाथ रखती माही रिक्शा से नीचे उतरी। माही ने दरवाज़े का ताला खोला। चैताली दूर से देख रही थी।

दो मिनट, चार मिनट, छह मिनट--चैताली नहीं रोक पाई ख़ुद को। गठरी एक ओर पटक रिक्शा से नीचे उतरी। पाँव पटकती वह दरवाज़े तक पहुँची तो बाहर से ही चिल्ला पड़ी- "कहाँ मर गई अम्मा! अब गाड़ी निकाल कर रहेगी क्या?"

चैताली ने भीतर कदम रखा, फिर चिल्लाई- "कहाँ हो अम्मा!"

न रसोई में, न ऊपर छत पर, न पिछले बरामदे में। चिल्लाती हुई चैताली पीछे वाले कमरे में घुसी तो अवाक्!

सामने दीवार का एक बड़ा हिस्सा ग़ायब। ढेर ईंटें नीचे फर्श पर बिखरी पड़ी थीं। भगवान् कृष्ण का कैलेंडर ज़मीन पर पड़ा उधर से आ रही हवा से फड़फड़ा रहा था।

000

ज़रा सा...डांस

टीना रावल

टीना रावल
ए-129 महेश नगर, जयपुर -302015
मोबाइल- 8949213108
ईमेल-teenarawal1979@gmail.com

वाह ! क्या नृत्य है इस कलाकार का। इतनी सधी हुई भाव भंगिमाएँ, सधे कंधे और सिर। भावयुक्त लय-ताल का योग। आँखें तो मुद्रा के साथ स्वयं भी मुद्रा का निर्वाह कर रही हैं। क्या गज़ब की थिरकन है पंजों की, एक भंगिमा देखकर समझें, उससे पहले दूसरी भंगिमा... फिर तीसरी... फिर चौथी, बिजली सी कूदती-फाँदती। क्या सज धज है! तिक धा तकी त धा... की ताल पर, अनंत भंगिमाएँ, हर बार एक नई भंगिमा। क्या सुंदरता है वस्त्रों की ! स्वयं देवी ही लगती है यह कलाकार। मैं ही मंत्रमुग्ध-सी देख रही हूँ या कोई और भी देखता होगा ऐसे... मेरा रोम-रोम रोमांच से खड़ा हो रहा है। एक अलग-सा अजीब-सा रोमांच भर गया मन और शरीर में। मेरे अंदर भी नृत्य की सुप्त... अनंत इच्छाएँ जाग रही हैं... वे कब मेरी आँखों से बहकर मेरे मुस्कराते चेहरे को पार कर मेरे सीने पर जा लुढ़कती हैं, पता नहीं चला। चार से पाँच मिनट के लिए पूरा ऑडिटोरियम मंत्रमुग्ध का लड़की का नृत्य देख रहा है...या किसी और लोक में पहुँच गया है, कम से कम मैं तो यहाँ नहीं हूँ।

कार्यक्रम समाप्त हुआ तो निकिता ने हिलाया 'मेधा कितना डूब गई है तू... चल अब और बोर नहीं होना।' यह कहकर वह मुझे बाहर ले आई। कैफ़े में कॉफ़ी ऑर्डर कर हम बैठ गए। मैं अभी भी बहुत भारीपन महसूस कर रही हूँ, उसी माहौल में हूँ। मैं उससे कहती हूँ

'क्या नृत्य करती है यह क्लासिकल डांसर, मैं तो साँस रोक कर देख रही थी। कितनी साधना करते हैं... कितनी प्रैक्टिस, तब कहीं जाकर इतना सुंदर नाच पाते हैं। एक ताल भी मिस नहीं करते। मेरे लिए तो घोर आश्चर्य है यह... मुझे तो देखने में बहुत इंटरेस्ट है, तू पता नहीं कैसी बोर हो गई ?'

'मुझे भी पसंद है पर कंटेंप्ररी या फ़िल्मी और मैं मौका भी नहीं छोड़ती डांस मस्ती का।' निकी ने जवाब दिया।

'ओह ! हाँ ऐसा ही है...मैं भी बचपन से ही ऐसा सुंदर डांस करना चाहती थी पर कभी ऐसा मौक़ा ही नहीं मिला कि तरीक़े से सीखना शुरू करती। घर में कड़ा अनुशासन था और हज़ार पाबंदी। मैं बहुत शर्मीली संकोची थी। जब मेरी कज़िन्स शादी या फंक्शन्स में नाचतीं... मुझसे कहती भी... लेकिन मैं शर्म कर पीछे हट जाती। नवरात्र में अपने साथ के लोगों को डांडिया करते देखती तो मेरा भी मन होता, पर मेरे पैर ही उठकर मंडप तक नहीं जाते। 'मुझे नहीं आता' या 'मैंने कभी नहीं किया' यह कहते-कहते समय निकल गया। लेकिन मैं आज भी ख़ुद को अपने सपनों में नाचता देखती हूँ। शादी से पहले जब पार्टी में दोस्त और कलिग्ज़ ऑफर करते थे तो मैं झेंपकर मना ही करती थी।' मैंने आज उदास होकर अपने दिल की बात अपनी सबसे प्यारी और इकलौती सहेली निकी से कह ही दी। हम दोनों एक ही कंपनी में काम करते हैं और कंपनी टाउनशिप में पास ही रहते हैं।

'ओह! माय गॉड...तू इतना टची हो रही है, इतनी सी बात पर। अब सीख ले, आजकल तो इतने डांस स्कूल हैं, हर तरह के, इंटरनेट पर इतने ऑनलाइन क्लासेज़ वीडियोज़ सब कुछ है।'

'निकी मुझे लगता है मेरी सीखने की उमर निकल गई है... फिर घर ऑफ़िस का काम, टाइम और एनर्जी ही नहीं बचती।'

'सीखने की कोई उम्र नहीं होती मेधा। शिद्दत होनी चाहिए। और वैसे मैं अभी केवल थर्टी सिक्स की हूँ और हम क्लासमेट्स रहे हैं। मैं पूरी तरह यंग हूँ। तू अपनी जान, बौड़म कहीं की।'

'तू कह तो ठीक रही है, बस झिझक होती है... कोई क्या कहेगा।'

'ओफ्फो ! अब यह भी नहीं...वह भी नहीं...डांस करने की इच्छा है... सीखना भी नहीं है। देख तुझे कौन सा स्टेज परफॉर्मेंस देना है या कंपीटिशन जीतना है। मन की मौज ही तो पूरी करनी है। अपने सपनों को ऐसे मारा नहीं करते। जो पूरे हो सकते हैं, उन्हें पूरा करने से मत डरो, ज़िंदगी खुलकर जियो मेरी जान।'

'तेरी बात और है निकी, तू सिंगल है मैं छह साल के बच्चे की माँ, वह भी अकेली हूँ।'

'तो आज के ज़माने के हिसाब से स्मार्ट माँ बन। अपने बच्चे के साथ डांस स्कूल ज्वाइन

कर... बचपन से ही शुरू कर। अब अपने अकेलेपन को अपनी ताक़त बना... कमज़ोरी नहीं।' निकिता ने मेरे हाथ पर अपना हाथ रखकर भरोसा दिया।

आज घर लौटी तो रात भर नींद में भी वही संगीत वही नृत्य घूमता रहा। बड़ा सम्मोहन है संगीत में... नृत्य में। मैं तो वैसे भी जब गाने सुनती हूँ तो उसमें डूब जाती हूँ। और ज़्यादा छूने वाला गीत संगीत सुनती हूँ तो आँखें भीग जाती हैं। कभी तो संगीत ग़ुबार बनकर फट पड़ता है...बहा देता है...फिर ख़ाली हो जाती हूँ... हल्की हो जाती हूँ। ऐसा नहीं कि ख़ुश नहीं होती... कभी-कभी तो गीत बजता रहता है और नायक-नायिका के साथ मेरा मन भी नाचने लगता है। लगता है मैं ख़ुद नाच रही हूँ। उस वक़्त लगता है कि मैंने क्यों इतनी देर की, बचपन से क़दमताल करती तो शायद आज ख़ुद से इतनी शिकायत न होती। छोटी सी बात को मृगमरीचिका बना रखा है मैंने... यहाँ-वहाँ मारी-मारी ढूँढ़ती फिर रही हूँ जिसे पाने के लिए वह तो मुझमें ही है। यह मृगमरीचिका शायद प्रियांश को मना करने के बाद और ज़्यादा बढ़ गई है। मेरे ऑफ़िस में एक साल पहले ही आया है। मेरी ओर एट्रैक्ट है, बहुत हेंडसम है और अकेला ही है। एक ऑफ़िस टूर हमने साथ किया था, तब एक-दूसरे को जाना। वह भी बहुत सीधा-सादा और डाउन टू अर्थ है। एक बार स्टाफ के यहाँ पार्टी में उसने डांस के लिए हाथ बढ़ाया तो मुझे मना करना ही पड़ा। तब पास बैठी कलीग ने बताया कि यह बेड पार्टी मैनर्स है। मैं जानती थी लेकिन डांस.... कैसे करती ? ख़ैर बात आई गई हो गई।

टाइम मिलते ही एक हॉबी क्लास का नंबर निकाला घर के पास ही था, कॉल किया बात बन गई। सिखाने वाली लेडी मेरी हम उम्र थी, उसने पूछा 'कौन सा डांस सीखना है?'

'जो मैं कर सकूँ...मतलब डीसेंट लगे... आसान हो... बस सीखना चाहती हूँ।' मैं अटकते हुए बोली।

शायद मुझे नहीं पता था कि मैं क्या सीख सकती हूँ। उसने सबसे पहले पैर उठाने और चलाने से शुरू किया। शायद फॉक डांस से शुरू किया हमने। यह भी आसान न था... उसका पैर उसकी कमर लचक की साथ उठते और मेरे बेतुके से... झिझक से। अच्छी बात थी कि मैं अकेले थी वहाँ... वरना यह भी नहीं कर पाती। दो दिन में पैर चलने लगे तो उसने हाथ का तालमेल सिखाया। शुरू में मुझसे यह भी नहीं हो पा रहा था। हाथ मेरे सलीक़े से नज़ाकत से चले तो पैर और कमर बैठ गए। उस डांस टीचर ने बहुत विश्वास दिलाया, बक अप किया। मैं अपनी तरफ से कोशिश कर रही थी। बीच-बीच में गिव-अप करने का ख़्याल आता और आख़िर आठ दिन बाद मैंने हार मान ली। क्लास जाना छोड़ दिया।

अगली शाम मैं किचन में थी और निकी का आना हुआ। जैसे ही उसे पता चला तो बिफर पड़ी 'यार तूने फिर पटरी छोड़ दी, तेरी प्रॉब्लम क्या है ?'

'सुन निकी ! ग़ुस्सा मत हो, मैंने कोशिश तो की न... मेरे पैरों में चाल में वह लचक और ग्रेस नहीं था जो उस ट्यूटर के डांस में था। मुझे शर्म आने लगी थी, एक वीक में भी मेरी बस हाथ की उँगुलियाँ काम कर रही थी... मैं नहीं।' मैंने धीमी आवाज़ में ख़ुद से शिकायत सी की और रोना सा चेहरा बना दिया। इससे निकिता थोड़ी नरम पड़ी लेकिन सिर पीटकर बोली 'सुन मेरी जान ! उस ट्यूटर को नाचते सालों हो गए हैं और तुझे... एक वीक... समझी अब... थोड़ा वक़्त लगेगा और मेहनत भी "प्रैक्टिस मेक्सअ में परफेक्ट"। तू कैसी दिखती है ध्यान मत दे। नाचने के लिए बेवक़ूफ़ भी दिखना पड़ता है। डांस अंदर की मस्ती है, अभिव्यक्ति है। अपना मूड जैसा रखोगी वैसा ही एक्सप्रेशन बाहर आएगा। इसलिए सोचो मत... बस करो।' वह चाय का कप हाथ में लेकर मुझे समझा रही थी।

शादियों में नहीं देखा लोग कैसे पागलों की तरह...बंदरों की तरह सड़क पर नाचते हैं...वे एंजॉय करते हैं... कोई नृत्य विशारद थोड़ी ही होते हैं। हम जैसे ही लोग है वे भी। यह झिझक का खोल उतार फेंक और नाच मेरे साथ।'

अचानक उसने गाना लगा दिया और मेरे बेटे अथर्व को पास में लेकर हाथ पकड़कर नाचने लगी। पहले 'काला कव्वा काट खाएगा...' फिर 'काळियो कूद पढ़ियो मैळा में...'। कितनी अलमस्त है निकी, कोई इफ-बट नहीं लाइफ में... जो अच्छा लगा कर लिया... जो सही लगा बोल दिया। ऐसा होना भी चाहिए लेकिन सब की लाइफ अलग-अलग है। असल में सब एक-दूसरे से अलग हैं। इसलिए उनकी दुनिया भी अलग है और समझ भी। कह तो सही रही है निकी, फिर से कोशिश करती हूँ।

अगले ही दिन यूट्यूब से देखकर सीखना शुरू किया। यह भी आसान न था। उसमें जो लेफ्ट था... वह मेरा राइट था। अगर देखूँ तो कॉपी जैसी करूँ... कॉपी करूँ तो वह क्या करते हैं नहीं देख पाऊँगी। देखने-समझने के बाद करूँ तो भूल जाती हूँ कि करना क्या है ? कैसे पैर उठेगा कैसे हाथ ? और इनके चेहरे के एक्सप्रेशन तो देखो कितने मनमोहक हैं। और एक मेरा चेहरा... हैरान-परेशान।

इनके लिए कितना आसान है, मेरे लिए टेड़ी खीर। तीन-चार दिन मशक़्क़त की, जब किचन में काम कर रही होती हूँ तो भी कत्थक और भरतनाट्यम् के वीडियो चल रहे हैं। लेकिन ख़ुद करने का टाइम नहीं मिल रहा। बेटा भी हैरान मम्मा को क्या हो गया है?

'ऐसे देखने से तो आएगा नहीं।' अचानक पीछे से निकी की आवाज़ आई।

'लेकिन मोटिवेशन तो मिलता ही है।' मैंने अपना बचाव किया। लेकिन सच तो यही था कि देखने से तो आएगा नहीं।

'मोटिवेशन नहीं प्रेजेंटेशन चाहिए, तू कब समझेगी पागल।' निकी का वही नौटंकी अंदाज़।

'मैंने कुछ तो सीखा है निकी'

'बता क्या सीखा है ?'

'यह देख एक हाथ ऐसे तेरे कंधे पर नज़ाकत से और दूसरा तेरी हथेली में ऐसे, फिर तेरी नज़र से नज़र मिला कर, पहले ऐसे लेफ्ट मूव करना है फिर राइट, वन... टू... थ्री... फोर, अगेन वन... टू... थ्री... फोर। फिर तू मेरी उँगुली ऐसे ऊपर अपने हाथ से पकड़ कर मुझे घुमा देना, मेरा दूसरा हाथ अपनी पीठ पर सलीक़े से मुड़ जाता है। बॉडी

पॉश्चर सधा हुआ है। वन... टू... थ्री... फोर...' और मैं निक्की के चारों ओर बिल्कुल स्टाइल से घूम गई।

'वाह मेरी जान कमाल कर दिया एक बार और चल लगा, म्यूज़िक पर।'

आज मैंने निकी के साथ म्यूज़िक पर डांस किया। मुझमें सुधार हुआ था। निकी का वही हुड़दंग लेकिन इस बार उसने अथर्व के साथ मुझे भी नहीं छोड़ा, जम कर मस्ती की। फिर जब थक गई तो 'चल अब कुछ खिला और चाय पिला। तू सुधर रही है तेरा कुछ करना पड़ेगा।'

'क्या करना पड़ेगा ? मैं जैसी हूँ ठीक हूँ, वैसे भी मैं धीरे-धीरे समझ रही हूँ कि नाच होने को तो शरीर की भाषा लैंग्वेज ऑफ बॉडी है लेकिन असल में संगीत वॉइस ऑफ सोल है। इसलिए इनके कांबिनेशन से ही बात बनती है। तुझे पता है हमारे कल्चर में भी तो बहुत पहले से ही लोग अपने जीवन की संघर्ष भरी दिनचर्या के बाद रात में गाते, बजाते और नाचते थे। इससे उनका सारा स्ट्रेस ख़त्म हो जाता था। यह तो थेरेपी है। यही तो फॉक म्यूजिक और फॉक डांस है जो प्योर है। आजकल डॉक्टर भी तो कहते हैं स्ट्रेस कम करो म्यूज़िक सुनो।' मैंने चाय नाश्ता बनाते हुए निकी से बात की।

'अपना ज्ञान अपने पास रख।' उसने हाथ जोड़े और बोली 'आजकल लोग रात को डिस्को जाते हैं, चल आज डिस्को चलते हैं बड़ा मज़ा आएगा।'

'पागल हो गई है क्या ? मैं और डिस्को ?' मैंने चौंकते हुए कहा।

'फिर अथर्व को छोड़कर मैं कहीं नहीं जाती।'

'मेरी मम्मी हैं न, अथर्व दो-तीन घंटे उनके साथ रह लेगा। वह ख़ुश रहता है उनके साथ। अरे वहाँ किसी को किसी की परवाह नहीं होती, सब झूमते नाचते हैं। जैसा भी हो ख़ूब मज़ा आता है। उस पर अगर थोड़ी सी बियर या...।'

'चुप कर निकी, घर में ऐसी बातें नहीं अथर्व है यहाँ।'

'हाँ बौड़म देवी... कुछ तो करना पड़ेगा, तू अपनी प्रैक्टिस जारी रख, मैं सब समझ रही हूँ। वह बुदबुदाते हुए नाश्ता करने लगी।

'पता नहीं तू क्या समझ रही है ? या तो तू पागल है या मैं।'

अब रोज़ शाम को मैं और बेटा म्यूज़िक लगाकर डांस मस्ती करते हैं। इससे वाक़ई मुझ में बहुत कॉन्फिडेंस आया और ग्रेस भी। लाइफ तो अपने ढर्रे पर चल ही रही थी।

'पार्टी पार्टी पार्टी' कोई एक वीक बाद ही एक शाम निकी हंगामा करती आ धमकी।

'कैसी पार्टी...?'

'मेरी बर्थडे पार्टी है। तू तो मेरा बर्थडे हमेशा ही भूल जाती है।' उसने शिकायत की।

'नहीं... याद है, परसों है।'

'हाँ तो बढ़िया सा पार्टी गाउन ख़रीदते हम दोनों के लिए आज, चल अभी... इस बार बहुत स्पेशल है मेरी बर्थडे पार्टी।'

'वह तो हमेशा ही होती है, पार्टी कहाँ है इस बार ?'

'और कहाँ... हमारी कंपनी टाउनशिप के बैंक्विट हॉल में।'

'अब देर मत कर... बस चल।' हम दोनों ने अच्छा सा पार्टी वियर लिया तो बेटा भी पीछे नहीं रहा।

मैं पार्टी के लिए रेडी होकर टाइम से पहुँच गई पर एक अनजाना-सा खटका तो था ही मन में। वही...सब डांस करेंगे और मैं नहीं, नहीं। कभी-कभी तो ख़्याल आता है, जाना ही छोड़ दूँ ऐसी जगहों पर, जहाँ लोग डांस करते हैं।

खैर पार्टी शुरू हुई और डांस भी। बच्चे अलग डिस्को थेक पर मस्ती कर रहे थे निकी और सारे दोस्त एक तरफ। कुछ देर बाद निकी मेरे पास आई, ख़ुद भी कोल्ड ड्रिंक लिया और मुझे भी दिया। वह बस बातें किए जा रही थी कभी मुझसे कभी किसी और से। न जाने क्या सोचते हुए मैंने एक कोल्ड्रिंक ख़त्म किया फिर उससे दूसरा लिया। थोड़ा-सा पिया होगा कि निक्की ने मुझे रोक दिया और मेरा हाथ पकड़कर झूमते हुए नाचने लगी, मैं भी कुछ डांस का सुरूर महसूस कर रही थी। उसके साथ धीरे-धीरे झूमने लगी। ऐसा लगा भी कि उसने मुझे उलझा रखा है, कहीं मैं डांस फ्लोर न छोड़ दूँ।

'तूने क्या पिलाया है निकी, थोड़ा अजीब सा असर है।' मैंने पूछा। लेकिन म्यूज़िक के शोर में पता नहीं उसने क्या सुना और क्या कहा।

'कुछ नहीं मेरी जान, भूल जा सब कुछ और नाच।' उसने प्यार से कहा। मुझे भी आज अजीब-सा सुरूर सवार था, मैं भी लोगों की तरह मुस्कराकर उनके साथ डांस फ्लोर पर थी। हल्की-हल्की रोशनी थी, अच्छा लग रहा था। तभी निकी ने मेरा हाथ पकड़ा फिर उसके हाथ में मुझे कुछ बदलाव महसूस हुआ। लेकिन मेरी आँखें कुछ भारी हो रही थी, कुछ देख पा रही थी कुछ नहीं। अब मैं उसका हाथ पकड़ कर डांस कर रही थी। जब रोशनी बढ़ी और मैंने ध्यान से देखा... यह तो प्रियांश है, ओह !... वह मुस्कराया, मैं भी। मैं प्रियांश के साथ हूँ। मैंने उसके साथ कुछ हिचक से ही लेकिन ठीक-ठाक डांस किया। उसने भी बहुत ग्रेस से मुझे सपोर्ट किया।

'तो तूने मेरे सॉफ्टड्रिंक में कुछ हार्ड मिलाया था ?' मैंने पार्टी के बाद उसे पूछा।

'हाँ... मिलाया था वरना तेरे पैर उठकर डांस फ्लोर तक नहीं जाते।' उसने कहा। प्रियांश मुस्करा दिया।

'अब जब तुम डांस कर सकती हो तो कभी मुझे मना मत करना, हाँ...लेकिन किसी और को हाँ भी मत करना।' प्रियांश ने भी निकी के सुर में सुर मिलाया।

प्रियांश ने अथर्व और मुझे वॉक करते हुए बिल्डिंग तक छोड़ा। अगली पार्टी में डांस का प्रॉमिस लिया और गुड नाइट किया।

आज सारी रात मेरी आँखों से नींद ग़ायब थी। बस दिख रहा था तो पार्टी का एक-एक पल और महसूस हो रहा था तो नृत्य। मुझ में बस नृत्य... थोड़ा-सा ही सही, अब मुझ में भी था...नृत्य। ऐसा लगा जैसे कोई नई शुरुआत करने का टाइम आ गया है। रास्ते में प्रियांश ने कहा था कि अथर्व को पापा की और तुम्हें एक डांस पार्टनर की ज़रूरत है, और मैं इस रोल के लिए तैयार हूँ... तुम्हारे जवाब का इंतज़ार रहेगा। अब शायद मैं भी तैयार हूँ... साथ ही, ज़रा से डांस के लिए भी।

000

लम्हों के साए

अरुणा सब्बरवाल

स्कूलों में गर्मियों की छुट्टियाँ आरम्भ हो चुकी थीं। अचानक रुचि और छोटी बहन शिखा ने बच्चों के साथ एक सप्ताह के लिए अपनी माँ के घर जाने का प्रोग्राम बनाया, हालाँकि बच्चों के साथ कहीं भी जाना आसान थोड़े ही है, बच्चों के कपड़े, उनके वीडियो गेम, आई पैड, फिर रास्ते भर के लिये उनके लिए खाने का सामान, उनकी किताबें वग़ैरह-वग़ैरह, खिलौनों का बॉक्स तो माँ के घर से ले ही गए थे, वीडियो गेम्ज़ के आगे खिलौनों का क्या काम, फिर अपना सामान भी तो होगा। ख़ैर वह माँ को चकित करना चाहती थी। सारा सामान कार में रख चल पड़ी। दो घंटे की ड्राइव के बाद घर पहुँच कर जैसे ही रुचि ने घंटी बजाई, माँ को कुछ समय लगा दरवाज़ा खोलने में, माँ को देखते ही रुचि हैरान रह गई, माँ का हाल बेहाल था, बाल बिखरे पड़े थे, शायद उसने कपड़े भी नहीं बदले थे। एक अजीब सा सन्नाटा था घर में, आवाज़ रहित, चारों ओर सामान बिखरा पड़ा था। माँ की दशा से ऐसा लग रहा था मानों अभी-अभी सो कर उठी हो। शाम के चार बज चुके थे। उसे लगा घर की दीवारें भी उसे घूर-घूर कर पूछ रही हैं कहाँ हो तुम सब? माँ की हालत देखी है क्या ? अब पूछे तो कैसे पूछे तीन दशक अकेली रहने के बाद इतनी स्वाभिमानी हो गई है कि ज़रा सी भी दख़ल अंदाज़ी उसे बिलकुल गवारा नहीं। डरते -डरते रुचि ने पूछ ही लिया...माँ "तबीयत तो ठीक है?"।

"हाँ, हाँ, मुझे क्या हुआ है, क्यूँ पूछ रही है? थोड़ा व्यस्त थी।" माँ के चेहरे पर उदासी और स्वर में शुष्कता साफ झलक रही थी। बहुत कोशिश के बाद भी उनके बुझे हुए चेहरे पर ख़ुशी नहीं आई। मन ही मन में रुचि सोचने लगी, लगता है, घर की हालत देख कर तो व्यस्तता दिखाई नहीं देती। लगता है आज फिर माँ को उथल-पुथल करने का दौरा पड़ा हो, न जाने क्या चलता रहता है माँ के दिमाग़ में। पिछले कुछ महीनों से यही सिलसिला चल रहा है। पूछने पर पत्थर की भाँति जड़ बुत-सी बन जाती है। हम तीनों बहन-भाइयों के लिए माँ एक पहेली सी बन कर रह गई है। पापा तो तीस वर्ष पहले ही चले गए थे। माँ ने हम तीनों को बड़ी मेहनत से पाला है। भाई पर अमेरिका का भूत सवार था। वह तो विवाह होते ही भाभी के संग अमेरिका में सेटल हो गया है। देश के साथ शायद उन्होंने परिवार को भी छोड़ दिया है। सबने माँ से भाई को रोकने के लिए कहा कि एक ही बेटा है मत जाने दो उसे अपनी आँखों से दूर। किंतु माँ दलीलें देती रही कि अगर उसे रोक लिया तो वह उसे उम्र भर यही कहेगा 'माँ तुम बहुत स्वार्थी थीं'। कभी माफ़ नहीं करेगा। छोटी बहन शिखा जो दस पंद्रह मील की दूरी पर रहती है, पर है तीखे मिज़ाज की, पर उसको ध्यान सबका रहता है। छोटी शिखा बच्चों और नौकरी में व्यस्त होते हुए भी सप्ताह में एक बार, समय निकाल कर माँ को देखने आ ही जाती है। वह माँ से दो घंटे की ड्राइव पर ही रहती है। स्कूल की छुट्टियों में दोनों बहनें इकट्ठी हो जाती हैं। बचपन से ही दोनों बहनों की एक दूसरी में जान बसी है, यहाँ तक कि जब शिखा छोटी थी, अगर उसे कोई चॉकलेट देता तो वह सँभाल कर रखती कि जब तक दीदी स्कूल से नहीं आ जाती, फिर दीदी के साथ बाँट कर खाती थी। भाई शुरू से ही अपने आप को बड़ा स्मार्ट समझता था। अमेरिका में बसने के कारण भाई के लिए तो किसी बड़े त्योहार या जन्मदिवस पर पहुँचना भी कठिन था।

रुचि ने कार से सामान निकाल कर अपने कमरे में रख दिया। शिखा ने उसका कमरा ठीक किया था। घंटे बाद शिखा भी आ गई। चाय पी कर, दोनों बहनें माँ को यह कह कर कि हम अभी आए, आप बच्चों का ध्यान रखना, और हाँ तैयार रहना रात का खाना बाहर ही खाएँगे और ख़ुद राशन तथा बच्चों के खाने -पीने का सामान लेने चली गईं।

"शिखा पता नहीं आजकल माँ इतनी बुझी-बुझी मायूस सी क्यूँ रहती है, ऐसी तो वह कभी नहीं थीं?"

"कुछ सप्ताह से देख रही हूँ कि माँ को सफ़ाई का दौरा-सा पड़ता है, फिर न आव देखती है न ताव, पीछे पड़ जाती हैं, हर अलमारी को खँगालने। शायद सफ़ाई का भूत सवार हो जाता है। आप सुनोगे तो यक़ीन नहीं होगा पिछले महीने की बात है, मैं शॉपिंग को जा रही थी, सोचा माँ को भी साथ ले जाऊँगी, और मिल भी लूँगी उस दिन जो हुआ मैंने कभी सोचा भी नहीं था, दरवाज़े

अरुणा सब्बरवाल
2, रशेट्टिंग्स वेस्टफील्ड पार्क
हैच एन्ड पिन्नर लन्दन
फ़ोन-07557944220
ईमेल-Sab_arun@hotmail.co.uk

की घंटी बजाती रही, कोई उत्तर नहीं, हार कर अपनी चाबी से दरवाज़ा खोला। माँ का कहीं नामो-निशान न था। कार बाहर खड़ी थी। मैंने सब कमरे देखे, गार्डन में देखा, पड़ोसियों से पूछा, फ़ोन किया तो फ़ोन भी नहीं उठा रही थीं। साँझ होने के साथ-साथ मेरी चिंता भी बढ़ने लगीं। मस्तिष्क को शांत करने के लिए मैं खाना बनाने लग गई। अचानक कुछ खड़का-सा हुआ। मैं डर के मारे गायत्री जाप करने लगी, कुछ देर बाद फिर खटका हुआ तो एहसास हुआ आवाज़ गैराज से आ रही थी, देखा तो माँ सीढ़ी पर चढ़ी कुछ ढूँढ़ रही थी। गैराज के शैल्फ़ों का सारा सामान ज़मीन पर था। मुझे देखते ही बोली "बेटा तुम कब आई हो ?"

"बहुत देर हो गई है, आप इतनी देर से गैराज में क्या कर रही हो ?"

वह भावशून्य गूँगी सी खड़ी रही, अपनी उदासी छुपाने का प्रयास करने लगी। मैंने फिर पूछा तो "कुछ नहीं...कुछ नहीं...सफ़ाई..." माँ ने सकपकाते हुए कहा।

"आपकी गैराज की सफ़ाई कौन देखने आ रहा है भला, फ़िज़ूल में अपनी एनर्जी बर्बाद करती हो।"

माँ कुछ झेंप सी गईं, मैं माँ को अंदर तो ले आई किंतु उनका ध्यान गैराज में ही था। मेरे आने से माँ का मिशन अधूरा रह गया था।

"शिखा चलो अब घर चल कर बात करते है। सबको भूख लगी होगी। आज फ़्राइडे है फ़िश एंड चिप्स खाते हैं अंग्रेज़ों की तरह, अक्सर अंग्रेज़ फ़्राइडे को फ़िश एंड चिप्स ही खाते हैं।"

रात भर सभी चैन से सोए क्योंकि स्कूल बंद थे, ऊपर से थकावट। सुबह के सूरज ने खिड़कियों से झाँकते-झाँकते सभी को जगा डाला। वैसे लंदन में सूरज देवता के दर्शन बड़ी मुश्किल से होते हैं, अगर होते भी हैं तो धूप तपिश रहित। सभी ने मिल कर फ़ैसला किया कि आज धूप का आनंद लेंगे। बड़े बच्चे की बार्बीक्यू की फ़रमाइश थी और छोटे की पूल की। नाश्ते के पश्चात्, रुचि ने बार्बीक्यू की ज़िम्मेदारी ली और शिखा ने शैड में से कुर्सियाँ गार्डन में सेट करने की, और बच्चों ने पूल भरने की। दोनों बहनें शाम के बार्बीक्यू के लिये सामान लेने चली गईं। हल्के -फुल्के लंच के बाद बार्बीक्यू की तैयरियाँ आरंभ हो गईं। पड़ोसियों को भी निमंत्रण दे दिया था। जैसे ही शिखा गार्डन के शैड की ओर बढ़ी और चिल्लाई "दीदी दीदी बाहर आओ।"

"क्यूँ क्या हुआ?" देखते ही दोनों हक्का-बक्का रह गईं, शैड का सारा सामान ऊपर-नीचे था और कुछ अंदर, कुछ बाहर बिखरा पड़ा था। शैड में तो हमेशा ताला लगा रहता है, उसने सोचा शायद चोरी हो गई है। माँ शर्मिंदगी से ऊपर अपने कमरे में दुबक गईं। दोनों ने चोरी का स्वाँग ही रचा, मानों कुछ हुआ ही नहीं, किंतु उनकी चिंता बढ़ती जा रही थी। चिंता का विषय था भी।

दोनों बहनें समझ गईं थीं कि माँ के दिमाग़ में कुछ रहस्यमयी घूम रहा है, जो वह बताना नहीं चाहती थी। सफ़ाई तो केवल बहाना मात्र है। तभी तो दरवाज़ा खोलने में इतनी देर लगी थी। बड़ी मुश्किल से सामान को ठिकाने लगाया, माँ को कुछ कहे बिना दोनों लगी रहीं। वह बच्चों के सामने कोई दृश्य खड़ा नहीं करना चाहती थीं। न ही माँ की निजी भावनाओं में अनाधिकार प्रवेश करना चाहती थीं, चिंतित ज़रूर थीं।

"देख शिखा फिर कभी ऐसा हुआ तो प्लीज़ मुझे सूचित ज़रूर करना, मिल कर कोई हल निकालेंगे। दीपक से भी बात करते हैं। अगर यही सिलसिला चलता रहा तो मनोवैज्ञानिक को दिखाना होगा।"

"दीदी मैं जब भी आती हूँ माँ घर के किसी न किसी कोने में सफ़ाई करने लगी रहती हैं। मुझे लगता है मानों कुछ ढूँढ़ रही हों पर क्या ?, उम्र के साथ याददाश्त भी तो कम हो जाती है। प्यार भी तो इतना था मम्मी -पापा में कि एक दूसरे की आँखों से ओझल नहीं होते थे। याद आया जब आप और माँ भारत गईं थीं, पापा मम्मी को हर दस मिनट के बाद आपको फ़ोन करते थे, वापस आने पर सामने वाली विक्टोरिया और एलिज़ाबेथ आंटी ने माँ से कहा था "डौल, डोनट एवर लीव हिम अलोन, वीदाउट यू, ही वाज़ फ़िश ऑउट ऑफ़ वॉटर" और आप भी तो कहती थीं की अगर मम्मी को कुछ हो जाता तो पापा तो वैसे ही मर जाते।" शिखा बोली...

"चल छोड़ गंभीरता से सोचेंगे, कोई हल तो ज़रूर होगा इसका।"

एक सप्ताह जैसे पंख लगा कर उड़ गया। रुचि के वापस जाने का समय भी आ गया। अपना सामान समेटे रुचि जाने को तैयार थी, शिखा चिल्लाई-

"रुको दीदी रुको, रोहन के खिलौनों का तो बॉक्स लेती जाओ।"

"पगली वह तो मैं कब की ले गई हूँ, रोहन अब खिलौनों से नहीं, कंप्यूटर गेम्ज़ में मस्त रहता है।"

शिखा कल जाने वाली थी, नज़दीक जो रहती थी। दूसरे दिन उसने माँ के फ़्रिज का निरीक्षण किया, राशन चेक किया। तारीख़ ख़त्म हो जाने वाली चीज़ों को फेंका, फिर अपने जाने की तैयारी करने लगी, उसने माँ को साथ ले जाने की बहुत कोशिश की, किंतु माँ नहीं मानी। वह जानती है कि माँ बहुत स्वाधीन और स्वाभिमानी है। जीवन में उन्होंने सब काम स्वयं ही किए हैं, अक्सर भूल जाती हैं कि अब वे पच्चीस की नहीं साठ से ऊपर हैं। वह अपनी चार दिवारी में ही ख़ुश रहती हैं। शिखा का हर सप्ताह चक्कर लग जाता था। फ़ोन तो वह रोज़ ही कर लेती थी।

दिन गुज़रते गए, एक दिन माँ घर से फिर नदारद, शिखा ने पूरा घर छान मारा। माँ किसी कमरे में नहीं थी। पर धीमी-धीमी आवाज़ रुक-रुक कर आ रही थी, वह समझी नहीं कि खटका कहाँ हो रहा है, जाने ही वाली थी कि उसे सेल्लर की बत्ती जली दिखाई दी, जब नीचे जा कर देखा तो माँ ठंड में कुछ ढूँढ़ने के चक्कर में थी। (लंदन के घरों के नीचे सेल्लर होते हैं, वहाँ बहुत ठंड होने के कारण अंग्रेज़ वहाँ वाइन रखते हैं, सेल्लर घर जितने ही चौड़े होते हैं) उसने रुचि को फ़ोन पर आँखों देखा हाल बताया।

"क्या तुमने पूछा माँ से, कि वह वहाँ क्यूँ गई थी, उसे क्या चाहिए था वहाँ से ?"

"पूछा क्या, कई बार पूछा, आपको तो पता है कुछ पूछने पर वह जवाब तो क्या देना जड़ सी हो जाती है। आपको याद है बचपन से

ही हमें यही नसीहत देती आ रहीं हैं "कि बेटा एक चुप सो सुख" ख़ुद भी यही करती आईं हैं। उनका यह फ़ॉर्मूला यहाँ फैल हो गया था। विरोध में मौन के हथियार का इस्तेमाल करती रही हैं, जो भयावह होता है।"

माँ को शिखा का रुचि को फ़ोन पर शिकायत करना नहीं भाया। माँ बुड़-बुड़ करती रही, "अकेले रहने वाली माएँ बोलतीं नहीं, वे तो बेबस रोती हैं।"

शिखा चुपचाप अपने घर चली गई। कई महीनों से सब कुछ सामान्य चल रहा था। अवकाश के पश्चात् माँ कई संगठनों की सदस्य बन गई थीं। जैसे पेंटिंग, संगीत और सर्जनात्मक लेखन इत्यादि। हमें तसल्ली थी कि माँ अपनी दबी हुईं इच्छाएँ पूरी कर रही हैं, जो वह सदा करना चाहती थी। उनकी पेंटिंग को देख के हम दंग रह जाते। और लेखन में तो माँ अपने भावों को शब्दों की लड़ी में ऐसे पिरो देतीं कि पढ़ने वाला दंग रह जाए। यूँ कहूँ तो पापा की मधुर स्मृतियों के साथ अब माँ अपने जीवन का आनंद भोग रही थी और अपने लिए अपनी तरह जीने का प्रयास कर रही थी।

शनिवार का दिन था, सब सामान्य चल रहा था। पतझड़ का मौसम था पतझड़ की मरियल धूप के कुछ टुकड़े पैटीयो के शीशों से भीतर झाँक रहे थे। बाहर सभी वृक्ष वस्त्रहीन खड़े शरमा रहे थे। धरती पर रंग बिरंगे पत्तों का बिछा क़ालीन पतझड़ की शोभा बढ़ा रहा था। शिखा खड़ी-खड़ी प्रकृति को निहारने लगी। दिन निखरने लगा था, पति अजय ने सुझाव दिया- "क्यूँ न आज माँ का गार्डन साफ़ करके आख़री घास को काटा जाए।"

"बहुत अच्छा विचार है" शिखा ने माँ को फ़ोन किया, कोई जवाब नहीं, वह पूरा दिन फ़ोन करती रही पर माँ ने उठाया नहीं। साँझ हो चुकी थी, उसने पड़ोसन कमलजीत को फ़ोन किया जिसके पास माँ के घर की चाबी सदा रहती है, कि उसकी माँ के घर जा के देखे कि वह ठीक तो है ? कमलजीत और बाबू उसका पति दोनों गए, सभी कमरे देखने के बाद उनकी नज़र गुसलखाने पर पड़ी, लॉफ्ट की सीढ़ी गिरी हुई मिली; शायद उसका पेच ढीला होने से गिर गई होगी। बाबू ने कुर्सी रख कर देखा माँ अँधेरे में लॉफ्ट में ठंड से सिकुडी पड़ी थी (लंदन में बर्फ़ पड़ने के कारण यहाँ छतें त्रिकोण होती हैं, छत त्रिकोण होने के कारण जो जगह ख़ाली रहती है उसे लॉफ्ट कहते हैं) बड़ी मुश्किल से सीढ़ी ठीक करके माँ को नीचे उतारा। उसी वक़्त बाबू ने जल्दी से एंबुलेंस बुलाई और माँ को सैली ओक अस्पताल ले गए। फिर शिखा को फ़ोन किया। उसने रुचि को फ़ोन किया और बोली अभी पैनिक न करो, अस्पताल जाकर आपको स्थिति बताऊँगी।

ठंड में पड़ी रहने के कारण, माँ को निमोनिया हो गया था। उस रात शिखा अस्पताल में ही बैठी रही। सुबह एकदम घबरा कर उसकी आँखें खुली तो पल भर को वह भूल गई कि वह कहाँ है! अब तक तक स्थिति कुछ सुधर चुकी थी, रुचि भी आ चुकी थी, उसने दीपक को भी बुला लिया था। माँ को दो दिन में पूरी तरह से होश आ गया था, हम तीनों को देख कर हैरान भी थी और ख़ुश भी। हमने माँ से कुछ नहीं पूछा, भीतर से हम सब जानते थे कि उनके मस्तिष्क में वही कीड़ा रेंग रहा होगा, जो राज़ वह राज़ ही रहने देना चाहती थीं। या फिर वह इतना निजी था कि वह किसी से भी साँझा नहीं करना चाहती थीं। बस यही कहा "माँ प्लीज़ जहाँ भी जाएँ अपना फ़ोन साथ रखें।"

"अब माँ का अकेले रहना ठीक नहीं, मुझे लगता है अब उनकी याद उन्हीं की तरह बूढ़ी होती जा रही थी। इसीलिए तो मैं माँ को अपने साथ अमेरिका में रखना चाहता था। उन्हें ग्रीन कार्ड भी मिल गया था, पर उनकी ज़िद थी की वह लंदन में ही रहना चाहती हैं, भारत के बाद लंदन ही उन्हें अपना घर, अपना देश लगता था।" एक दिन प्यार से मुझे बुला के बोलीं- "सुन और समझ बेटा, मैं अपने स्वार्थ के पीछे, तुम्हारी इच्छाओं का दमन नहीं करना चाहती, मेरे बच्चे मेरी चिंता न कर मैं जहाँ रहूँगी, मेरे दिल का एक टुकड़ा इस कोने में दूसरा दूसरे में, सो कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। उनके एक वाक्य ने मुझे निशब्द कर दिया। इसीलिए मैंने अधिक ज़ोर नहीं डाला।" दीपक ने सफ़ाई देते कहा "चाहती तो मैं भी थी कि माँ मेरे पास रहें, किंतु माँ अपनी ही दलीलें देती रहीं, मेरी सब सहेलियाँ यहीं हैं, मैं यहाँ के चप्पे -चप्पे से वाक़िफ़ हूँ जब चाहूँ, जहाँ चाहूँ कार उठा कर जा सकती हूँ, वैसे भी मेरे जीवन के इस मोड़ पर नए दोस्त बनाना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन है। यहाँ की हर चीज़ मुझे और मैं उसे जानती हूँ। सब सुविधाएँ चार क़दम की दूरी पर हैं, तुम्हीं बताओ, अगर तुम मेरी जगह हो तो क्या करते, यहीं मेरा जीवन हैं।" भीतर से हम सब जानते थे कि वह पापा की स्मृतियों को, उनकी कुर्सी को, उनकी सुगंध को, उनकी एक-एक याद को छोड़ना नहीं चाहती थी। अभी तक माँ ने पापा का सामान समेटा नहीं था, कहती हैं, "उनकी चीज़ें देख कर मुझे यही एहसास होता है कि वे यहीं कहीं हैं।"

"शिखा स्मृतियों से याद आया यहाँ आने से पहले एक दिन रोहन के खिलौने छाँट रही थी कि जिन खिलौनों से नहीं खेलता उन्हें चैरिटी में दे दूँ, तो उन्ही खिलौनों के बॉक्स में से यह पिटारी मिली, लगता है माँ की ही होगी।" रुचि ने कहा।

"कहीं वह यह तो नहीं....?"

"हो सकता है, चाबी के साथ ताला भी लगा है, याद से अस्पताल ले जाएँगे।" हम तो उन्हें घर लाने की तैयारियों में लगे थे, अस्पताल से फ़ोन आया कि आप यहाँ आ जाएँ। अब उन्हें आई सी यू वार्ड में ले गए हैं। हालत सुधर तो रही थी। किंतु पूरा शरीर पीपल के पते की तरह काँप रहा था। रुचि असहाय खड़ी कुछ भी न कर पा रही थी। डॉक्टर खड़े आपस में न जाने क्या फुसफुसा रहे थे। नर्स ने माँ को सुई लगाई तो माँ को नींद आनी शुरू हो गई। शिखा ने कुर्सी पास खिसका कर निश्चेष्ट पड़ी माँ के चेहरे के पास अपना हाथ रख कर उसकी शिथिल ठंडी हथेली थाम ली। वह "माँ" के अतिरिक्त कुछ न कह पाई, उसका गला रुँध गया।

माँ के डूबते प्राणों को शायद शिखा की अश्रुओं से भरी पुकार की खनक खींच लायी, उन्होंने अलसाई आँखें खोलीं शिखा को देखा फिर आँखें मूँद लीं। उनका दुःख क्या था कोई नहीं जानता था।

"माँ, अब दर्द कैसा है ?"

उत्तर में माँ की सूखे अधर काँपे, आँखों से ढलकी दो बूँदें सब कुछ कह गईं। दिन भर माँ क्रूर मृत्यु से आँख मिचौली खेलती रही, उनकी अवस्था निरंतर गिरती गई। माँ ने एक बार फिर थोड़ी सी आँखें खोल कर चारों ओर देखा, पलंग पर दोनों तरफ़ हाथ मारने लगी, उसकी आँखों में अभी भी खोज बाक़ी थी, मानों किसी चीज़ का इंतज़ार था। दीदी ने धीरे से पिटारी को पलंग पर माँ के सामने रख दिया, पिटारी को देखते ही एकदम उनकी आँखों में चमक की लहर, होठों पर मीठी सी मुस्कान और चेहरे पर रौनक़ छा गई। पहचान का सूरज बदलों को चीरता बाहर निकला। माँ ने आँखों के इशारों से उस पिटारी को खोलने को कहा।

"नहीं माँ इसे आप ही खोलेंगी" रुचि ने माँ को सहारा दे कर प्यार से बिठाया, और ख़ुद माँ के गले में बाँहें डाल कर बैठ गई।

पिटारी को हाथ में लेने से पहले ही माँ के हाथ काँपने लगे, और आँखें नम हो गईं। यादों के जुगनू चमकने लगे। काँपते हाथों से धीरे-धीरे माँ ने अपनी पिटारी को खोलना आरंभ किया, लगता था माँ का उम्र भर का अनमोल ख़ज़ाना उसमें भरा था। उसने आधी खोली, सबसे पहले उसके हाथ में पापा की काली सफ़ेद पोल्का डॉट की टाई आई जिसे काँपते होठों से चूमते बोलीं... "यह तुम्हारे पापा को मेरा पहला तोहफ़ा था। बड़े प्यार और मनुहार से इसे ख़ास-ख़ास अवसर पर ही लगाया करते थे, फिर मुझे संकेत दे दे कर दिखाते भी थे। सबसे पहले उन्होंने इसे अपनी फ़ेलोशिप में डाली थी।" बड़े प्यार से माँ ने टाई को छाती से लगाया, फिर अपने गले में डाल कर मुस्कराईं। फिर पिटारी से निकली कंघी...कंघी को छूते बोलीं...."तुम्हें पता है यह सदा उनकी जेब में रहती थी, इस में तुम्हारे पापा की डैन्ड्रफ़ लगी है। बड़े शौक़ से वह अपने बालों का स्टाइल बनाया करते थे। कभी मेरे बालों की भी शामत आ जाती थी।"

अब मिली माँ को पापा की ओमेगा घड़ी, उसे घुमा फिरा कर बड़े ग़ौर से देखते बोली, "एक दिन अचानक बोले आँखें बंद करो, मैं कहती रह गई, क्यूँ? तो उन्होंने मेरी कलाई से मेरी सस्ती सी टाईमेक्स की घड़ी उतार कर फेंकी और मेरी कलाई में ओमेगा घड़ी बाँध दी, जो अभी तक मेरे पास है। वह मेरे जीवन का पहला महँगा तोहफ़ा था"। माँ को ख़ुश देख कर हमें बहुत आनंद आ रहा था।'

"और दिखाओ क्या है ?" भाई ने कहा, पिटारे में हाथ डालते ही माँ के हाथ में एक गुलाबी लिफ़ाफ़ा था, लिफ़ाफ़े को चूमते-चूमते माँ की आँखें नम हो गईं, और गला भर आया। उसमें से एक पत्र के साथ सूखा हुआ गुलाब का फूल निकला, एक गहरी साँस लेते बोलीं- "यह तुम्हारे पापा का मुझे शादी से पहले का पहला प्रेम-पत्र था, जो पिछले चार दशक से सँभाल कर रखा है। इसकी भी एक कहानी है। जिस दिन उन्होंने यह पत्र दिया था, हमारी चोरी पकड़ी गई थी। नानी ने हमें पकड़ लिया था, सज़ा तो नहीं मिली, तुम्हारे पापा ने सारा दोष अपने सिर ले कर तुम्हारी नानी से क्षमा माँग ली थी। बड़े दु:ख की बात है कि आजकल चिट्ठियों का चलन ही समाप्त हो गया, अब देखो न चार दशक बाद भी मैं चिट्ठी का आनंद ले सकती हूँ।"

"आप ठीक कह रही हैं, और दिखाओ क्या है, वेरी इंटरेस्टिंग, अच्छा लग रहा है।"

पिटारी में अब केवल दो यादें रह गई थीं, पहली निकली एक सिंदूर की छोटी सी डिबिया, उसे खोलने की माँ की हिम्मत नहीं हुई बोली "इसे कैसे भुला सकती हूँ, इसी से तो तुम्हारे पापा के साथ मेरा संबंध जुड़ा था। अब भी मुझे याद है जब पूरी बारात के सामने उन्होंने अँगूठी से सिंदूर से मेरी माँग सजाई थी। उन्हें मेरा माँग भरना बहुत सुहाता था।"

"दूसरी याद दिखाओ" माँ ने एक आरामिस आफ़्टर शेव की ख़ाली शीशी निकाली और बोलीं- "यह था तुम्हारे पापा का ख़ास आफ़्टर शेव, जिसकी सुगंध मैं मरते दम तक नहीं भूल सकती। यह सुगंध मुझे उनके आस-पास होने का एहसास देती है। जब उदास होती हूँ इसे लगा लेती हूँ।" एक बार फिर माँ ने उसे सूँघा, आँखें बंद कीं, फिर छाती से लगा कर लम्हों के साए में खोई पापा की नज़दीकियों का आनन्द लेने लगीं।

000

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

पेंटिंग्स

जिज्ञासा सिंह

"गिरने के भी बड़े-बड़े क़िस्से हैं, कोई चल के गिरता है, कोई खड़े-खड़े गिरता है, कोई लेटे-लेटे गिर जाता है, कोई सोच से ही गिर जाता है, कोई सोचता नहीं है, इसलिए गिरता है, कितने भी बड़े ओहदे वाला गिर जाता है, बिना ओहदे का तो पहले ही गिरा हुआ माना जाता है, किसी को देखते ही गिरने वाले तो बहुत देखे हैं, जिन्होंने कुछ देखा नहीं वे भी गिर जाते हैं, कुछ देखने के लिए भी गिर जाते हैं, कुछ दिखाने के लिए गिर जाते हैं, गिरते-गिरते इतना गिर जाते हैं, कि गिरने की सुर्ख़ियाँ बन जाते हैं। मनुष्य कितनी भी श्रेष्ठता पर पहुँच जाए, वह गिरने की आदतें नहीं छोड़ पाता, फिर उसका परिणाम चाहे जो हो, ऐसी आदतें कभी-कभी मौत तक को न्योता दे देती हैं, अतिशयोक्ति का स्थान तो हर जगह बरकरार है।"

विनय बाबू को रिटायर हुए आठ बरस हो गए थे, बड़े ही उच्च पद से रिटायर हुए थे, रिटायरमेंट के समय जो पार्टी उन्होंने दी थी। उसमें हमारा जाना हुआ था, पार्टी में बहुत लोगों ने बताया कि विनय बाबू बहुत ही अच्छे पेंटर हैं, उनके पास विनय बाबू की पेंटिंग्स हैं, जो उनके घर की बैठक में शोभा पाती हैं, मैं हैरान थी कि वे एक प्रशासनिक अधिकारी के साथ-साथ बहुत अच्छे आर्टिस्ट भी हैं। पार्टी में ही मुझे ये भी पता चला कि उनकी पत्नी भी बहुत अच्छी मूर्तिकार थीं। पर अब वे इस दुनिया में नहीं थीं।

विनय बाबू हमारी पुरानी कॉलोनी के हमारे परिचित थे, पर हमारा उनके घर कम ही आना-जाना था। रिटायरमेंट के पहले हमें बाज़ार में मिल गए थे, बहुत देर तक कॉलोनी के अपने पुराने मित्रों का हाल-चाल पूछते रहे, उतनी देर में मैंने नोटिस किया कि वे पहले जैसे मस्तमौला नहीं रह गए थे। जाते-जाते उन्होंने हमें बताया कि वे रिटायर हो गए हैं, उसी उपलक्ष्य में अपने पार्क में ही एक रिटायरमेंट पार्टी रखी है, बहुत आग्रह किया था कि हम लोग उस पार्टी में ज़रूर आएँ और हम पति-पत्नी ने उनका विनम्रता से भरा आग्रह स्वीकार कर लिया था।

पार्टी में विनय बाबू की पत्नी की मूर्तियों की चर्चा ख़ूब हो रही थी, ख़ासतौर से महिलाओं को उनकी नग्न मूर्तियों में अधिक दिलचस्पी थी, कई तो यहाँ तक कहती थीं कि पहले तो वे कॉलेज में प्रोफ़ेसर थीं, रिटायरमेंट और बच्चों के बाहर सेटेल होने के बाद, पति के कहने पर ही वे इस प्रोफ़ेशन में आई थीं। दोनों का शौक़ भी काफ़ी मिलता जुलता था, पति को नग्न पेंटिंग और पत्नी को नग्न मूर्तियाँ बनाने का शौक़ था, जिसे कॉलोनी वालों ने उनके बाग़ीचे की साज-सज्जा और बैठक की दीवारों पे सजी पेंटिंग्स के रूप में साक्षात् देखा था, यह भी सुनने में आता था कि विनय बाबू एक बार देखकर ही किसी की भी हुबहू पेंटिंग बनाने में माहिर थे, उनकी आँखों में जिसकी छवि अंकित हो जाती थी, उसकी पेंटिंग वे बनाकर ही दम लेते थे।

उस दिन जब कुनिका का फ़ोन आया तो मैं उसकी सारी बातें सुनकर अवाक् रह गई थी। उसने एक झटके में बताया था कि, "विनय बाबू का मर्डर हो गया, ज़रा अपना टीवी खोलना, वही समाचार चल रहा है।"

टीवी खोलते ही जो मैंने जो दृश्य देखा उससे तो मेरे हाथ-पाँव फूल गए थे, विनय बाबू की मिट्टी में दबी लाश पुलिस उन्हीं के घर में पेड़ के नीचे की मिट्टी से निकाल रही थी, गोरे-चिट्टे, लंबे-चौड़े, विनय बाबू का ऊपर का धड़ मिट्टी में घुसा हुआ दिख रहा था, चारों तरफ़ से

जिज्ञासा सिंह
सी- 137, इन्दिरा नगर, लखनऊ
उत्तर प्रदेश- 226016
मोबाइल -94151410164
ईमेल- jigyasa411@gmail.com

पुलिस की टीम घेरे हुए थी, वहीं उसी आँगन के एक कोने में लगे अमरूद के पेड़ की जड़ में ही उगी एक मोटी डाल पर अपना पैर टिकाए खड़ी एंकर आँखों देखा हर दृश्य समझाते हुए चिल्ला रही थी-

"शहर की पॉश कॉलोनी में रहने वाले अवकाश प्राप्त अधिकारी की लाश, उन्हीं के आँगन में मिट्टी में दबी हुई पाई गई है, कहते हैं दो दिनों से अधिकारी किसी को दिखाई नहीं पड़े, कल कामवाली आकर चली गई, दूधवाले ने घंटी बजाई और दरवाज़ा नहीं खुला तो वह भी चला गया, आज जब उनका दूधवाला और कामवाली एक ही साथ गेट पर पहुँचे और कई बार घंटी बजाने के बाद भी गेट नहीं खुला तथा कई दिन का पेपर लॉन में पड़ा हुआ दिखा, तब उन्हें शक हुआ, पड़ोसियों से पूँछने पर पता चला कि परसों ख़ाना बनाने वाली लड़की किसी के साथ आते हुए दिखी थी, उसके बाद से विनय बाबू को किसी ने नहीं देखा, वे यहाँ अकेले रहते थे उनकी पत्नी का देहांत दो साल पहले हो चुका है, तीन बच्चे हैं, दो विदेश में और एक हैदराबाद में।"

"पड़ोसियों ने ही पुलिस को सूचना दी, पुलिस के आने के पश्चात् घर का दरवाज़ा तोड़ा गया, घर में घुसते ही, बैठक में पेंचकस और छोटे-बड़े कई चाकूनुमा, पेंटिंग के औज़ार बिखरे मिले हैं, जिससे पुलिस अंदाज़ा लगा रही है कि मारने वाले किसी और मक़सद से आए थे और वह मक़सद पूरा न होने पर, घर ही के मामूली हथियारों से उनकी हत्या कर दी, घर के उलझे हुए सामनों को देखकर ऐसा लग रहा जैसे विनय बाबू ने अपने को बचाने के लिए काफ़ी संघर्ष किया होगा, दीवारों पर कई जगह खून के निशान हैं, दो जगह तो पंजे के साथ आधी-अधूरी उँगलियों के निशान हैं, महसूस होता है कि विनय बाबू दीवार के सहारे बचने की कोशिश कर रहे थे क्योंकि उनके बैठक की कई पेंटिंग्स गिरी हुई मिली हैं, पेंटिंग्स को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे वह किसी ऐसे चित्रकार की हैं, जो नग्न पेंटिंग बनाने का शौक रखता था, काफ़ी अश्लील चित्रों को उकेरा गया है, कुछ लोग कह रहे हैं कि विनय बाबू ख़ुद ही बड़े अच्छे पेंटर थे, ये उनकी हस्तरचित पेंटिंग्स हैं।"

मैं सारा समाचार सुनकर सन्न थी, चूँकि वे हमारी कॉलोनी के पुराने निवासी थे। कॉलोनी में जब हमारा परिवार नया-नया आया था, तब वे हमें अक्सर टहलते हुए दिख जाया करते थे। आते-जाते हम लोगों का आपस में थोड़ा-बहुत परिचय भी हो गया था। मैंने अभी टीवी बंद नहीं किया था बस विज्ञापन ने मेरा ध्यान भटका दिया था। उतनी देर में मैं विनय बाबू के स्वभाव का मूल्यांकन करने लगी, कि किस तरह जब मैं अपने बच्चों को पार्क में घुमाने जाती थी तो विनय बाबू भी किसी न किसी बहाने हमारी सहेलियों के झुंड के पास खड़े होकर बात करने लगते थे। एक बार तो उन्होंने मुझे अपने घर भी बुलाया था, मेरी पाँच माह की बेटी का अच्छा-सा नाम सुझाने के लिए, पर मेरी दोस्तों ने आँख के इशारे से उनके घर जाने को मना कर दिया था। मना करते वक्त उनके चेहरे पर आश्चर्य के साथ-साथ हास्यमिश्रित भाव भी थे।

उन्हीं दिनों एक दिन मेरी पड़ोसन ने भी मुझे विनय बाबू से बात करते हुए देखा तो कुछ देर बाद मेरे घर आ गई थीं और मुझसे हँसते हुए कहा था, कि इनसे थोड़ा दूरी बना के रखना। तुम नई हो न! इन्हें अभी जानती नहीं हो।

विज्ञापन के पश्चात् टीवी पर एंकर ने ज़ोर-ज़ोर चिल्लाने के बजाए आराम से बोलना प्रारंभ कर दिया था, "विनय बाबू से जुड़ा हर समाचार हम समय-समय पर आपको देते रहेंगे फ़िलहाल अब शहर की दूसरी ख़बरों की ओर चलते हैं।"

चूँकि विनय बाबू की हत्या का मामला हमारे शहर का समाचार था तो वह लोकल चैनल्स पर ही आ रहा था, राष्ट्रीय स्तर पर बस एक दो पंक्ति का ही प्रसारण हुआ था। अत: मैं अगले समाचार तक अपने घर के काम निपटाने लगी, पर मेरा मन अब काम में नहीं लग रहा था? शाम हो गई थी, अचानक घंटी घनघना उठी। मैंने गेट खोला सामने नीता खड़ी थी मेरे घर दस साल से काम करने वाली पुरानी कामवाली। उसने घर में घुसते ही धमाका कर दिया, चिल्लाते हुए बोली- "नेम साहब! कुछ सुना आपने, वो सत्रह नंबर वाले बाबू जी को कोई मार डाला, मल्डर होइगा उनका, कोई घर ही मा मारि के गाड़ दीन्हा रात को। टीबी में सब आय रहा, खोलौ तनिक, देखौ तौ टीबी मा उनकी रासलीला। आख़िर छिछोरऊ चले गए, हमहूँ करे रहयँ उनके घर तीन महीना काम। नेमसाहब ज़िंदा रहीं तब, वे कालिज चली जायँ और ई लिटायर रहयँ। हम पोंछा करी औ ऊ पीछे-पीछे कमरा-कमरा चलयँ ऐसा लगय कि कब पकर लेहयँ। जब वे अकेल रहयँ नेमसाहब! तौ सही कहित हम, बहुत डर लागय। उनके घर मा हमेशा नौकर रहत रहय। नौकर का बियाह रहय तौ हमसे चिरौरी करीं नेमसाहब कि एक महीना काम कर दे। पैसा के लालच मा हम काम तौ पकर लिया लिकिन ई साहब परेसान कर दीन्ह रहयँ। नेमसाहब कमौ काम का जादा पैसा देती रहयँ, देय-लेय मा नेमसाहब बड़ी खरी रहयँ, जो अच्छाई है सो तौ कहय का ही परी, साहब कय बड़ी छिछोरपन की आदत रहय औ नेमसाहब ई बात जानय न। कौन कहे मियाँ-बीवी के बीच की बात? कहव वे साहब की आदत जानती होएँ और कहती न होयँ। कहौ न कहौ भाभी जी कौनो ऐसी ही बात मा मरे हैं साहब। काहे से टीबी मा कहि रहे कि ख़ाना बनावे वाली सबसे बाद मा आई रहय। ऊके बाद म साहब का कोई बाहर नाही देखा है, देख लेव आप! यही कौनो लड़किनी वाला मसला ही होए।"

मैं बराबर टीवी देखती रही और विनय बाबू की हत्या को एक-एक मिनट समझती रही, आख़िरकार नीता की बात सत्य साबित हुई, हफ़्ते भर में पुलिस ने एक आईएएस अधिकारी की हत्या का पर्दाफ़ाश कर दिया था एंकर उस हफ़्ते के आख़िरी दिन फिर चिल्ला रही थी-"और आख़िरकार अवकाशप्राप्त ज़िलाधिकारी की हत्या का राज़ खुल ही गया, जो तथ्य निकलकर सामने आए हैं उसके अनुसार पुलिस का कहना है कि पत्नी की मृत्यु के उपरांत विनय बाबू अपना जीवन-यापन नौकरों और कामवालियों के सहारे चला रहे थे। दो साल पहले उनकी पुरानी

कामवाली अपने गाँव रहने चली गई थी, तब से उन्होंने कई नई उम्र की लड़कियों को काम पर रखा। एक रखते जब वह छोड़ जाती तो वे दूसरी रख लेते। क़रीब तीन महीने पहले उन्होंने जो कामवाली रखी उसकी उम्र महज़ अट्ठारह-बीस साल होगी, कमरे की पैमाइश करते वक्त पुलिस को अचानक दीवार पर ख़ून सने उँगलियों के जगह-जगह अलग तरह के निशान और फ़र्श पर टूटी चूड़ी का नन्हा सा टुकड़ा दिखा, हालाँकि कमरे से हर दाग़-धब्बा पोंछा गया था परंतु वह टुकड़ा सोफ़े के कोने में छिपा हुआ था जो हत्यारों को सफ़ाई के वक्त नहीं दिखा।"

हत्यारों में किसी महिला के शामिल होने का पुलिस का शक अब यक़ीन में बदल रहा था कि हो न हो, कोई महिला भी शामिल थी। आस-पड़ोस में उस कामवाली के और काम न होने से पुलिस के समक्ष उसे ढूँढ़ने का बड़ा अल्टीमेटम था, गेट पर खड़े पड़ोसियों और कई काम वालियों से पूछताछ करने पर पता चला कि वे लोग उसे नहीं पहचानते, उसी समय उधर से निकल रहे एक मज़दूर मियाँ-बीवी ने धीरे से पूछा कि यहाँ क्या हुआ है? इतना कहकर वे दोनों आगे बढ़ गए और चलते हुए मेन सड़क की तरफ़ मुड़ गए, उनको जाते देखकर भीड़ में खड़ी एक महिला बोली कि ये दोनों तो कल भी ऐसे ही टहल रहे थे, अचानक से पुलिस की टीम में भगदड़ सी मच गई। एक सिपाही उछला और उन दोनों की तरफ़ दौड़ा, उसके पीछे-पीछे सड़क की तरफ़ ही पुलिस की पूरी टीम दौड़ने लगी। मैंने देखा कि चिल्लाती हुई एंकर भी हाथ में माइक लिए कैमरे की तरफ़ देखते हुए भीड़ की तरफ़ पीठ किए उल्टा भाग रही थी, चिल्लाते-भागते वह पुलिस तक पहुँचकर, कभी पुलिस, कभी उन दोनों मज़दूर-मज़दूरिन के मुँह में माइक घुसाने की कोशिश में लगी हुई थी। पुलिस के ऑब्जेक्शन के बावजूद सड़क के किनारे पर खड़ी हो उछल-उछल चिल्ला रही थी-

"आख़िरकार प्रशासनिक अधिकारी की हत्या की थ्योरी पुलिस ने पूरी तरह सुलझा ली उसकी हत्या अधिकारी की घरेलू नौकरानी ने अपने मंगेतर और अपनी बहन-बहनोई के साथ मिलकर की थी, उसको जब पकड़ा गया तो उसने जो कहानी सुनाई उससे किसी के भी रोंगटे खड़े हो सकते हैं। उसने बताया कि, "मुझे साहब के यहाँ काम करते हुए तीन महीने हो गए थे। साहब मेरी पगार महीना पूरा होते ही दे देते थे, लेकिन साहब गंदी आदतों के शिकार थे। वे मेरे साथ अक्सर छेड़छाड़ करते थे। छेड़छाड़ का पैसा वे अलग से देते थे। जब भी छेड़ते थे उसके बाद ज़रूर कुछ पैसा देते थे। इस बार जब एक दिन मैं पोंछा कर रही थी, तो उन्होंने चुपके से पीछे से आकर, मेरे गाल को चूमते हुए मुझे बाहों में भर लिया था। मैं बहुत आहत हो गई थी पर फिर मैंने सोचा कोई रेप थोड़ी किया है साहब ने। मेरे जैसी लड़कियों के साथ तो ऐसा होता रहता है।"

यह कहते-कहते वह हिचक-हिचक रोते हुए अपनी बात बताने लगी- "मैंने सोचा कि साहब पैसा तो दे ही देते हैं, लेकिन साहब वही पुराना रेट दे रहे थे। उसके कई बार माँगने पर भी उन्होंने मुझे पैसा नहीं दिया तो मुझे बहुत ग़ुस्सा आ गया था। हत्या वाले दिन मैंने साहब से कई बार पैसा माँगा पर उन्होंने नहीं दिया, जबकि वे उसी दिन बैंक से बहुत सारा पैसा निकालकर लाए थे और फ़ोन पर भैया-दीदी लोगों से बात करते हुए कह रहे थे, कि दीवाली आने वाली है, तुम लोग आओगे तो ठीक है, नहीं तो वे हैदराबाद वाले भैया जी के साथ अमरीका चले जाएँगे, भैया ने कहा कि आप अमरीका ही आ जाओ। मैंने यह सब अपने कानों से सुना था, मेरी भी शादी होने वाली थी, इसलिए मुझे भी ज़्यादा पैसे की ज़रूरत थी। मैं सोचने लगी कि ये अमरीका चले गए तो मुझे तो पैसे मिलने से रहे और मैंने उनसे बीस हज़ार रुपये माँगे थे। वे रुपयों की कई गड्डी रखे थे पर मुझे एक हज़ार रुपया पकड़ा दिए। मेरा भी माथा गरम हो गया, मैंने भी सबक़ सिखाने को ठान ली।"

"मैं उस दिन शाम को काम पे न जाके रात को नौ बजे अपने बहन-जीजा और अपने मंगेतर के साथ साहब के घर जा पहुँची, उन्होंने मेरी बहन जो मेरे साथ ही खड़ी थी उसे देखकर पूछा कि इसे क्यूँ लाई हो? मैंने देर रात का बहाना कर दिया। यह सुनकर साहब ने एक दो बार मना किया कि अब कल काम पर आना पर मैंने कहा कि कल मुझे कुछ और काम है, आपका काम पड़ा रह जाएगा, यह सुनके उन्होंने गेट खोल दिया और मैंने जल्दी से अपने जीजा और मंगेतर को भी अंदर कर लिया, साहब उन लोगों को देखकर सकपका से गए और फ़ोन उठाने चले तो मैंने यह कहा कि हम लोग केवल पैसे की बात करने आए हैं, बाक़ी आप किसी को फ़ोन मत करिए।"

"अब मैं बीस हज़ार के बजाए उनसे पचास हज़ार माँग रही थी, पर साहब बड़ी मुश्किल से दस पर राज़ी हुए, मेरी बात न मानने पर हम कई बार उनसे कहते रहे कि लोगों के सामने हम अपना मुँह खोल देंगे कि आपने मेरे साथ क्या किया है? इतनी बात सुनके मेरा मंगेतर बौखला गया और वह साहब के ऊपर चढ़ गया। उनका गला दबाते हुए बोला कि हमें शादी करनी है नहीं तो ताऊ! हम आज ही तुम्हारे हाथ उखाड़कर पुलिस के चले जाते। इतने पर भी साहब पैसे देने को राज़ी नहीं हुए, ऊपर से हमें पुलिस से पकड़वाने की धमकी देने लगे। अब हमारे पास कोई रास्ता नहीं बचा था। हाथापाई होने लगी, हमें कुछ भी नहीं सूझा, मुझे पता था कि साहब तरह-तरह के चाकूनुमा औज़ारों से पेंटिंग बनाते हैं, मैं घबराहट में छोटे-बड़े सारे औज़ार उठा लाई, हमने उनके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया और छोटे औज़ारों से कनपटी और सिर में कई छेद कर दिए और बड़े-बड़े नुकीले औज़ार से कई जगह से उनकी गर्दन काट दी, हम उन्हें डराकर पैसा वसूलना चाहते थे पर वे हमें बराबर पुलिस की धमकी देते रहे, उनकी धमकियों से हम लोग बुरी तरह डर गए। हम केवल पैसे के इरादे से गए थे, पर बात बढ़ने पर हमें उनकी हत्या करनी पड़ गई।"

एंकर चिल्ला-चिल्लाकर मेरे कानों के पर्दे फाड़ रही थी और मैं अपने घर के टीवी के सामने वाली दीवार पर, कोट-पैंट पहने एक गिद्ध की नई पेंटिंग लगाने की कल्पना कर रही थी।

000

बिगड़ी हुई लड़की

शराफ़त अली ख़ान

''बहुत हर्राफ़ा है हरामज़ादी'' घर का कामकाज निपटा कर गुड़िया के घर से निकलते ही ख़ालाजान ने जुमला कसा। ख़ालाजान पानदान खोले बैठी थीं। बड़े से देसी पान के डंठल को तोड़ पान फैलाकर उसमें पानदान से तांबे की छोटी-छोटी चम्चियों से चूना और कत्था लगाते हुए मुझसे कहने लगीं, ''देख रानी बिटिया, यह तो मर्दमारनी है, तेरा घर बिगड़वा देगी, देखा नहीं, कैसे बालों की लटें चेहरे पर डाले घूम रही है खसमखानी। अभी पिछले हफ्ते ही दाना साहब मियाँ की मज़ार के पास, वह जो गुड्डू पगला रहता है न, वह इसे छेड़ने लगा था और यह उसे मर्दानी गाली दे रही थी। वह तो अच्छा हुआ तेरे खालू उधर से गुज़र रहे थे। उन्होंने गुड्डू को चिल्ला कर डाँट कर भगाया और इसे भी चुप करा कर घर भेजा। अगर तू थोड़ा रुक जाए तो मैं तेरे लिए कोई उम्र- दराज़ कामवाली ढूँढ़ दूँगी।''

मैं बड़ी असमंजस में थी। मुझे फौरन ही किसी कामवाली की सख़्त ज़रूरत थी। मेरा एकाध दिन में मेजर ऑपरेशन होने वाला था। डॉक्टरनी ने साफ़-साफ़ लफ़्ज़ों में कह दिया था कि यह बच्चा नार्मल डिलीवरी से नहीं हो सकता। ऑपरेशन ज़रूरी है। कुछ अंदरूनी प्रॉब्लम है।

मैंने एक नज़र गुड़िया पर डाली थी। जब वह ख़ालाजान के घर का काम निपटा कर एक-दो सेकंड को ख़ाला के सामने खड़ी हुई, जैसे कह रही हो काम निबट चुका है, अब मैं घर जाऊँ ? मगर उसने मुँह से कुछ नहीं कहा। ख़ाला जान ने उसका आशय समझ लिया और आँख के इशारे से ही उसे जाने की इजाज़त दे दी।

पहली नज़र में मुझे गुड़िया साँवली रंगत की छरहरे बदन की करीब पन्द्रह-सोलह साल की एक चटपटी सी लड़की लगी। बालों की एक लट उसने करलिंग कर रखी थी। वही घुँघराले बालों की लट उसके बाएँ गालों को छूती हुई झूल रही थी, अच्छी लग रही थी। मैंने मन ही मन तय कर लिया कि इसे काम पर ज़रूर रखूँगी। दो छोटे बच्चों को कुछ देर देखेगी, फिर झाड़ू पोंछा के बाद अगर मौक़ा लगा तो खाना भी बना दिया करेगी। मुझे उसकी सफाई ने सबसे ज़्यादा प्रभावित किया। अमूमन काम वाली औरतें गंदे कपड़े पहने रहती हैं, जबकि वह साफ-सुथरे कपड़े पहने ख़ुद भी साफ सुथरी नज़र आ रही थी।

गुड़िया जब पहले दिन मेरे घर आई। वही घुँघराली लटें गालों को छूती हुईं। आँखों में काजल जो पहली नज़र में ही दिखाई दे जाए। मैंने उसका तीखी नज़रों से जायज़ा लिया। वह इकहरे बदन की साँवली सी थी। उम्र के लिहाज़ से स्वभाव में थोड़ी लापरवाही और झिझक थी। यूँ तो होशियार औरत किसी दूसरी औरत को किसी पहुँचे हुए हकीम की तरह नब्ज़ नहीं चेहरा देखकर ही उसके पेट, दिल और दिमाग़ का हाल जान लेती है। पहले दिन मैंने उसे घर का पूरा काम समझाया। उसके परिवार का पूरा हाल जाना। वह टूटे परिवार की लड़की थी। गुड़िया की माँ दो बच्चे छोड़कर मोहल्ले के ही पति के दोस्त के साथ दिल्ली भागकर भजनपुरे मोहल्ले में रहती थी। भाई उससे छोटा था। उसे बाप ने एक मोटर मैकेनिक की दुकान पर लगा दिया था। बाप एक लॉन्ड्री पर कपड़े प्रेस करने का काम मज़दूरी पर करता था। डाल से टूटा पत्ता और डोर से टूटी पतंग ग़रीब की जोरू की तरह होती है जिसे हर कोई मुफ़्त का माल समझकर झपटना चाहता है। ज़ाहिर है, ज़माने ने गुड़िया को इतनी आसानी से नहीं बख़्शा होगा, फब्तियों और छींटाकशी की तो वह इतनी अभ्यस्त हो गई होगी कि वे उसके लिए बेअसर हो गई होंगी।

मैंने पहले ही दिन से उसे काम समझाने के साथ-साथ नैतिकता का पाठ भी पढ़ाना शुरू कर दिया था। ''देखो गुड़िया! अच्छी लड़कियाँ बालों की लटें नहीं निकालतीं। कभी पान नहीं खातीं और रास्ते में चलते हुए कभी इधर- उधर देख हँसी-ठट्ठा नहीं करतीं।'' वह मेरी नसीहत सुनकर ऐसे मुस्कराई जैसे टीचर की बातों से बोर होकर लड़कियाँ मुस्कराने लगती हैं।

शाम को अख़्तर साहब के आने पर मैंने गुड़िया की सारी दास्तान उन्हें सुनाई और ख़ालाजान ने जो गुड़िया के बारे में क़िस्से बयान किए थे, वे भी विस्तार से बताए। अख़्तर साहब फॉरेस्ट

शराफ़त अली ख़ान
343, फाइक एन्क्लेव, फेज-2, पो. रुहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली-243006 (उ.प्र.)
मोबाइल- 7906849034
ईमेल-sharafat1988@gmail.com

ऑफ़िसर थे। जंगल- जंगल की खाक उन्होंने छानी थी। वह दुनिया देखे-भाले थे। वैसे भी उन्हें घर आने की फ़ुर्सत कब मिलती थी। जब भी घर आने का वक़्त मिलता तो वह घर के कामों में व्यस्त रहते। मेरी बातें सुनकर बोले, "तुम्हें काम से मतलब है, इसलिए काम से ही मतलब रखो। सलोनी के कुछ बड़े होने तक तो इसे रखना ही पड़ेगा। इसे मजबूरी समझ लो या ज़रूरत।"

ख़ालाजान को जब मैंने जाकर बताया कि गुड़िया को मैंने घर के कामकाज के लिए रख लिया है, तो उनके मुँह का स्वाद मानों कसेला-सा हो गया। मुँह बिगाड़ कर मुझे ऊँच-नीच के लेक्चर देने लगीं। शाम के वक़्त जब ख़ालू साहब अपनी फ्रूट की आढ़त से घर आए तो ख़ाला जान फिर गुड़िया का दुखड़ा ले बैठीं, "कलमुँही मुहल्ले के आवारा लड़कों से बहुत नैन- मटक्का करती है, दीदे तो इतने फट गए हैं कि उसकी बेहयाई देख लो तब भी हया शरम नहीं है उसे, बस हँस देती है।" ख़ालू चुपचाप पानी पीते रहे, कुछ हाँ, हूँ भी न की। ख़ालाजान की बड़ी लड़की शमा ख़ालू साहब को चाय देने के बाद जब मुड़ी तो मुस्करा रही थी।

ख़ाला की छोटी लड़की आयशा सिपारा पढ़ रही थी। वह भी अब चुप होकर ख़ालाजान की बातें दिलचस्पी से सुनने लगी। शमा ने दस्तरख़्वान पर नाश्ता लगा दिया तो मैंने सेब का एक टुकड़ा उठाया और ख़ालाजान से बोली-"ख़ालाजान, आजकल काम वाली आसानी से नहीं मिलती है और जब ज़रूरत हो तो कतई दिखाई नहीं देती। आप उम्रदराज कामवाली मेरे लिए कहाँ से ढूँढ़तीं?"

ख़ालाजान दस्तरख़्वान से उठकर फिर तख़्त पर बैठकर ख़ालू और अपने लिए पानदान खोलकर पान बनाने लगीं। ख़ालाजान मेरे तर्कों से सहमत थीं, मगर गुड़िया से न जाने क्यों उन्हें कुढ़न थी। जबकि वह ख़ुद उससे अपने घर का काम करवा रही थीं।

गुड़िया घर का सारा काम ख़त्म करने के बाद सलोनी को गोद में लेकर खिलाने लगती, कभी बाहर गली की दुकान से सलोनी के लिए चॉकलेट या बिस्कुट ख़रीद लाती। धीरे-धीरे गुड़िया मेरे घर में काफी हिल-मिल गई थी। अब उसकी लटें भी धीरे-धीरे लंबी होकर बालों में समा गई थीं और अब वह कभी पान खाकर भी नहीं आती थी।

कुछ अरसा गुज़रा। इसी बीच उसका बाप और भाई भी कई बार गाहे-बगाहे किसी न किसी काम से घर आने लगे थे। वे पूरे आश्वस्त थे कि गुड़िया मेरे घर पूरी तरह सुरक्षित है। अब गुड़िया धीरे-धीरे नसीहतों पर भी अमल करने लगी। पहली बार जब मेरे साथ बाज़ार गई तो काफी घबराई सी पूरे बाज़ार में मेरे साथ चिपक कर चलती रही। मैंने उसके चेहरे की घबराहट को समझा। घर की गली से निकलकर बाज़ार तक पहुँचने तक मैंने देखा कि कुछेक मनचले लड़के थोड़ी दूर तक पीछा करते रहे। मगर मेरे साथ रहने की वजह से वे रास्ते में ही रुक गए। किसी ने कोई फिकरा भी नहीं कसा। घर आकर मैंने गुड़िया से पूछा कि वह बाज़ार जाते वक़्त इतनी घबराई क्यों थी? पहले तो वह ख़ामोशी से नीचे ज़मीन की तरफ देखती रही। फिर जब उसने नज़रें उठाईं तो उसकी आँखों में आँसू झिलमिला रहे थे। उसने बताया कि जबसे उसकी माँ ने घर से बाहर क़दम रखा, दुनिया मेरी दुश्मन हो गई। लोगों ने मेरी माँ की बदचलनी का लेबल मेरे माथे पर चिपका दिया। मैं जहाँ भी जाती, लोग मेरी तरफ इस तरह देखते कि जैसे कोई अजूबा हूँ। ग़लती माँ ने की थी सज़ा मैं भुगत रही थी। फिर मैंने सोचा, दुनिया से लड़ने के लिए दुनिया जैसा ही बनने का नाटक करना पड़ेगा। इसलिए मैंने दूसरा रास्ता अख्तियार कर लिया। लड़कों के छेड़े जाने पर उन्हें मर्दानी गाली देती। हाव-भाव ऐसे कर लिए जैसे कोई बिगड़ैल लड़की हूँ। ताकि लुच्चे -लफंगे मुझ से आँख न मिला सकें। मैंने उसे समझाया- "अब तुझे किसी तरह के नाटक करने की ज़रूरत नहीं है। तेरी तरफ अगर किसी ने आँख भी उठाई तो उसकी ख़ैर नहीं होगी। बस तू मोहल्ले में बेवजह घूमना छोड़ दे।"

गुड़िया अब घर के सदस्य की जैसी हो गई थी। सुबह आकर घर का सारा काम-धाम अपने आप बड़ी ज़िम्मेदारी से करती। काम के बाद सलोनी को घंटों खिलौनों से खिलाती। मैं भी अब उसके खाना और ख़र्चे का पूरा ख़याल रखती। हमारे घर में रहने की वजह से अब वह बेख़ौफ़ आती जाती। अब उसने ख़ालाजान के घर का काम भी छोड़ दिया था।

एक दिन उसके बाप ने आकर बताया कि एक रिश्तेदार के लड़के से गुड़िया की शादी की बात चल रही है, आपकी क्या राय है?

अब सलोनी भी तीन साल की हो गई थी। नर्सरी में जाने लगी थी। मुझे भी अब गुड़िया की तरफ से ज़िम्मेदारी का अहसास होने लगा था। मैंने गुड़िया के बाप से कहा-"आप शादी की तारीख़- वगैरा तय कीजिए। हम शादी में हर तरह से मदद करेंगे।"

कुछ दिनों बाद गुड़िया दुल्हन बनकर ससुराल जाने लगी। मुझसे जो बन सका मैंने उसकी शादी में ज़िम्मेदारी निभाई। विदा होते वक़्त गुड़िया मुझसे बेसाख्ता लिपट कर रोने लगी। हिचकियों के बीच वह कह रही थी- "मेरी माँ ने तो मेरे साथ कुछ नहीं किया, मगर आपने माँ की तरह मुझे सहारा दिया। मुझे अच्छे-बुरे की समझ दी। हिफ़ाज़त की मेरी। मैं आपको कभी नहीं भूलूँगी।"

गुड़िया के जाने के बाद मुझे अधूरापन सा महसूस हुआ। घर में अजीब सी ख़ामोशी छाई रहती। मगर मेरे दिल में सुकून था कि गुड़िया अपनी नई दुनिया में ख़ुश थी और ज़माने की बिगड़ी हुई लड़की का लेबल उसके माथे से मिट चुका था।

एक दिन ख़ालाजान के घर की बुरी ख़बर सुनने को मिली। मैं दौड़ी-दौड़ी ख़ालाजान के घर पहुँची। ख़ालाजान मुझे देखते ही चिपट कर रोने लगीं। मैंने उन्हें ढांढस बँधाया तो टुकड़ों- टुकड़ों में उन्होंने बताया कि उनकी बड़ी लड़की शमा मोहल्ले के ही एक आवारा लड़के के साथ तड़के सुबह घर में रखा सारा ज़ेवर और नक़दी रुपये लेकर भाग गई। ख़ालू सुबह से ही उसकी तलाश में निकले हुए हैं। छोटी लड़की आयशा सहमी-सी, डरी-डरी निगाहों में ख़ालाजान को देख रही थी और घर में सन्नाटा पसरा हुआ था।

000

जब उनसे मुलाकात हो गई

डॉ. विमला व्यास

कोई अज़ीज रिश्ता हमसे दूर हो जाए तो मन बार बार मिलने के लिए व्याकुल होता रहता है। ऐसे ही जब किसी शहर या घर में एक उम्र गुज़र जाए और किसी मजबूरी में शहर छूट जाए तो अहसास होता है जैसे ख़ुद के एक हिस्से से जुदा हो गए हम, जैसे ज़िंदगी का एक हिस्सा पीछे छूट गया है।

उस बिछड़े शहर ने हमे याद किया या नही, यह बताने में वह असमर्थ है! मगर अरसे बाद जब लौटकर घर का ताला खोला तो लगा कि दरवाज़े किसी अपने की आहट से स्वत: ही खुल गए। हर देह जैसी, हर घर की भी अपनी एक गंध होती है। पर उस घर में रहने वाला ख़ुद अपने घर की नैसर्गिक गंध से तब तक अपरिचित रहता है, जब तक कि एक लंबे समय बाद पुन: घर लौट कर दरवाज़ा खोलना ना हुआ हो।

मैं अपने छूटे हुए शहर की पुरानी इमारतों, ऊँघते मोहल्लों और सँकरी गलियों में अलसाई सुस्त भीड़ से, जब इस महानगर के चमचमाते मेट्रो स्टेशन में अपरिचित चेहरों को तेज़ रफ़्तार मेट्रो में लपक कर चढ़ते उतरते देखती हूँ तो पीछे छूटा मेरा वह शहर याद आता है। अपने शहर से जिस कैरी बैग में कोई सामान रखकर यहाँ लाई थी! उस बैग को भी नहीं फेंक पाती, क्योंकि उस पर दुकान के नाम के साथ मेरे शहर का भी नाम जो लिखा है। मुझे ऐसा लगता है कि इस बैग पर लिखे नाम "नेत राम एंड संस, कटरा चौराहा, इलाहाबाद" के साथ मेरा शहर भी थोड़ा-सा यहाँ आ गया है।

मेरा शहर, जहाँ किसी कुरियर डिलवरी बॉय को घर का एड्रेस बताते हुए कॉलोनी का सिर्फ नाम बताना ही काफी होता है! जहाँ गेट से भीतर आने के लिए गार्ड से हमारा अप्रूवल नहीं लेना

डॉ. विमला व्यास
HIG- 22/3, ग्रीन कॉलोनी सर्कुलर रोड, प्रयागराज, पिन- 211001
मोबाइल- 9452780735
ईमेल- vimlavyas@gmail.com

पड़ता। गली में एक व्यक्ति से एड्रेस पूछने पर पास पड़ोस से दो तीन और लोग गेट खोलकर बताने आ जाते है। जहाँ लिफ्ट में ऊपर जाने का मतलब मॉल में जाना होता है। जहाँ कचरा लेने आने वाले नगर निगम के लड़के बगीचे से अपने घर के लिए कड़ी पत्ता और फूल तोड़ते हुए पड़ोस की गली में चोरी की ख़बर से लेकर, कल उन्होंने कितने रुपये का कबाड़ बेचा बताते हुए चलते हैं। जहाँ बारिश होने पर लोग गंगा-यमुना की चढ़ान देखने के लिए घंटों भीगते हुए घाट की सीढ़ियों पर बैठे रहते हैं।

मेरे उस शहर में अब हवाई अड्डा तो बन गया है फिर भी मालवीय नगर की गलियों में रहने वाले लोग, चुनाव के समय आसमान में हैलीकॉप्टर उड़ते देख, अपने घर की छत पर, हड़बड़ी में कभी लुंगी बाँधते, तो कभी जूठे हाथ दौड़ते हुए चढ़ जाते है। जाने क्यों, हमारे घर की छत से चाँद बहुत बड़ा और नज़दीक दिखाई देता है।

मेरे शहर में जो परिचित सबसे ज़्यादा दूर रहता है उसके घर के फ़ासले जितना भी, यहाँ कुछ भी नहीं है। किसी व्यक्ति की याद आए तो उसको फ़ोन लगा कर चंद बातें कर लेने से दिल को सुकून मिल जाता है।

"अगर किसी शहर की याद आए तो क्या करें ?"

कुछ दिन पहले एक हफ्ते की छुट्टी मिली तो आनन-फानन में अपने शहर का प्रोग्राम बना लिया! जाने पर लगा जैसे कौन मुझे यहाँ याद करता है..?? सब तो वैसे ही चल रहा है, पहले की तरह...

"किसी एक के चले जाने से दुनिया थोड़ी बदलती है, वह तो अपनी रफ्तार में चलती रहती है!"

क्या इस शहर ने मुझे याद किया ?

भीड़ तो अभी भी उसी सुस्ती में नुक्कड़ पर आ जा रही है! इस बात से बिल्कुल बेख़बर कि कोई अर्से बाद इस ज़मीन पर लौट के आया है। सब्ज़ी के ठेले पर औरतें चमकते टमाटरों के ढेर से सबसे अच्छे टमाटर छाँटकर तराज़ू में डाल रही हैं और सब्ज़ी वाला कहता जा रहा है, छाँटकर नहीं देंगे माता जी, पर कौन सुनता है उसकी..??

लोकनाथ चौराहे पर कुछ नौजवान, बाइक खड़ी करके ज़ोर-ज़ोर से होहल्ला करने में मशगूल है! मोहल्ले के छोटे से पार्क में, प्रौढ़ महिलाएँ अपने बच्चों की और घर गृहस्थी की बातें कर रही हैं। जो सास बन गई हैं, जो अपनी बहू की बुराई करने में लगी है! जिनकी बेटियाँ शादी लायक हैं, वे भावी दामाद खोज रही हैं। तिराहे पर पान के ठेलों पर खड़े लोग मघई पान के बीड़े के लिए इंतज़ार करते हुए पूरे देश की पॉलिटिक्स डिस्कस कर रहे हैं! आगे पुलिया पर बैठे बुज़ुर्ग लोग अपने बीते ज़माने की बातें कर रहे हैं।

गोलगप्पे वाला पहले जैसे ही सबकी प्लेट में गोलगप्पे डालता जा रहा है, बिना यह सोचे, कि कौन आया? कौन गया?

"क्या सड़क किनारे के बूढ़े बरगद ने कभी याद किया, कि मेरे पास से गुज़रने वाला और मुझे छूकर प्यार करने वाला एक इंसान कम हो गया है?"

"क्या लेटे हनुमान जी को कभी याद आया होगा कि हर शनिवार हमारे चरणों में माथा टेकने वाला एक इंसान कम हो गया है?"

"क्या मेरे शहर की ज़मीन को कभी एहसास हुआ कि मेरे वक्षस्थल पर एक जोड़ी पैरों का स्पंदन कम हो गया है?"

लौटने के बाद पहली रात, अपने घर की छत पर जाकर चाँद को देखती रही! यही एक पल था, जब मुझे लगा कि चाँद तो मुझे याद करता है। ऐसा महसूस हुआ जैसे पूछ रहा हो.. कहाँ थी इतने दिन? सच में कितनी प्यारी रात, कितनी मनमोहक रात...

मैं यहाँ सिर्फ एक हफ्ते के लिए लौटी थी ! सोचा शहर का हर गली मोहल्ला माप लूँ ! अपने हर परिचित से मिल लूँ! अपने सोते हुए मस्तमौला शहर को फिर से निहार लूँ। क्योंकि फिर मुझे वही लौटना है, जहाँ आसमान नीला नहीं दिखता, पॉल्यूशन की वज़ह से धूल धूसर सा दिखता है! और एक के बाद एक मँडराते हुए हवाई जहाज़ों से भरा हुआ। जहाँ की हवा में साँस लेते हुए, अपने शहर की मिट्टी जैसी सोंधी महक महसूस नही होती।

एक हफ्ते अपने शहर में, अपने पुराने घर में मेहमान की तरह रहकर, मैं वापस फिर से इस महानगर में लौट आई हूँ ! इस भागते हुए शहर में जहाँ की अनगिनत सोसाइटी में से एक है हमारी सोसाइटी, जिसकी दसवीं मंज़िल पर मेरा छोटा सा आशियाना है, फ्लैट नंबर 1004...

"यहाँ रहते तो हज़ारों लोग हैं! पर कोई किसी को नहीं जानता! किसे फ़ुरसत है किसी और का हाल जानने की?"

सब अपनी भागती-दौड़ती ज़िंदगी में मशगूल हैं! जब कभी, कोई आस पड़ोस वाला लिफ्ट में मिल गया, तो हेल्लो हाय हो जाती है, बस....

अगर किसी से मिलने का मन है, तो पहले समय सुनिश्चित करना होता है, वे भी वीकेंड में...आप अपनी मर्ज़ी से किसी के घर नहीं जा सकते! पर हमारे शहर में गाड़ी उठाई और चल दिये अपने करीबी लोगों के घर...

"अचानक पहुँच कर उन्हें सरप्राइज़ देने में जो आनंद आता है, वह बताकर जाने में कहाँ?"

हम ठहरे छोटे शहर वाले, कोई सामने पड़ गया तो मुस्कराकर मिलने की आदत है। सामने वाले से भी यही उम्मीद करते हैं। पर निराशा ही हाथ लगती है।

"अरे भाई मुस्कराने में भी कोई पैसा लगता है क्या?"

ख़ैर छोड़िए...ये बड़े शहरों के बड़े-बड़े क़िस्से हैं ! जब कोई आपको देखकर मुस्कराता भी नहीं। बात करना तो, बहुत दूर की बात है।

मैं अक्सर शाम को ऑफ़िस से लौटकर नीचे सोसाइटी के पार्क में वॉक करने चली जाती हूँ। डूबते सूरज की लालिमा को निहारते हुए दिन भर की थकान थोड़ी कम हो जाती है। पार्क का रास्ता हमारी कार पार्किंग से होकर गुज़रता है। अक्सर मेरी नज़र, खड़ी हुई गाड़ियों के नंबर प्लेट पर चली जाती है! मुझे अच्छा लगता है, उन्हें पढ़ना, आसपास के शहरों, लखनऊ, कानपुर, बनारस की गाड़ियों के नंबर प्लेट देख मुझे अपनेपन का एहसास होता है। एक दिन अचानक एक गाड़ी की

नंबर प्लेट पर नज़र पड़ी, उसे पढ़ते ही दिल धक से हो गया! UP 70 1055, अरे यह तो अपने शहर का नंबर है! मेरी तरह कोई और भी आया है इस बेगाने शहर में, रोज़ी-रोटी की तलाश में! एकदम से ऐसे ख़ुश हो गई, जैसे पूरा शहर ही चलकर यहाँ आ गया हो। कहाँ जा रही थी, वह सब भूल कर गार्ड के पास पहुँच गई।

"अरे भैया, किसकी गाड़ी है यह ?"

"1207 नंबर वाले साब की है, मैम जी।"

इसका मतलब वे लोग 12वीं मंज़िल में रहते हैं। लिफ्ट से ऊपर आकर जल्दी-जल्दी चल रही थी, जिससे घर में पहुँच कर 1207 नंबर वालों से बात कर सकूं! हमारी सोसायटी में लैंडलाइन नंबर और फ्लैट के नंबर एक हैं। मन में सोच रही थी, हो सकता है, वह भी मेरी तरह मालवीय नगर से हों या फिर लोकनाथ से?

ख़याली पुलाव पकाने लगी, उनको अपने घर चाय पर बुलाऊँगी, साथ में प्याज़ वाली गरमागरम पकौड़ी और ढेर सारी बातें करेंगे अपने गली मुहल्ले की...लैंडलाइन से 1207 डायल कर दिया...

"हेलो... " उधर से एक ठंडी सी आवाज़ आई, "हेलो..."

मैंने बड़ा खिलखिलाते हुए कहा, "अच्छा तो आप भी इलाहाबाद से हैं?"

वह एक सेकंड के लिए ख़ामोश रही, फिर बोली, "नहीं तो..."

"अरे, आज आपकी गाड़ी देखी पार्किंग में, गाड़ी का नंबर UP70 1055 देखकर पूछा आपसे, मुझे लगा कि आप भी हमारे शहर से हैं!"

"नहीं मैडम, हम तो दिल्ली के हैं! मेरे हस्बैंड बैंक में ऑफ़िसर हैं ! बैंक की तरफ से उनको यह गाड़ी मिली है। हो सकता है, इलाहाबाद की ब्रांच में ज़्यादा गाड़ियाँ रही हों, तो वहाँ से मँगवा ली गई है!

मेरा सारा उत्साह उनका जवाब मिलते ही ठंडा पड़ गया! मैंने सॉरी कहकर फ़ोन रख दिया!

"छूटे हुए शहर और छूटे हुए घर की वेदना एक प्रवासी ही समझ सकता है!"

मैंने घर लॉक किया और नीचे आ गई पार्किंग में, गाड़ी के पास जाकर उसे बड़े प्यार से सहलाया, नंबर प्लेट को अपनी उँगलियों के पोरों से छूछू कर महसूस किया!

आख़िर वह भी तो अकेली है मेरी तरह?

अपना शहर छोड़ कर यहाँ आ गई है, बेगाने शहर में, अपनी व्यथा कैसे कहे?

उसे भी तो तकलीफ़ हो रही होगी?

उस दिन से मैं जब भी पार्किंग में आती हूँ! उस नंबर प्लेट को ज़रूर तलाशती हूँ और उसे छूकर मुझे इतनी संतुष्ट मिलती है कि मैं शब्दों में बयाँ कर नहीं सकती। जैसे मैंने अपने शहर की मिट्टी को छू लिया हो।

कुछ महीने पहले दुबई में लंबे समय से रह रहे मेरे एक परिचित ने बताया कि जब उनको पता चला कि अबूधाबी में मेरे शहर का कोई रहता है, तो वे गाड़ी उठा कर तीन घंटे ड्राइव करके अबूधाबी उसके घर पहुँच गए! और दरवाज़े पर लगी डोर बेल बजा दी! दरवाज़ा खुलते ही उन्होंने पूछा, आप इलाहाबाद से हैं, जवाब हाँ में मिलते ही, वे दोनों एक दूसरे से गले मिले और मिलते ही रहे पाँच मिनट तक... एक दूजे से अलग नहीं हो पाए, बस उसी अवस्था में रहे! जबकि वे एक दूसरे का नाम तक नहीं जानते थे! उन्हें ऐसा महसूस हुआ जैसे उन्होंने पूरे शहर से मिल लिया!

पाँच मिनट के इस लंबे आलिंगन में उन्होंने इलाहाबाद शहर, वहाँ की गलियाँ, त्रिवेणी संगम... सबसे मिल लिया! जब वे अलग हुए तो उन दोनों की आँखों में खारे पानी की बूँदें झलक रही थीं।

उस दिन मैं नहीं समझ पाई थी, इस मिलन की गहराई को, आज मैं उनकी भावनाओं को समझ सकती हूँ।

सच में...

कुछ बीती मुलाक़ातें
कुछ बिछड़े चेहरे
चंद
बिखरे ख़्वाब
टूटे तारों से माँगने से भी
नहीं मिलते...

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।
पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।
पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 11 मार्च 2024
हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

करवा चौथ

कादम्बरी मेहरा

करवा चौथ से ठीक एक दिन पहले सिन्दूरो चाची का धमाकेदार आगमन हुआ। बाहर बरामदे से ही अंग्रेज़ी में- हेलो वेयर इज़ एवरीबॉडी, का शंखनाद करतीं वह पूर्ण भारतीय शृंगार में अवतरित हुईं। क़द की छोटी मगर उसी अनुपात में, नाशपाती के आकार की उनकी देहयष्टि साँस फूलने से ऊपर-नीचे हो रही थी। गोरे गुलाबी रंग पर सुनहरी किनारी की कत्थई चंदेरी साड़ी और लक दक सुनहरे गहने। चाची थीं तो बहुत सुन्दर ! नि:संदेह !!

मटर की भरी टोकरी उठाए, मालती ने दूर से ही सिर झुकाने का उपक्रम करते हुए उन्हें "पैरी पैना" कहा और वहीं बरामदे में एक ओर मटर छीलने बैठ गई। चाची ने नखरे से आशीर्वाद देते हुए कहा "आ ज़रा फुर्सत से मेरे पास बैठ। जब देखो काम करती रहती है।"

यह आग्रह किया तो था मालती से मगर उनकी टेढ़ी नज़र अपनी जेठानी सत्यवती पर जमी थी। सत्यवती कब चुप रहने वाली थीं। झट से मिश्री घुले स्वर में पूछा- तेरी बहू आशा क्या पका रही है ? चार छह दिन से दिखाई नहीं दी। चाची का मुँह लाल हो गया जैसे चोर चोरी करता पकड़ा गया हो। पिछले डेढ़ साल में उनकी बहू आशा ने रसोई में जाकर झाँका तक नहीं था। उसकी शादी के बाद उसकी माँ और बहन जब पहली बार मिलने आईं थीं, तभी सबके सामने ऐलानिया कह गईं थीं कि हमारी बेटी नहीं बनाएगी किसी की रोटियाँ। पिता की बर्तन बनाने की फैक्ट्री थी। दहेज़ मोटा लाई थी अत: चाची ने हँस- हँसकर उत्तर दिया कि हमारा ख़ानसामा तो पच्चीस साल से टिका हुआ है। हमें आशा से खाना थोड़े ही बनवाना है। वचन अनुसार आशा कभी रसोई में न झाँकी। बच्चा हो जाने के बाद भी नहीं। सुबह अपना दिन भर का मेनू लिखकर वह जीतू को भिजवा देती थी। बच्चे का भोजन-पानी आया देखती थी। गोआ की क्रिस्तानी आया हिन्दी कम जानती थी। वार्तालाप अंग्रेज़ी में करती थी। खानसामा जीतू उसे पीठ पीछे क्वीन विट्टोरिया कहता था।

सत्यवती के उपालम्भ से चाची किंचित शर्मिंदा तो हुईं मगर अपनी बहू की कमज़ोरी क्यों बखानतीं भला। बड़ी शान से बताया कि आजकल तो उसके रोज़ कहीं न कहीं प्रोग्राम चल रहे हैं। गोल्फ क्लब में फूलों का झूला डलवाया गया है। राजस्थानी ढोलक वालियाँ आईं हैं। नाच गाना होता है। हज़ार रुपये का टिकट है। उधर अशोका में स्टाल लगवाए गए हैं। देश भर की हैंडलूम की साड़ियाँ दिखाई जा रही हैं। आशा की माँ ने सरगी के रुपये भेजे थे सो मैंने ही कहा अपनी पसंद से साड़ी ख़रीद ले। ऑरेंज रंग की भारी ज़री की साड़ी लाई तो मुझसे नहीं रहा गया। मैंने उसको करवा चौथ के शगुन का अपना मूँगे-मोती का जड़ाऊ सेट दे दिया। आगे भी उसी का पीछे भी। मेरी तो एक ही है। कल गई थी मैचिंग का पर्स और सैंडल खरीदने। ग्रेटर कैलाश के बाज़ार से इम्पोर्टेड ख़रीदकर लाई है। किसी सहेली ने ठिकाना बताया था। कोई अंदरख़ानी बाहर से मँगवाता है। पर बड़ा महँगा जीईईईई। पर देखो दिल्ली भर की लेडीज़ मक्खियों की तरह टूटी पड़ी हैं। मेंहदी वाली घर आने के पाँच सौ माँग रही है। अब मैंने तो बुला लिया। चूड़ीवाला भी आएगा शाम को। पहले साल तो बरत रख नहीं पाई बेचारी। आते ही बच्चा होने वाला हो गया था। अब यह पहली करवा चौथ है उसकी। मालती तू भी शाम को उधर आ जाना मेंहदी लगवा लेना। अपनी पसंद की चूड़ियाँ लेना। और हाँ सुन कल सुबह सरगी उधर ही खाना। आशा को गोभी के पराँठे पसंद हैं। तू भी खाना। मालती ने अपनी हथेलियाँ आगे कर दीं। चाची तो देखकर अवाक् रह गईं। यह तूने किससे लगवाई। मालती लजाकर बोली ख़ुद मैंने। सीधे हाथ की मेरी बहन ने। परसों शॉपिंग गई थी। दरीबे से चूड़ियाँ खरीदीं।

चाची उठते हुए बोलीं-"हाँ भाई तू है तो बड़ी होशियार।" फिर लंबी साँस छोड़ती हुई बोलीं- "मेरे पदम् और आशा ने तो कॉफी हाउस में बुकिंग करवा रखी है चार दिन की। रोज़ वहीं बैठक लग रही है। कल दोपहर तक ख़तम हो जाएगी।" सत्यवती ने पूछा काहे की बैठक।

"अरे वही तीन पत्ती खेलेंगे। रोज़ रात को देर से आते हैं। चलो कोई बात नहीं अभी तो खाने खेलने के दिन हैं उनके।" सत्यवती ने अचरज से पूछा-"क्या आशा भी खेलेगी कल। इस व्रत में तो घर से बाहर पैर निकालना मना है कथा में। कत्ती ना, अटेरी ना, घूम चरखा फेरी ना। बाहर पैर

कादम्बरी मेहरा
35 दी एवेन्यू, चीम, सरे,
यू के, एस एम 2 7 क्यू ए
फ़ोन-4474591666771
ईमेल- kadamehra@gmail.com

पाईं ना। बताया नहीं उसे ?''

चाची सकपकाकर बोलीं- ''अब मैं क्यों मना करूँ।'' बात बदलते हुए बोलीं- ''पर वह तो अपनी बहन के संग लेडीज़ शो देखने सिनेमा जा रही है। ग्यारह से चार बजे तक दो फ़िल्में दिखाएँगे ताकि व्रतवालियों का ध्यान बँटा रहे। बस फिर अपने-अपने घर जाओ, कथा पूजा करो, करवा मंसो। नया ज़माना है भैन जी। मैं तो सोचती हूँ कि जो पदम् कहे वही तू कर। तुम्हारी तरह थोड़े ही कि बहू को चाकरी बना के रखा है।''

सुनकर सत्यवती तिलमिला गईं। मगर सिंदूरो की लन्तरानिया उसको अंदर से डस रही थीं। बहस बढ़ाने से कोई फ़ायदा नहीं सोच कर उसने जवाब नहीं दिया। मालती अपनी मटर की टोकरी पर नज़र गड़ाए कतई अनभिज्ञ होने का नाटक करती रही। चाची ने जाते-जाते फिर गुड़ में सना प्रस्ताव रखा, ''हाँ तो सवेरे सरगी खाने आएगी ना उधर ?''

मालती बोली, ''चाची जी हमारी सरगी तो 'ये' ख़ुद ही लाएँगे। वैसे भी मुझको बेवक़्त पराँठे आदि खाने की आदत नहीं है।'' चाची मुँह बिचका कर चली गईं।

अगली सुबह चाची के घर में बड़ी रौनक थी। कौवा बोला तो कुछ शांति हुई। दुकान जानेवाले तो अपनी नींद पूरी करना चाहते थे अत: मालती भी दोबारा बिस्तर में दुबक गई। मगर नया चमकता गुलाबी सूट पहने आशा आ धमकी। अपनी सास के ही स्टाइल में उसने दूर से ही हवा में एक पैरी पैना उछाला और सत्यवती से पूछा-''मालती कहाँ है ?'' सत्यवती ने उसे बताया कि वह तो कब की सोने चली गई। चार बजे नहा धोकर उसने करवा रखा और सरगी खाई थी। बस एक रसगुल्ला और चमचा भर नमकीन मूंग की दाल। फिर नारियल फोड़ा, चमचा भर फेनी चखी पानी पिया और हाथ जोड़कर उठ गई। आशा कंधे उचकाकर चली गई।

करीब नौ बजे मालती की आँख खुली। पति मुकुल दुकान जाने के लिए लगभग तैयार थे। गुड्डू दादी की गोदी बैठा सेब का जूस पी रहा था। ऑटो रिक्शा वाला आज थोड़ा लेट था। मालती ने झटपट पति का लंच बॉक्स तैयार किया। सत्यवती के गीले कपड़े अलगनी पर डालने थे। उधर से आशा की आया आ धमकी। बोली कि उसकी मेमसाब कहीं जा रही हैं। उनको जाते हुए देखकर राजुल रोये न इसलिए इधर गुड्डू के संग खेलने आई है। कपड़े डालते हुए मालती ने देखा एक मेकअप वाली सँभालकर आशा को चमचमाती कार में बैठा रही थी। आशा सोलहों सिंगार किये अपनी नई धूपछाँही बंगलौरी साड़ी पहने थी। मूँगे का सेट और कलाइयों की चूड़ियाँ दूर से झलक रही थीं। मेकअप वाली को अपने पर्स से पाँच सौ का नोट दिया और निकल गई। पुत्तूलाल गाड़ी चला रहा था। उसके जाने के बाद पदम् और चाचा जी दूसरी गाड़ी से दूकान गए।

आया आदि देख-देखकर ही सब मज़े लेती हैं। वही बता गई कि बैग सिंगापुर से आया था बीस हज़ार में। और ऊँची एड़ी का सैंडल बैंकॉक से लाई थीं। मालती ने पूछा कौन- कौन सी फ़िल्में दिखाएँगे। आया कुटिल मुस्कराहट से बोली ''मी नो टेल। पण दिवाली का सगुन है। और हाथों को फटकार कर ताश फेंटने का इशारा किया।'' आगे बताया- ''फुल मून टिल ब्रदर पूजा। (यानी शरद पूर्णिमा से भाई दूज तक) टुडे मेमसाब ओनली। साब लोग शॉप जाना।''

दोपहर को मालती ने चंदेरी की सूती ज़री बॉर्डर की तरबूज़ी साड़ी पहनी। ढलते सूरज को अर्ध्य देकर सास के संग बैठकर संध्या देवी की पूजा की और दीपक जलाकर कथा कही। राजुल सारा दिन वहीं रही थी अपनी आया के संग। मालती ने ही दोनों बच्चों का खाना-पीना देखा। सिन्दूरो चाची शाम के मजमे की तैयारी करती रहीं। सत्यवती ने मालती को आगाह किया कि देखा कैसी चंट है। बच्चा तेरे सिर थोप दिया। आप शो बाज़ी में मरी जाती है। मुझे ताने देती है जलन खोरी। अंदर से घुटती है। सब पैसे का उछाल है। याद रखना मेरी बात। बड़ी बूढ़ियाँ कहती थीं सास गई हासे, बहू गई तमाशे। यानी सास की इज़्ज़त नहीं रहती अगर वह बहू के संग हँसी मज़ाक करे और बहू काम धंधे की नहीं रहती अगर वह रोज़ तमाशे देखने जाए। तू देखना!

शाम को एक-एक करके कोठी का सहन कारों से भर गया। आशा की सारी सखियाँ अपनी-अपनी थालियाँ सजाए आ पहुँचीं। सब बड़े घरों की बहुएँ। एक से एक सिंगार। आया की गोदी में राजुल मिनमिनाती रही। पंछी घर लौट आए थे। आशा का कहीं पता नहीं था। सजी बनी सिन्दूरो चाची ने कोठी का फेरा लगाया और अकारण मालती के कमरे में घुस आईं। मालती हैरान इससे पहले कुछ पूछती वह उसी तेज़ी से ओझल हो गईं। राजुल का रोना बढ़ गया। उधर स्त्रियों में कोलाहल बढ़ने लगा। जीतू दूध की बोतल लेकर आया को देने आया और बताया कि राजुल की माँ ग़ायब है। पाँच से ऊपर टाइम हो चुका था।

करीब छह बजे आशा दनदनाती मालती के कमरे की पिछली खिड़की को खटखटा रही थी। इशारा किया कि चुप रह और बाहर आ। मालती उसकी सूरत देखकर चौंक गई। बिखरे बाल फटी सी पुरानी साड़ी। कैंची वाली चप्पल। मालती कुछ बोले कि आशा ने उसका हाथ पकड़कर घसीटा। भाभी जल्दी से मुझे तैयार कर दो। देर हो गई। जैसे तैसे मालती ने उसको साड़ी ब्लाउज पहनाया। शादी के समय का लाल ब्लाउज चिस गया, कोई से कंगन पहनकर। नकली हार झुमके लटकाकर आशा बड़े कमरे में चली गई। मालती उसी तरह पिछले दरवाज़े से अपने कमरे में वापिस आई। आशा का गोरा चेहरा, लाल नीले निशानों से भूतहला हो गया था। न जूड़ा, न शृंगार। क्या किसी से हाथापाई करके आई थी ? मगर क्यों ? फटी साड़ी ? ज़ेवर ? सैंडल, पर्स ? अँधेरे में उसे डर लगने लगा। वह चाची की रसोई की रोशनी में चलने लगी।

रास्ते में पुत्तूलाल ड्राइवर, जीतू को सुना रहा था- ''बहुत ढूँढ़ें हम पर कहीं नहीं दिखाई दी। हारकर घर के लिए गाड़ी मोड़ें तो देखा पगलाई-सी पैदल चली जा रही थीं। सब गहना कपड़ा जुआ में हार आईं। बाबूजी आज साथ नहीं रहे। ऊ जनि सब महा गुंडी। सब धराय लीं। करीब दुई तीन लाख का ज़ेवर रहा।''

मालती के मन में सत्यवती के वचन गूँज रहे थे, सास गई हासे बहू गई तमाशे।

000

अन्तर्मन में नागफ़णी

रेणु गुप्ता

शहर के शानदार ऑडीटोरियम सिटी प्लाज़ा में वर्ष की बेस्ट महिला उद्यमी का सम्मान समारोह चल रहा था, कि तभी स्टेज पर जाने के लिए जानी मानी इंटीरियर डिज़ाइनर स्निग्धा का नाम एनाउंस हुआ। वह स्टेज पर पहुँची ही थी, कि पूरे हॉल में दर्शकों की तालियाँ गूँजने लगीं। तभी एक अजूबा उसकी झोली में आ गिरा। स्टेज के ठीक सामने उसका पति सम्राट, जिससे रूठ कर वह पिछले कुछ समय से अलग रह रही थी, उसे अपलक देखते हुए बड़े ही जोश-खरोश से तालियाँ बजा रहा था। एकबारगी को उसकी आँखें पति की आँखों से मिलीं और उनमें एक अबूझ कोमल भाव देख उसने सकपका कर अपनी नज़रें उससे हटा लीं। उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ, वह उसके सम्मानित होने के दौरान पूरे वक़्त तालियाँ बजाता रहा। उसके स्टेज से उतरने के बाद और दर्शकों की तालियाँ मंद होने के बाद भी उसकी तालियाँ बंद नहीं हुईं।

वह सम्राट के ये बदले बदले तेवर देखकर बेहद हैरान थी। सम्मान समारोह के उपरांत डिनर का आयोजन था। रात के साढ़े ग्यारह बजने आए। स्निग्धा अपनी दो-तीन बेहद क़रीबी सहेलियों और बहनों से घिरी टेबल से उठने ही वाली थी। तभी अचानक सम्राट ने उसके ठीक सामने आ कर एक घुटने पर बैठते हुए अपना हाथ बढ़ा कर स्निग्धा की हथेली थाम उस पर एक मयूरपंखी स्नेह चिह्न अंकित कर दिया। फिर उसे थामे-थामे बेहद भावविह्वल स्वरों में बोलने लगा, "माय डियर, तुम मुझे जो सज़ा देनी चाहो, दे दो, लेकिन आज अपने घर चलो प्लीज़। आज मैं सबके सामने मानता हूँ, बीते दिनों में मैंने तुम्हारे साथ बहुत ज़्यादतियाँ की हैं। प्लीज़ स्निग्धा, मुझे माफ़ कर दो। तुम अपना काम भी जारी रख सकती हो। इतने दिन अकेले रह कर मुझे अपनी ज़िंदगी में तुम्हारी अहमियत समझ आ गई है। कर्णव और तुम्हारे बिना मेरी ज़िंदगी में कुछ नहीं।"

तभी कर्णव ने उससे कहा, "मम्मा, मम्मा, अब तो पापा के घर चलो ना, प्लीज़ मम्मा।"

"अच्छा अच्छा चलेंगे," उस वक़्त तो उसने बेटे को यह कहकर टाल दिया, लेकिन जब पार्किंग में आकर वह अपनी गाड़ी में बैठने लगी, तो सम्राट उसके पीछे-पीछे दौड़ा आया, और उससे कहा, "अब इतनी भी ज़िद ठीक नहीं। मैंने कह दिया न, बीती बातें भूल कर एक नई ज़िंदगी शुरू करनी है हमें।"

"मिस्टर सम्राट चोपड़ा, यह आपकी ग़लतफ़हमी है कि मैं आपकी एक पब्लिक नौटंकी पर दौड़ी-दौड़ी फिर से आपके घर चली आऊँगी। ये बातें यूँ खड़े-खड़े नहीं की जाती हैं। कभी घर आइएगा। तब तसल्ली से बैठकर इस मुद्दे पर बात करेंगे।"

उसकी ये बातें सुनकर इस बार सम्राट ने बेहद बेचारगी की मुद्रा में उससे कहा, "मैं तुमसे कितनी बार कहूँ, अब मुझे रिश्तों की अहमियत समझ आ गई है। तुम्हारे बिना मैं कुछ नहीं, यह कमाई, पैसा, प्रॉपर्टी सब बेकार है। अच्छा चलो, एक लॉन्ग ड्राइव पर चलते हैं। तभी बात भी कर लेंगे।"

"नहीं, नहीं, ये बातें ड्राइव पर नहीं। आप को अपनी मम्मी के साथ मेरे घर आना होगा, वहीं माँ के सामने बैठ कर बातें होंगी।"

मरता क्या न करता, अगले दिन माँ के साथ उसके घर आने का वादा कर सम्राट अपने घर चला गया। घर पहुँच स्निग्धा कपड़े बदल सोने चली गई, लेकिन आज उसकी आँखों में नींद नहीं थी। आज सम्राट से मिल कर ज़ेहन में पुरानी स्मृतियाँ उमड़ने-घुमड़ने लगीं, और वह अनायास कब गुज़रे दिनों की कड़वी मीठी यादों के मजमे में अटकने-भटकने लगी, उसे भान न

रेणु गुप्ता
जी-2, प्लॉट नंबर-61, रघु विहार,
महारानी फार्म, दुर्गापुरा, जयपुर-
302018, (राजस्थान)
मोबाइल -9024579762
ईमेल-renugupta2066@gmail.com

हुआ। सम्राट के साथ उसकी अरेंज्ड मैरिज़ हुई थी। वह शहर की नामी गिरामी, बेहद रईस बिज़नेस फ़ैमिली का इकलौता वारिस था। सम्राट को अपने लिए सौंदर्य के सभी प्रतिमानों पर खरी उतरती लड़की चाहिए थी। स्निग्धा उसकी चाहत के अनुरूप अपूर्व सुंदरी थी। हाथ लगाए मैला होता संदली चिट्टा रंग, बड़ी-बड़ी सीपीनुमा झील सी गहरी आँखें, गुलाब की पंखुड़ी जैसे नाज़ुक सुर्ख़ होंठ, सम्राट ने उसे एक नज़र देखते ही मानस बना लिया कि वह उसी को अपना हमसफ़र बनाएगा। स्निग्धा उसके एक ख़ास दोस्त की बहन थी। बस उसके परिवार की सामाजिक हैसियत सम्राट के परिवार से बहुत कमतर थी। लेकिन कहते हैं न, जोड़े तो आसमान से बन कर आते हैं। सो तय मुहूर्त में दोनों का विवाह हो गया।

शादी के बाद का वर्ष भर उसके जीवन का इंद्रधनुषी दौर था। उसने बस चाँद तारे तोड़ कर उसके हाथों में नहीं रखे, बाकी उस एक साल में वह हर चीज़ उसे दी थी, जिसकी कल्पना तक वह कर सकती। उस एक साल में सम्राट ने उसे भरपूर प्यार दिया। दीवानों की तरह उसके पीछे- पीछे डोलता। उसकी ख़ूबसूरती के कसीदे पढ़ते हुए उसे रोमांटिक शायरी सुनाता। उसका युवा, भावुक मन पति की असीम मोहब्बत की छाँव तले भीतरी तह तक पुरसुकून था। शादी के बाद के पहले बरस में वह उसे कई बार फॉरेन ट्रिप पर अपने साथ ले गया, वॉशिंगटन, लंदन, मॉरीशस और पैरिस। हाथों में हाथ डाले, जी भर कर हँसते बतियाते, दोनों लव बड्र्स दिन-दिन भर उन जगहों के बेहतरीन टूरिस्ट स्पॉट्स की ख़ाक छानते। वहाँ उसने उसे जी भर कर शॉपिंग करवाई।

सम्राट की वजह से जीवन में आया बदलाव उसे एक ख़ूबसूरत सपना लगता लेकिन साल बीतते-बीतते उसकी ख़्वाबनुमा ज़िंदगी में सम्राट की बदमिजाज़ी की सैंध लगनी शुरू हो गई। सम्राट नाम से ही नहीं वरन स्वभाव और प्रकृति से भी शहंशाह था, निरंकुश, मनमौजी।

"बहू, यह मेरा सम्राट दिल का राजा है। इसे हमेशा ख़ुश रखोगी, मगन रखोगी, तो यह पूरी दुनिया लाकर तेरे क़दमों पर डाल देगा, लेकिन तू अगर इसकी इच्छा के विरुद्ध चली, तो तुझे कंगाल होते देर नहीं लगेगी।" वह एक बेहद अहंवादी, पुरुष सत्तावादी इंसान था। उस जैसे तानाशाही प्रवृत्ति के इंसान के साथ अपने आप को पूरी तरह से मिटा करके ही शांति से जिया जा सकता था। वह क़दम-क़दम पर उसके धैर्य की परीक्षा लेता। उसे उसका अपनी सहेलियों, बहनों से मिलना-जुलना बिल्कुल पसंद न था। उसे लेकर वह ओवरपॉज़ेसिव था। वह यह चाहता, कि स्निग्धा की दुनिया बस उस तक सिमट कर रह जाए। उसके हद से ज़्यादा रौबीले और बात-बात पर टोकाटाकी करने वाले ग़ुस्सैल स्वाभाव की वजह से उसका जी घुटता। जल्दी ही उसे आभास होने लगा, कि पति के रुप में सम्राट को पाना उसके जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी थी।

"स्निग्धा यह स्लीवलेस ब्लाउज़ क्यों पहना है? मुझे तुम्हारा स्लीवलेस ड्रेस पहनना सख़्त नापसंद है।"

"यह इतनी डार्क शेड की लिपस्टिक क्यूँ लगाई है तुमने? तुम्हें पता नहीं है, मुझे गहरे शेड्स से सख़्त एलर्जी है।"

"यह तुम आज मीना के हस्बैंड से इतना हँस-हँस कर बातें क्यों कर रही थीं? आदमियों से बातें करो तो तनिक रिज़र्व रहा करो।"

"सहेली के यहाँ जा रही हो, तो इतना बन ठन कर जाने की क्या ज़रूरत है? जब मेरे साथ चला करो, तभी इतना सजा-धजा करो। सोच नहीं सकती वहाँ कितने पराए मर्द भी होंगे?"

"मुझे एक-एक फुल्का अपने हाथ से दिया करो। घर में नौकरानियाँ हैं, इसका यह मतलब कतई नहीं कि तुम हाथ न हिलाओ। भूल गई अपने पीहर में घर का सारा काम तुम लोग ख़ुद करते हो।" सम्राट के ज़हर बुझे तानों और व्यंग्यबाणों से उसका कोमल कच्चा मन क्षत-विक्षत हो जाता। वह समझ न पाती, उसे कैसे हैंडल करें। बस आँसू बहा कर रह जाती। वक़्त यूँ ही बीतता जा रहा था। यूँ ही सम्राट की दिन रात की खिच-खिच और उसके आँसुओं के साथ साल दर साल कैलेंडर बदलते गए। उसके उग्र, खिटखिटिया स्वभाव से परेशान होकर वह पिछले कुछ वर्षों में कितनी ही बार मायके कभी न लौटने की सोच कर चली गई, लेकिन मायके में तीन-तीन बेटियों के विवाह के लिए प्रयासरत, असमय बुढ़ा गई विधवा माँ का शिकन भरा चेहरा देख वह हर बार सम्राट के मीठे स्वरों में घर बुलाने से घर वापस लौट आती।

उन दिनों वह सम्राट के साथ न्यूयॉर्क में थी। वहाँ ख़रीदारी करते वक्त उसकी पति से झड़प हो गई। सम्राट ने अपनी माँ और बहनों के लिए बढ़िया क्वालिटी के बेहद महँगे शॉल और स्वेटर ख़रीदे। जब उसने अपनी माँ और तीनों बहनों के लिए ठीक वैसे ही शॉल और स्वेटर ख़रीदने चाहे, सम्राट ने उसे बेहद तुर्शी से यह कहते हुए झिड़क दिया, "आंटी और तुम्हारी बहनों के लिए इतने कीमती शॉल स्वेटर ख़रीदने की कोई तुक नहीं। इतने महँगे कपड़े पहन कर उन्हें मेरी माँ की तरह कौन-सी हाई सोसाइटी की औरतों में उठना बैठना है? वह तो तो महज़ अपने मोहल्ले की मिडिल क्लास चाची, ताइयों के घरों में आती जाती हैं। ख़रीदने ही हैं, तो उनके लिए वह सेल में सस्ते स्वेटर शॉल ख़रीद लो।" उस दिन पति की इन कड़वी बातों से वह बेहद आहत हो गई, और अतीव ग़ुस्से में कुछ भी बिना ख़रीदे अकेली रोती बिसूरती होटल वापस आ गई।

पति की रोज़ाना की छींटाकशी और उलाहनों से त्रस्त, उस दिन उसे पति पर अपनी आर्थिक निर्भरता का शिद्दत से एहसास हुआ, और मन ही मन उसने ठाना कि वह किसी भी तरह अपने पैरों पर खड़ी होगी, लेकिन यह इतना आसान न था। घर लौटकर उसने इस दिशा में बहुत सोचा। बचपन से वह एक इंटीरियर डिज़ाइनर बनना चाहती थी। उसमें शुरू से इंटीरियर डिज़ाइनिंग की गहन नैसर्गिक प्रतिभा थी। घर के किसी भी कोने में हाथ भर लगा देती, तो वह खिल उठता। लेकिन पिता की असमय मृत्यु से आए आर्थिक संकट की वजह से वह अपनी इस इच्छा को शादी से पहले पूरी नहीं कर पाई। उन्ही दिनों उसकी एक सहेली ने एक

प्रतिष्ठित संस्थान के इंटीरियर डिज़ाइनिंग के कॉरस्पोंडेंस कोर्स में नाम लिखाया। उससे प्रेरित हो उसने अपने पास घर ख़र्च से बचा कर जमा किए गए पैसों से उसी संस्थान के कॉरसपोंडेंस कोर्स में बिना सम्राट को बताए अपना नाम लिखवा लिया। वह घर में ही रहकर इंटीरियर डिज़ाइनिंग की किताबों और इंटरनेट पर उससे संबंधित सामग्री का अध्ययन करने लगी। उसे उस एक वर्षीय पाठ्यक्रम को ज्वाइन किए क़रीबन सात-आठ माह हो चले। पर एक दिन उसका राज़ सम्राट के सामने खुल ही गया। इस कोर्स की पूरी अवधि के दौरान उसे हर पंद्रह बीस दिनों पर इस क्षेत्र के व्यवहारिक अनुभव के लिए किसी न किसी साइट पर जाना पड़ता था। उस दिन वह इसी सिलसिले में एक निर्माणाधीन अपार्टमेंट से घर लौट रही थी, कि सम्राट अदमनीय क्रोध में फ़नफ़नाता घर आया, और उस पर बरस पड़ा, "यह मेरी पीठ पीछे क्या गुल खिला रही हो? तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई मुझे बिना बताए यह इंटीरियर डिज़ाइनिंग का कोर्स करने की? इंटीरियर डिज़ाइनर बनकर क्या तीर मार लोगी तुम? लोग मेरे नाम पर थू थू करेंगे, जब उन्हें पता चलेगा कि सम्राट चोपड़ा की बीवी चंद रुपयों की ख़ातिर न जाने कहाँ-कहाँ के बिल्डरों और मज़दूरों के बीच पूरा-पूरा दिन बिताती है।"

"कान खोल कर सुन लो, अगर तुमने अब घर से बाहर क़दम भी रखा, तो मेरे घर के दरवाज़े तुम्हारे लिए हमेशा के लिए बंद हो जाएँगे।" बाद में उसे स्वयं पर आश्चर्य हुआ, अपने अंदर की सारी ताक़त बटोर वह बेहद शांत और संयत स्वरों में उससे बोली, "सम्राट तुम हर समय मुझे छोटा महसूस कराते हो, जैसे मैं तुम्हारे रहमो-करम पर पड़ी हुई हूँ। नहीं, अब और नहीं, बस अब मैं अपने पैरों पर खड़ी होकर रहूँगी।" उसकी ये दो टूक बातें सुनकर सम्राट का ग़ुस्सा चरम पर जा पहुँचा और उसने उसे काबू में करने के लिए अपना आख़िरी ब्रह्मास्त्र चलाया, "अगर तुमने कल से अपनी पढ़ाई बंद नहीं की तो मेरा तुम्हारा रिश्ता ख़त्म।" यह कहकर वह उत्कट आवेश में पैर पटकता घर से निकल गया, लेकिन स्निग्धा पर पति की इन धमकियों का कोई असर नहीं हुआ।

सम्राट के अपनी फैक्ट्री जाने के बाद मन ही मन आत्मनिर्भर बनने की अपनी भीष्म प्रतिज्ञा दोहरा वह बेटे कर्णव का हाथ थाम अपना सूटकेस पैक कर माँ के घर के लिए निकल पड़ी। माँ के घर पहुँच कर उसने वृद्धा माँ और बहनों को शादी के बाद शायद पहली बार अपने और सम्राट के मध्य के कटु समीकरण का खुलासा किया। उन्हें सम्राट की ओछी, संकीर्ण, कलहप्रिय मानसिकता के बारे में खुलकर बताया। उसकी बातें सुन सभी ने एकमत से निर्णय लिया, कि उसे हर हाल में अपनी पढ़ाई ख़त्म करनी चाहिए।

माँ के घर आर्थिक तंगी के बावजूद वह सम्राट के बदमज़ा करने वाले कटाक्षों के बिना अपेक्षाकृत सुकून से थी। अपना ख़र्च निकालने के लिए वह बच्चों का ट्यूशन लेने लगी। नियत वक्त पर उसका इंटीरियर डिज़ाइनिंग का कोर्स ख़त्म हुआ। धीरे-धीरे वक़्त के साथ उसे अपने सामाजिक दायरे में परिचितों के घरों, ऑफ़िसों के इंटीरियर डिज़ाइनिंग के प्रोजेक्ट मिलने लगे। उसे वह दिन आज तक याद है, जब उसे किसी के घर की इंटीरियर डिज़ाइनिंग करने के अपने पहले प्रोजेक्ट के पारिश्रमिक के रूप में पचास हज़ार रुपये मिले। वह बेपनाह ख़ुशी से झूम उठी। वक्त के साथ उसका काम बढ़ता गया और उसके साथ उसका नाम भी। दिन यूँ ही बीतते जा रहे थे। समय के साथ-साथ स्निग्धा की पहचान एक उत्कृष्ट कोटि के इंटीरियर डिज़ाइनर के रूप में बनती जा रही थी। उसका हर क्लाइंट उसके सौम्य, मृदु व्यवहार एवं कुदरती कार्यकौशल का कायल हो कर रह जाता।

उस दिन उसके पास एक नामचीन स्थानीय उद्यमी महिला क्लब द्वारा उसे उसकी विलक्षण कार्य कुशलता के लिए सम्मानित किए जाने की ख़बर आई। संयोग से सम्मान समारोह के दिन कर्णव का जन्मदिन भी था। कर्णव दस वर्ष का होने आया था। नानी के घर सुबह से खिन्न मन, उदास सा बैठा था।

तभी स्निग्धा ने उससे कहा, "मेरा बेटा आज इतना सैड सैड कैसे है? आज तो आप का बर्थडे है। बेटा बोलो, आज आप को गिफ्ट में क्या चाहिए?"

"मुझे पापा चाहिए।" कर्णव की बातें सुन स्निग्धा सोच में पड़ गई, कि तभी उसके फ़ोन की घंटी बजी। सम्राट उसे कॉल कर रहा था, जिसे देखकर स्निग्ध ने उससे कहा, "ले बेटा, बात कर।" सम्राट कर्णव को बेहद लाड़ करता था। सम्राट ने बेटे से वायदा किया कि वह शाम को नानी के घर आएगा और उसे तथा मम्मा को महिला क्लब के सम्मान समारोह में ले जाएगा। तय वक्त पर सम्राट बेटे को स्निग्धा के साथ सम्मान समारोह ले जाने आया। वह बेटे के लिए बहुत से उपहार लाया।

बेटे के सामने आते ही उसने उससे पूछा, "मेरे बेटे को कुछ और गिफ़्ट चाहिए तो बोल। आज के दिन तू जो माँगेगा, मैं तुझे वही दूँगा।"

"सच कह रहे हैं पापा?"

"हंड्रेड परसेंट सच बेटा।"

"मुझे आप दोनों के साथ रहना है।"

"अब बेटा मम्मा चाहिए तो मम्मा से बोलो आप। सुन रही हो भई अपने लाड़ले की बातें? चलो जो हुआ सो हुआ। मिट्टी डालो उस पर। आज फ़ंक्शन के बाद मम्मा, पापा के साथ अपने घर चलेंगी।"

"और हाँ कर्णव बेटा, कल ही मैंने आप दोनों के लिए तीन करोड़ का एक शानदार घर खरीदा है। स्निग्धा अपने घर की इंटीरियर डिज़ाइनिंग तुम्हें ही करनी है। तो आज तुम्हें और कर्णव को मेरे साथ घर चलना है।"

"सम्राट..., आपने मुझे क्या अपनी कठपुतली समझ रखा है, कि हर समय आपके इशारों पर नाचती रहूँगी। सॉरी मिस्टर सम्राट चोपड़ा, मुझे आपके तीन करोड़ के घर में महज एक डोर मैट की हैसियत से रहना हर्गिज़ हर्गिज़ गवारा नहीं। मैं फंक्शन में जा रही हूँ, और हाँ एक बात और, आपको वहाँ आने की कोई ज़रूरत नहीं।"

सम्राट उससे कहता रह गया, "स्निग्धा स्निग्धा, ज़रा सुनो तो," लेकिन वह उसकी बात बिना सुने बिना आवेश में खीझती हुई समारोह स्थल जाने के लिए घर से निकल

गई। स्निग्धा बीते वक़्त की यादों के प्रवाह के साथ तिनके की मानिंद बही जा रही थी, कि तभी खिड़की के बाहर बागीचे से रात की रानी के फूलों की तेज़ मदमाती महक से लबरेज़ पुरवाई के झोंके से उसकी विचार श्रृंखला में व्यवधान आया। उसने चौंक कर मोबाइल में समय देखा। रात के दो बजने आए।

आज सम्मान समारोह में सम्राट की बातें सुन उसके पुराने ज़ख्म ताज़े हो आए थे। खिड़की से आती सुगंधित, शीतल बयार भी उसके मन का दाह नहीं मिटा पाई। मानस चक्षुओं के सामने सम्राट का अपने घुटने पर बैठ उससे माफ़ी माँगना और उसे दिल को छीलने वाले कड़वे तंज़ सुनाते सम्राट की छवियाँ गड्डमगड्ड हो आईं। सम्राट के साथ एक छत के नीचे रहते हुए अपनी शिद्दत की घुटन भरी मन:स्थिति की यादें बेहद दुखदायी थीं। उसने बहुत सोच विचार कर मन ही मन निर्णय लिया, अब से अपनी प्रोफ़ेशनल लाइफ़ में ऊँचाइयाँ छूना ही उसकी ज़िंदगी का मकसद होगा। इस सोच ने उसके क्लांत मन को तनिक राहत दी, और वह जल्दी ही नींद के आग़ोश में समा गई।

अगले ही दिन सम्राट अपनी माँ के साथ उसके घर पहुँचा। दोनों माँओं की उपस्थिति में उसने उनसे और स्निग्धा को वायदा किया कि इस बार वह उसके काम को लेकर कोई रोक-टोक हर्गिज़-हर्गिज़ नहीं करेगा। इसके बाद और कुछ कहना सुनना शेष न रहा था। स्निग्धा एक अर्से बाद अपने घर पहुँची।

एक मुद्दत बाद दोनों के मिलन की पहली यादगार रात प्रणय रस की चाँदनी तले एक दूसरे की बाँहों में बँधे हुए बीती। रूठी हुई प्रेयसी के सारे गिले शिकवे प्रणयातुर प्रियतम के अशेष नेह की मेह में धुल-पुँछ गए। वह स्निग्धा के जीवन का नायाब दौर था। जीवन में सब कुछ मनचाहा घट रहा था। सम्राट पत्नी और बेटे को अपना शानदार बंगला दिखाने ले गया। स्निग्धा को विश्वास नहीं हो रहा था कि, वह ख़ूबसूरत घर उसका अपना था। तभी सम्राट ने उससे कहा, "यह तुम्हारा घर है, जैसा जी चाहे इसे सजाओ," यह कहते हुए उसने खड़े-खड़े उसे पच्चीस लाख का एक चेक काट कर थमा दिया। पत्नी और बेटे के बिना इक अर्सा सूखे ठूँठ सा जीवन बिता उसे अपनी ज़िंदगी में उन की अहमियत का शिद्दत से अंदाज़ा हो चला। बिना अपनों के अथाह दौलत की निरर्थकता का भान गहराई से हुआ।

वह अच्छी तरह से समझ गया कि ख़ुशियाँ रिश्तों में रची बसी हुई हैं, न कि धन-संपत्ति में। इस बार सम्राट की ज़िंदगी में वापस लौट कर स्निग्धा उसको देखकर हैरान थी। जिस सम्राट ने उसे इतने बरसों तक सताया, रुलाया, क़दम-क़दम पर उसके धैर्य की परीक्षा ली, पत्नी और बेटे से अलगाव ने मानों उस पर जादू की छड़ी घुमा दी थी। अब वह स्निग्धा के पीछे-पीछे घूमता। स्निग्धा के अगले कुछ माह व्यस्त बीते। उसने बेहद रच बस कर अपने घर को अपने ड्रीम हाउस की शक्ल दी। नए घर की इंटीरियर डिज़ाइनिंग पूरी हुई। उसके कलात्मक हाथों का स्पर्श पाकर घर का हर कोना मानों मुस्करा उठा।

कोरोना महामारी के प्रकोप के चलते उन लोगों ने मात्र अपने क़रीबी परिवार जनों की उपस्थिति में विधिवत् पूजा अर्चना के साथ गृह प्रवेश संपन्न किया। स्निग्धा ने आँखों में पति के सुखद समर्पित सान्निध्य के सपने सजाए बेपनाह ख़ुशी से उमगते हुए नूतन घर में प्रवेश किया। पर इंसानी ज़िंदगी की बिसात पर कुदरत की गिद्ध दृष्टि हमेशा बनी रहती है, कि कब मौका मिले और वह इंसानी मंशा को मात देते हुए अपनी श्रेष्ठता साबित कर सके। उन्हें अगले सप्ताह नए घर शिफ़्ट होना था कि तभी क्रूर काल ने उनकी हँसती-खेलती ज़िंदगी पर अपना निशाना साधा।

सम्राट को कोविड हो गया। शहर के सबसे महँगे अस्पताल में बेहतरीन इलाज के बावजूद उसका कोविड काबू में नहीं आया, और उसकी हालत दिन पर दिन बिगड़ती गई।

सम्राट की बेपनाह दौलत, रुतबा सब धरा का धरा रह गया, और महाकाल के निमंत्रण पर वह अपने रईसी ठाट बाट एक पल में छोड़कर स्निग्धा के सात जन्मों का बंधन तोड़ अपनी अनंत यात्रा पर चला गया।

स्निग्धा पर मानों गाज गिरी। उसे रह-रह कर बस एक ही अफ़सोस होता, एक मुद्दत बाद तो सम्राट को सद्बुद्धि आई, लेकिन एक ही झटके में वह उससे हमेशा के लिए जुदा हो गया, कभी न लौट कर आने के लिए। कानों में निरंतर सम्राट के अंतरंग क्षणों में कहे हुए शब्द गूँजते, "तू तो मेरी क्वीन है, मेरे दिल की मलिका, मेरे घर की रानी।" नियति के इस घात पर उसका हृदय अनवरत धू-धू सुलगता। उसे लगता, उसके अंतर्मन के मरुस्थल में सैकड़ों नागफणी उग आए।

सम्राट की मृत्यु हुए पूरे दो माह होने आए, लेकिन अभी तक वह अपने आप को अपने काम में पूरे मनोयोग से लगा पाने में स्वयं को असमर्थ पा रही थी। उसका काम चंद भरोसेमंद कर्मचारियों के दम पर ठिठकते ठहरते चल रहा था। उसके सामने उसका लैपटॉप खुला पड़ा था लेकिन उसका मन नहीं हुआ कि वह कुछ भी करे। लैपटॉप बंद कर वह अपने कमरे से लगे टैरेस पर आ गई। तभी अपने ऊपर कुछ आहट सुन उसने चौंक कर देखा। उसके ठीक सामने एसी की बाहरी यूनिट के ऊपर दो गौरैयाएँ बड़े ही प्यार से एक दूसरे की चौंच में चौंच डाले हुए बैठी थीं। उस जोड़े को इतने प्यार से एक दूसरे की नज़दीकी में बैठे हुए देख कर उसे लगा मानों उसके कलेजे पर आरी चली, और उसकी आँखें नम हो आईं। अनमयस्क मन वह वहाँ का फ़ैन चला कर वहाँ पड़े सोफे पर बैठी ही थी, कि उसका कलेजा धक से रह गया। पलक झपकते ही गौरैयाओं के जोड़े का एक जोड़ीदार न जाने कैसे फ़ैन की चपेट में आकर लहूलुहान हो उसके सामने ज़मीन पर आ गिरा। उसी के साथ करुण क्रंदन करते हुए दूसरा जोड़ीदार नीचे आकर मृत साथी के इर्द-गिर्द उड़ने लगा। वह वहाँ एक खंबे की आड़ से दूसरी गौरैया को देखने लगी। दूसरी गौरैया कुछ देर तक मृत पक्षी के आसपास उड़ती रही और कुछ ही देर में अपने घोंसले में जा बैठी। उसकी चीं चीं निरंतर जारी थी। रात गहराने लगी थी। देर रात तक गौरैया की हृदय विदारक चीं चीं उसके कानों में पड़ती रही। रात भर वह बेचैनी के आलम में करवटें बदलती रही।

भोर हो आई थी। वह टैरेस पर आ गई, कि तभी वह एक सुखद आश्चर्य से अभिभूत हो गई। एसी की बाहरी यूनिट पर कुछ नन्हीं गौरैयाँएं चीं चीं कर रही थीं। तभी उसने देखा, जीवित गौरैया कहीं से सूखी घास और पेड़ों की टहनियाँ अपनी चौंच में दबाए अनवरत ला रही थी। उसे यूँ बार-बार वह सब लाते देख स्निग्धा के मन से शायद आवाज़ आई, साथी के बिछड़ने पर भी वह निरंतर कर्मरत है। तभी उसने देखा, वह शायद थक कर बैठ गई थी। उसके नन्हें-नन्हें बच्चे उसके पंखों की छाँव में दुबक गए। अनायास आँखों के सामने कर्णव का मासूम चेहरा कौंध उठा। गौरैया अपनी चौंच से बार-बार नन्हीं गौरैयाओं को कुछ खिला रही थी। वह दौड़ कर सोते हुए कर्णव के पास गई और उसे चूमते हुए मन ही मन बुदबुदाई, "उफ़, इतने से दिनों में कैसा मुर्झा गया है मेरा बच्चा।"

वह कुनमुनाया "मम्मा सोने दो ना। प्लीज़ तंग मत करो। आप भी सो जाओ।"

"हाँ, हाँ बेटा अभी तक तो सो ही तो रही थी मैं। जगी तो अब हूँ।" उसने कर्णव को एक बार फिर से बड़े स्नेह से चूमा और उठकर अपना लैपटॉप ले आई और अपनी ईमेल चेक की। कितने ईमेल आए पड़े थे। उनका जवाब देना था। कुछ नए प्रोजेक्ट्स की स्वीकृति आई हुई थी। उन्हें पूरा करना है। उसने अपनी असिस्टेंट को फ़ोन लगाया, "मेरा ऑफिस खुलवा कर साफ करवा देना। आज से मैं ऑफ़िस आ रही हूँ। वहाँ सब से कह देना, इस महीने किसी को कोई छुट्टी सैंक्शन नहीं होगी।"

ऑफ़िस जाने से पहले वह अपने सामने लगे सम्राट की फ़ोटो के सामने रुक कर बुदबुदाई, "रेस्ट इन पीस, सम्राट, माय लव। मुझे हिम्मत दो कि मैं अपने और तुम्हारे छोड़े अधूरे काम सही ढंग से पूरे कर सकूँ। अब से कर्णव और मेरा काम मेरे जीने के मकसद होंगे।"

मन में दृढ़ संकल्प की आग और एक अनोखी उमंग लिए वह ऑफ़िस के लिए रवाना हो गई।

000

लघुकथा

पैरों तले ज़मीन

मनमोहन चौरे

राजधानी एक्स्प्रेस अपनी पूरी सामर्थ्य से, किन्तु प्रशासन द्वारा निर्धारित गति से अपने गंतव्य की ओर दौड़ी चली जा रही थी। जब पत्नी ने पूछा और कितनी दूर है। तब मैं समझ गया कि वह दूरी नहीं बल्कि समय जानना चाहती है।

वही राजधानी एक्स्प्रेस जब मेरे घर की ओर आ रही होती है तो पत्नी पूछती है कि कितना समय लगेगा। तब मैंने जाना कि वह समय नहीं, दूरी जानना चाहती है।

दूरी, समय और चाल जानने का ये फार्मूला मैंने अपने स्कूल टाइम में ही सीख लिया था, पत्नी इस बात से अनभिज्ञ थी। मैं उसकी अकुलाहट का भरपूर आनंद लेने का प्रयास कर रहा था।

औसत चाल = (कुल चली गई दूरी) / (कुल लगा समय)

मेरी यह सब चाल वह समझ नहीं पाई, किन्तु मैं उस चाल को भली भाँति समझ रहा था। वह समझ रही थी कि मैं समय और गति की गणना कर रहा हूँ। लेकिन मैं उसकी अपनी माँ के पास पहुँचने की एवं अपनी सास यानी मेरी माँ के पास पहुँचने की उत्कण्ठा का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास कर रहा था।

मेरी पत्नी अपनी माँ से गले मिली। आँखों से गंगा, यमुना, सरस्वती इतनी बही कि समुद्र भी आश्चर्यचकित हो गया। मैं उस दृश्य को व्यंग्यात्मक दृष्टि से देख रहा था। आश्चर्यचकित तो मैं भी था। अभी हमें आए हुए दो घंटे भी नहीं हुए थे। मेरी पत्नी, अपनी माँ से जाने की बात करते हुए कह रही थी कि बस मिलने आ गई। सासू माँ की तबीयत ठीक नहीं रहती है, उनकी देखभाल के लिये मुझे जाना पड़ेगा।

मैं नि:शब्द था। मैं समझा था कि वह दो-चार दिन रुकने का कार्यक्रम बनाकर आई होगी। मेरे बचपन का समय, गति, चाल और दूरी का पढ़ा हुआ स्कूली ज्ञान और मेरी सारी होशियारी उसकी भावनाओं के सैलाब में वह गई थीं और मैं शर्मिंदा हो कर अपने ही पैरों तले ज़मीन तलाश रहा था।

000

मनमोहन चौरे
एस/21, मंदाकिनी कालोनी
कोलार रोड, भोपाल 462042
मोबाइल-9893361341
ईमेल- mc406457@gmail.com

इतनी-सी बात

पंजाबी कहानी

मूल लेखक- बलीजीत
अनुवाद- गीता वर्मा

बलीजीत
1608, सेक्टर-79, मोहाली
पंजाब, पिन-140308
ईमेल- balijit15@gmail.com

गीता वर्मा
NE-87, पुरिआँ मोहल्ला, निकट
खिंगरा गेट, जालंधर शहर
144001, पंजाब

'सात लड़के। दो लड़कियाँ। दो हों, चार हों। मेरी सास का पूरा टिड्डी दल था नौ बच्चों का। नौ बच्चे। हे राम.... राम राम। मेरा गौना आने के बाद भी दो बार ज़हमत पड़ी। यह फौजी और गुरदित्ती मेरे आने के बाद पैदा हुए। बड़ा गन्द मन्द किया अपने हाथों बूढ़ी का। ढंग न सलीक़ा किसी को। बीच में मेरी जेठानियाँ... ये तेरी ताइयाँ पैरों पर बैठी रहतीं। सारा दिन चबड़-चबड़ बातें होती रहतीं।'

'फिर गुज़ारा कैसे करते थे, माता ?"

'गुज़ारा करते राख ! भूखे मरते। चौबीस घंटे कलह। लड़ाई-झगड़ा और क्या होता है ऐसे घरों में। ऐसी बुढ़िया... चल मर गई... रब करे और आगे जाए... अगर मारती तो फूँकनी से। सारा दिन बूढ़ी की फूँकनी कुएँ तक गूँजती रहती। सब बेदिमाग़। हराम के। ... निरे हराम के ..... पूरा गाँव ही हराम का था सारा। क्या जात... क्या बिरादरी .... गोत.... सब कुड़ी आवे थे (एक गाली)।'

'निर्मला रानी भी ?'

'कौन?'

'निर्मला। निक्की।'

'बड़ी बुआ तेरी ?"

'हाँ। सीहो माजरे वाली सगी बुआ। अब तो वह हमसे मिलती जुलती भी नहीं।'

'हाँ। निक्की। निक्की ने भी बहुत रंग दिखाए। क्या बातें करनी। क्या बातें सुनानीं। उसने भी एक बार तो घर से बाहर निकालने वाले हालात कर दिए थे।'

'बापू से बड़ी थी ?'

'कहाँ! देख ले तेरे बाप से तीसरी जगह पर है। जब मैं यहाँ गौने आई तो फटी हुई कुरती और घिसी हुई पजामी पहने सारा दिन दौड़ी फिरती। न आप नहाना, न किसी ने नहलाना। सास मेरी पैदा करके फेंके जाती। भई अगर सँभाले नहीं जाते तो जनती क्यों है? बूढ़ा सारा दिन हुक्का पी पी कर खांसे जाता। दोनों को दो धेले की अक्ल नहीं थी। कोई हो, बड़े से लेकर छोटे तक कोई दूसरे को जूती से नहीं पूछता था। छोटी को क्या कहना। सबका यही हाल था। ऐसे घरों में यही राख उड़ा करती है। सारे गाँव को ही यह आग लगी हुई थी। पर जिसके लगती है, उसको ही पता होता है। तब तो निक्की ने हमें जन्म से भी छोटा कर दिया था। तवा, परात उल्टी ....'

'कैसे?'

'क्या बातें करनी, बेटा।'

'हूँ .. ।'

'क्या बताऊँ, बच्चे। कैसे दिन देखे हैं इस घर में।'

'इसके कुँआरी के पेट में बच्चा पड़ गया था।'

'!!! ???'

'ऊँठों जैसे कद्दावर सात भाई। बहन ने क्या चाँद चढ़ाया। ग़रीबी में भी लड़की जवान हुई कोई। कहते हैं- गधी पर भी चार दिन हुन आता है। जवानी भी क्या ख़ूब चढ़ी। कपड़े फाड़कर बाहर आने को करे। हाथों में से निकल निकल जाए। भई, तेरा देना क्या। उम्र ही होती है, बच्चे। टिकती ही नहीं थी। शहीदों के गुरुद्वारे को गई, तेरी चाची और निक्की। संग्राद (संक्रांति) थी। शुक्र है महाराज का...मैं कभी न गई निक्की के साथ। अगर मैं साथ होती तो मेरा तो बुढ़िया ने जीना दूभर कर देना था। नन्द-भौजाई एक ही उम्र की। पहले भी जातीं थीं बाहर एक साथ। हमें अब क्या पता। बाहर कोई क्या करता है। क्या नहीं।'

'क्या हुआ गुरुद्वारे में?'

'गुरुद्वारे कौन कमबख्त गया। वे तो राह में ही रह गईं। घर को लौटकर आई चाची तेरी अकेली... रोते हुए। धांहे मारती। यह भी बच्ची ही थी। सत्तरह-अट्ठारह साल की होगी। अभी तो कोई बाल, न बच्चा। वैसे ही चाव था बाहर एक साथ जाने का। पूछा- क्या हो गया ? बोली : 'नि..क...की..अ' बस फिर तो पड़ गया स्यापा घर में।'

'फि... र... ?'

'चाची तेरी रोये जाए। हिचकियाँ भर-भर कर। पर बताए कुछ नहीं। भला चुप रहना कहाँ होता है ऐसे कसाई टब्बर में। जब लगे चार थप्पड़, फिर लगी बोलने। कहती- मैंने ख़ूब रोका। मिन्नतें की। ख़ूब धमकाया। 'वो' पीछे-पीछे आता था। मुड़कर देखा कि कहीं निकल गया होगा। पर कहाँ? मरजाना पीछा कर रहा था। फिर निक्की बोली - भाभी, मुझे पेशाब आया। मैं अभी आई। झूठ बोलती थी। कहती थी -अभी - आई बस। हटी नहीं। बड़ा रोका। हाथ छुड़ाकर खिसक गई। पगडंडी के दोनों तरफ ईखों के खेत। इतना गन्ना। बीच में खड़ा आदमी न दिखे। जा घुसी बीच में। मिनट। दो मिनट। आधा घंटा। वो लड़का भी न दिखे कहीं.... ।'

'फिर....?'

'फिर क्या? यह पगडंडी पर खड़ी आवाज़ें मार-मार कर हाँफ गई। इंतज़ार कर करके मुँह सूख गया। वहाँ कोई हो तो आवाज़ सुने। रोती- चीखती आ गई घर को .... घंटे डेढ़ घंटे और फिर निक्की भी आ गई घर को। मुँह लटकाए। घर में सब इकट्ठा हो गए।'

'पूछा नहीं फिर कहाँ चली गई थी ?'

'एक ने पूछ ? पूछ-पूछ कर लड़की का गूँ निकाल दिया। लड़की पैरों पर पानी न पड़ने दे। शीशम की सूखी जड़ों से पीटा तेरे बड़े ताए गोबिन्दे ने लड़की ने उफ्फ भी न की। न मुँह खोला। दो चार दिनों में बात आई-गई हो गई। पर लड़की की निगरानी पक्की हो गई। दिन रात बुढ़िया साथ। जब हो गया महीने से ऊपर। तड़के ही न किसी ने चाय, न पानी। ठंडी हुई बात फिर सुलग उठी। गोबिन्दा बोला- मैं इसके टुकड़े कर दूँगा। उसका क्या। उसने तो पाकिस्तान बनते समय दंगों में बड़े मुसलमान काटे थे। काटने की आदत पड़ी हुई थी। यहीं खेतों में उसने एक दिन तीन मुसलमान बूढ़ी औरतें मिन्नतें करतीं काट डाली थीं, चरी में। और पता नहीं कितनों के साथ मुँह काला किया पर अपने घर में सहन नहीं होता न। बरछा उठा लाया। हम सबको धक्के मारने लगा। हम लड़की को हाथ न लगाने दें। घूँघट निकाल कर आगे हो गई। भई इसका क्या पता, हत्यारे का। चल जो हो गया, सो हो गया। अब लड़की मार कर गले डालनी है ? बच्ची है। अगर लड़की मार दी तो शरीकों ने तो दाह संस्कार भी नहीं करने देना। पुलिस बुला लानी है। केस पड़ जाएगा सिर पर। मार-मार कर चित्तड़ लाल कर देंगे थाने में।'

'!!'

'बस जी, तू देख ले बेटा.... बस जी, एक ही बार ... वैसे कौन सा कोई किसी के पीछे-पीछे फिरता है... बस जी, बच्चा ठहर गया। हे राम... राम ... राम ... क्या बातें करनी। क्या बातें करनी। तू सो जा घड़ी भर। बाहर गरमी बहुत है। सो जा। दोपहर है। ऐसी बातें नहीं सुना करते... जा बाहर देखकर आ... तेरा बाप तो नहीं आ गया।'

'नहीं, बाहर तो नहीं है कोई।'

'फिर भाई निक्की सात महीने अन्दर रखी। छिपा-छिपाकर मर गए। तब कहाँ बेटा गाँवों में डागडर होते थे। और फिर किसे अपना नंग दिखाते फिरते। तेरा बाबा मिन्नतें करके अम्बाले से एक दाई को लाया। पैरों को हाथ लगाया। हमारी इज़्ज़त रखना। दाई को भी चार दिन अन्दर छिपा कर रखा। दाई की रानियों की तरह सेवा की। काढ़े दे देकर पेट मल-मलकर सात महीने का बच्चा बाहर निकाल दिया। लड़का था। सफेद दूध जैसा। मैंने भी देखा थोड़ा-सा। फूल जैसा। आँखें। हाथ पैर। सब कुछ बना हुआ था। करमों की बात है पुत। कइयों को मिलते नहीं। दुनिया कुएं-पोखर गंदे करती घूमती है। कौन फेंकता है अपने बच्चे को। ... पर तेरा बाबा और ताया तो ग़ुस्से में घूम रहे थे। कहें - लाओ, पकड़ाओ। फटाफट। कपड़े में लपेट कर। पंख जैसे का मुँह कपड़े से ढककर, दोनों बाप-बेटा गाँव से बाहर निकल गए। मुँह अँधेरे ही। दाई बोली- चलो जो भगवान् को मंजूर। कोई कहता- चलो, रब का जी है। दे दो किसी को। गोबिन्दा तेरा ताया कहे-मरना है किसी ने मेरे हाथ से ?'

'फिर दिया नहीं बच्चा, किसी बेऔलाद को ?'

'गाँव से बाहर दूर उजाड़ - बियाबान में किसी पोखर में फेंक आए। गोबिन्दा डरा हुआ रात को धीमी आवाज़ में बताता था। कहता था- रोते हुए को पोखर के किनारे छोड़ आए। कहे कितना सुन्दर था। फिर कहने लगा- हमने बड़ा कड़ा जिगरा करके उसको हाथों से छोड़ा और फिर मुड़कर पीछे नहीं देखा।'

'पोखर में पानी होगा? गन्दा गहरा ?'

'ना। कहते थे - पोखर तो सूखा था। तब कहाँ बारिश होती थी।'

'फिर वहाँ किसी को मिल गया होगा। और उसने उठाकर छाती से लगा लिया होगा। पाल लिया होगा।'

'कउए कुत्तों ने ....'

'अब तो कितना बड़ा हो गया होगा ? मुझसे भी बड़ा ?'

'पता नहीं पुत। मुझे तो इतनी-सी बात ही.... बस...' ....???'

'सो जा अब चुप होकर। ऐसी बातें नहीं सुना करते.....।' !!! ???'

000

एक बिजली का बल्ब और दो पतंगे

गोविंद गुंजन

आकाश से धीरे-धीरे शाम धरती पर उतर रही थी। उसका उतरना ऐसा नहीं था जैसे कोई पैराशूट से नीचे उतर रहा हो। जैसे देर तक आकाश में कोई पंछी धीरे-धीरे तैरते हुए अपनी मस्ती में नीचे की ओर झुकता है, वैसी ही पवित्र और उत्फुल्ल मस्ती के साथ संध्या मेरे आँगन में कब आ गई, यह पता ही नहीं चला। कमरे में रोशनी बिखेरते हुए बिजली के बल्ब पर अचानक सरसराहट भरी टकराहट ने मेरा ध्यान भंग कर दिया। मैंने देखा दो पतंगे बार-बार उस बल्ब से झपट-झपट कर लिपटने की कोशिश कर रहे थे। यह बिजली का बल्ब था, जिसकी ज्योति काँच के पारदर्शी ओढ़नी के अवगुंठन से झाँकती हुई मुस्करा रही थी। यह उन परवानों की शम्मा नहीं थी जो उन्हें पल भर में फूँक देती। यहाँ सिर टकराने से कोई फ़ायदा नहीं होना था, किन्तु इन दीवाने परवानों को कौन समझाएँ।

सच तो यह है कि पतंगे को कोई कभी समझा ही नहीं सकता। वह तो मतवाले हैं, प्रेम दीवाने हैं। मरण उनका त्यौहार है। जल जाना ही उनका आनंद है। यदि इस बल्ब पर सिर टकराते हुए पतंगे को थोड़ी बहुत समझ आ जाती तो शायद वह यह गीत गाते हुए चला जाता कि –'वक़्त ने किया क्या हँसी सितम, तुम रहे न तुम, हम रहे न हम।' अब दुनिया बहुत बदल गई है। शमाएँ अब सिर्फ शायरी की शोभा बन कर अतीत में खो गई हैं। अब बिजली का बल्ब हमारी दुनिया और हमारी महफ़िलों को रोशन करता है, परंतु परवाने तो आज भी हैं, और वैसे ही हैं। वे कहीं गए नहीं हैं, और न उनकी दीवागनी ही कुछ कम हुई है। वे कहीं गुम नहीं हुए। वे गुम हो भी नहीं सकते। वे प्रेम करने वाले हैं और प्रेम कभी अतीत नहीं होता। प्रेम सर्वदा सर्वकालिक होता है, इसे मिटाया नहीं जा सकता। परंतु क्या प्रेम से कभी सुख मिलता है ? सूरदास जी तो कह गए है कि –'प्रीति करी काहू न सुख लह्यो/ प्रीति पतंग करी दीपक सो/ आपन प्राण दह्यो।' फिर प्रेम की ऐसी गहरी चाहना किसलिए ? हर बार स्वयं को जलाना, अपना तन मन झुलसाना और फिर राख हो जाना, क्या यही प्रेम का प्रतिदान है ? क्या इसी प्रतिदान को पाने पतंगा जलता है ?

प्रेम सृष्टि में प्रत्येक प्राणी के लिए जीवन का आधार है। अपने प्रेमपात्र के लिए सौ-सौ दु:ख भी सहना पड़े तो भी वह दु:ख भी प्रेमार्थी हँसते हुए सह लेता है। प्रेम से विलग नहीं हुआ जा सकता, क्योंकि वह जीवन का उत्स है, और इस प्रेम की ख़ातिर हम जीने के लिए ही नहीं, मरने मारने के लिए भी उतारू हो जाते हैं। यही चुंबकीय शक्ति पतंगे को भी खींच लाती है। इस प्रेम दीवाने के लिए तो मरना ही जीना है, परंतु मनुष्य इस प्रेम को अपनी शर्तों पर जीवन में प्रवेश देता है। आदमी ने अपनी सभ्यता के विकास के साथ ही सुविधापूर्वक जीने के लिए एक और चीज़ सीखी थी, वह थी कृत्रिमता। आदमी ने धरती पर प्रत्येक वस्तु को कृत्रिम ढंग से बना कर प्रकृति को चुनौती दी। आदमी ने अपने वस्त्र बुने और फिर उसने अँधेरी गुफाओं से बाहर निकल कर कृत्रिम घोंसले का निर्माण किया। आदमी का घर क्या है, एक कृत्रिम घोंसला ही तो है। कृत्रिमता में सुविधा अधिक होती है और वह निरापद भी होता है।

प्राकृतिक चीज़ें ख़तरों से भरी होती हैं, और आदमी ख़तरों से खेलने का बेहद शौकीन होने के बावजूद कहीं भीतर से सुविधावादी भी है, इसलिए कृत्रिमता का विकास उसकी सभ्यता के प्रत्येक चरण के साथ होता गया। विज्ञान ने आदमी की हर दिशा में जैसी सहायता की है, वैसी ही कृत्रिमता के विकास में भी भरपूर सहायता की। विज्ञान मनुष्य की कामधेनु है। आदमी कल्पना करता गया और विज्ञान उसकी हर कल्पना को साकार करता गया। आज तो मनुष्य कृत्रिम ढंग से अनाज, फल, फूल आदि उत्पन्न करने तक ही सीमित नहीं रहा। वह कृत्रिम उपायों से नए जीवों को भी जन्म देने लगा है। सन 1997 में एक स्कॉटिश वैज्ञानिक डॉ. इयान विल्मुट तो क्लोनिंग की प्रक्रिया से एक भेड़ को जन्म दे कर नया इतिहास रच ही चुके थे। अब वैज्ञानिक कृत्रिम ढंग से कृत्रिम आदमी को भी बनाने की कोशिश में है। विज्ञान क्लोनिंग पर इसी दिशा में काम कर रहा है। विज्ञान विश्वामित्र की कला है, जो आदमी को ब्रह्म बना देना चाहती है। उसे सृष्टा और नियंता बना देना चाहती है, परंतु जीवन के सत्यों में से एक सत्य यह भी है कि आदमी प्रकृति को कभी पराजित नहीं कर पाया।

गोविंद गुंजन
18, सौमित्र नगर, सुभाष स्कूल के पीछे,
खंडवा (म.प्र.) 450 001
मोबाइल- 94253 42665
ईमेल- govindgunjan128@gmail.com

आदमी एक रहस्य का द्वार खोलता है तो उसके भीतर से सौ रहस्यमय द्वारों वाली एक भूलभुलैया आदमी की प्रतीक्षा करती हुई मिलती है। कृत्रिमता के सुविधावादी विकास के साथ-साथ मानवीय संबंधों और व्यवहारों में भी एक तरह की कृत्रिमता का प्रवेश शुरू हुआ, और अब आदमी एक नकली जीवन व्यापार में उलझ कर रह गया। दीया असली था तो उजाला भी असली था। आदमी खरा था तो आदमियत भी नकली न थी। बिजली के बल्ब से सिर टकराता हुआ पतंगा कह रहा था कि – शम्माएँ नकली होगीं परंतु परवाने तो आज भी असली हैं। आदमी सब कुछ नकली बना सकता है, परंतु प्रेम को नहीं। नकली प्रेम का ढोंग किया जा सकता है, अभिनय किया जा सकता है परंतु उसका वोल्टेज ही बता देगा कि इसमें प्रेम की रोशनी है भी या नहीं।

पृथ्वी पर प्रेम करने वाले सदा बने रहेंगे। प्रेम के विरुद्ध मनुष्य की हर स्वार्थी कोशिश के बाद भी प्रेम को मिटाया न जा सकेगा, क्योंकि एक बूँद सागर को कैसे मिटाएगी ? आदमी अपने उत्स को कैसे मिटाएगा ? अभी भी उन दो पतंगों का बल्ब से टकराना जारी है। इस टकराहट में एक शोर है। पतंगा शम्मा से टकराता नहीं, परंतु इस बल्ब से तो सिर्फ उसकी टकराहट ही हो सकती है। शम्मा से तो वह प्रेम से लिपटता है, गले लगता है, परंतु बिजली के बल्ब से तो उसका मिलन एक टकराहट बन कर रह जाता है। यह टकराहट कृत्रिमता का अनिवार्य परिणाम है। कृत्रिमता के आते ही प्रेम एक अवरोध, एक टकराहट तथा संघर्ष में स्वत: बदल जाता है। हम जिस दुनिया में जीते हैं उस दुनिया के अधिकतर संघर्ष और टकराहट के पीछे का यही यथार्थ है। दुनिया अस्तित्व के लिए संघर्ष के सिद्धांत पर चलती है। 'स्ट्रगल फॉर एग्जिस्टेंस' में किसी के लिए अपना सब कुछ त्याग देना और स्वयं को किसी पर न्यौछावर कर देना कहाँ होता है ? इस संघर्ष में रक्तपात, हिंसा, प्रतियोगिता, कब्जा करना, दूसरों का सब कुछ छीन लेना तो हो सकता है, पर इसमें उस प्रेम की सिद्धि कैसे होगी, जिसमें केवल मिलन है, डूबना है, लीन हो जाना है। जिसमें कोई द्वैत नहीं होता, संघर्ष नहीं होता जिसमें स्वयं के लिए जीना नहीं, प्रेमपात्र के लिए जीना मरना होता है?

बल्ब से निरंतर अपना सिर टकराते हुए पतंगे से पूछा जाता तो वह ग़ालिब की इस बात को अपनी भी आत्माभिव्यक्ति बताता। पता नहीं पतंगा कभी यह सच जान पाएगा कि नहीं परंतु उसका निरंतर बल्ब की चौखट पर दीवानों की तरह सिर पटखना मुझसे देखा नहीं जाता और फिर इस पतंगे का ही क्यों हमें तो हर प्रेम करने वाले का भी यही अंजाम दिखाई देता है। दोस्ती, प्रेम, स्नेह, परोपकार, दयालुता, सहजता, भोलापन और निश्छलता के बदले मनुष्य को भी कितने घाव मिलते हैं ? कहते हैं सबके भाग्य में जस नहीं होता। यह जस शब्द भी अजीब है, यह यश का छोटा या बड़ा कौन सा भाई है पता नहीं, परंतु इतना अवश्य है कि यह एक दुखी शब्द अवश्य है। इसमें मनुष्य की निराशा का चेहरा दिख जाता है। आख़िर शब्द भी दर्पण है। मानवीय भावनाएँ अमूर्त होती हैं, किन्तु उनसे हमारी पहचान शब्दों के आईने में ही होती है। शब्द सुखी –दुखी, उदास, और उत्फुल्ल सभी तरह के होते हैं। मनुष्य के मन में जैसी भावनाएँ उमड़ती हैं, वैसे ही रंग शब्दों में उतर आते हैं।

मैं उन परवानों के झिल्लीदार फड़फड़ाते पंखों को ग़ौर से देखता हूँ, जीव विज्ञान इस बात को नहीं मानता कि पतंगों का शम्मा के प्रति आकर्षण का कारण कोई प्रेम होता है। जीव-वैज्ञानिकों का कहना हैं कि तितलियाँ, पतंगे और अन्य उड़ने वाले कीट किसी एक स्थिर प्रकाश के केंद्र के आधार पर अपने उड़ने की दिशा को अपने जैविक कंपास से सुनिश्चित करते हैं। जैसे हमारे पुरानी समुद्री यात्राओं में जहाज़ों के मल्लाह ध्रुव तारे का उपयोग दिशा निर्धारित करने के लिए करते थे, वैसे ही रात में चंद्रमा को एक स्थिर प्रकाश केंद्र और दिन में सूर्य को एक स्थिर प्रकाश केंद्र की तरह मान कर ये उड़नशील कीट पतंगे भी अपनी दिशा को पहचानते हैं। हमारे दीये, शम्माएँ, और बिजली के बल्बों से उन्हें एक स्थिर प्रकाश केंद्र का भ्रम होता है, और अपनी उड़ने की दिशा की तलाश करने के चक्कर में वे मौत के मुँह में चले जाते हैं।

हमारे काव्य के सत्य प्रतीकात्मक होते हैं। विज्ञान के सत्य तथ्यात्मक, किन्तु अमूर्त सत्य जैसे प्रेम के तथ्य को प्रकट करने के लिए प्रतीक और बिंबों का उपयोग करना पड़ता है। विज्ञान तो प्रेम को भी केवल कुछ विशेष तरह के हारमोंस की रासायनिक क्रिया ही बताता है, किन्तु यह स्थूल सत्य होते हुए भी प्रेम की गहन अमूर्त अनुभूतियों को समझने-समझाने में ये स्थूल सत्य काम नहीं आते। जहाँ विज्ञान की सीमा ख़त्म होती है, वहाँ से काव्य की सीमा प्रारंभ होती है।

मैं इन विचारों में डूबता उतरता बैठा हूँ और उधर छत पर पूर्णिमा का चंद्रमा उतर आया है। वह थकाहारा पतंगा पता नहीं कहाँ चला गया है। मुझे नहीं पता इस समय कोई चकोर भी उस पतंगे-सा पागल हो कर इस चंद्रमा को टकटकी लगा कर निहारने बैठ गया है या नहीं, परंतु कुमुदिनी के फूल अवश्य वनों में खिल गए होंगें। कुमुदिनी भी राका रजनी में ही खिलती है, सागर भी अपनी शाशिप्रिया से मिलने के लिए ठाठे मारने लगा होगा।

केवल एक पतंगा ही पागल नहीं है, इस प्रेम की मदिरा को पी कर सभी पागल हो जाते हैं। पागल होते ही जो पहला लाभ मिलता है वह है कृत्रिमता से मुक्ति। पागलपन में आदमी अपने कपड़े फाड़ कर चीथड़े-चीथड़े कर देता है और प्रेमी अपना गरबा चाक कर लेते हैं। कपड़े फाड़ देना कृत्रिमता के विरुद्ध एक उग्र क्रांति का शंखनाद है। प्रेम में निछावर हो कर किसी के चरणों को चूम लेने की हसरत का ही प्रभाव है कि प्रेमी अपनी बलि देकर जिस भूमि पर गिरते हैं, उस पर कोसों तक मेहँदी ही मेहँदी उग आया करती है। मिट-मिट कर पिस-पिस कर अपने प्यार का रंग बिखेरती हिना आख़िर एक दिन अपने प्रियतम के चरण चूम ही लेती है। बकौल ग़ालिब –'महशदे आशिक से कोसों तक जो उगती है हिना / किस कदर यारब, हलाके हसरते पाबूस था।' (महशदे आशिक = प्रेमी की बलिवेदी। हलाके हसरते पाबूस = पैर चूम लेने की अभिलाषा का मारा हुआ)

000

नृत्य और अनुष्ठान

विनय उपाध्याय

विनय उपाध्याय
एम एक्स 135, ई-7, अरेरा कॉलोनी
भोपाल 462016 मप्र
मोबाइल- 9826392428
ईमेल- vinay.srujan@gmail.com

वादियों में गरबों की गमक है। गली-मोहल्ले के मंडपों से लेकर कारोबारी आयोजकों के विशाल पाँडालों में उठती लय-ताल पर लचकती देह गतियों में नृत्य आनंद का उत्सव मना रहा है। परंपरा और आधुनिकता की हमजोली में संस्कृति अपनी नई भंगिमाओं का ज्वार लिए आस्था के नए अर्थ तलाश रही है। इस कुहासे से गुज़रते हुए यकायक उस परंपरा की ओर ध्यान जाता है जहाँ नृत्य-संगीत या अन्य कलाएँ अनुष्ठान की गरिमा के साथ जीवंत होती हैं। नवरात्रि के निमित्त अगर नृत्य पर ठहर कर सोचें तो मनुष्य के आंतरिक आनंद में प्रकृति और संस्कृति की लय और उसके लालित्य को एक अद्‌भुत रचना में साकार होता हम पाते हैं। आचार्य रजनीश ओशो के अनुसार नृत्य की एक ऐसी घड़ी आती है जब उसके आरोह-अवरोह में शरीर, मन और आत्मा एक रेखा में जुड़ जाते हैं। उस एक क्षण की घटना में अद्‌भुत चमत्कार होता है। वह पल अनंत है। वही मोक्ष है। इस अवस्था से बड़ा कोई दूसरा आनंद नहीं। ओशो के इस अनुभवजन्य सत्य पर एकाग्र होकर जब हम नवरात्रि के आधुनिक ग़ुबार में थिरकती नौजवान पीढ़ी के विशाल समूह को देखते हैं तो वहाँ उस नृत्य की खोज अधूरी है जिसे अनुष्ठान की तरह, सच्ची भक्ति की तरह या अंतर्लय के जागरण की कामना की तरह पूर्वजों ने जिया या स्वीकार किया। दिलचस्प यह कि भारत की रंगारंग संस्कृति को जिन साक्ष्यों के आधार पर पहचाना जा सकता है उनमें नृत्य सबसे प्रमुख विधा मानी जाती है। इसे लोक और शास्त्र ने समान भाव से स्वीकार किया। सरहदों तक फैले प्रदेशों के विस्तार में नृत्य अपनी मनोहारी बनक लिए विविधा का संसार बसाए है। उसका ताना-बाना अपने अंचल की जलवायु से तैयार हुआ। उसका रूप-रंग अपनी प्रकृति से ही नूर पाता है। हज़ारों नृत्य अपनी संरचना में इसी मौलिकता का सुन्दर अनुवाद हैं।

सतही निगाहों के रोमांच से परे इन नृत्यों के साथ जुड़े संदर्भों की गहराई का अध्ययन करें तो

अनेक नृत्यों में अनुष्ठान की पवित्रता का बोध होता है लेकिन हर नृत्य के मूल में अंतत: आनंद है। मन के रंजन के लिए नृत्य का जो रूपगत ढाँचा तैयार किया गया उसमें भी कमोबेश लालित्य की वो परंपरा है जिसे अपने कौशल से लोक ने हासिल किया। इस अनूठी साज-सज्जा के हर प्रतीक या आयाम में आस्था और श्रद्धा है। शुभ और मंगल का भाव है। जीवन के आदर्श मूल्यों की प्रेरणा है। कल्याण की कामना है।

यहाँ केरल की याद आती है। सदियों की सांस्कृतिक विरासत को इस राज्य का लोक समुदाय आज भी अपने जीवन, कर्म और कलाओं में जीता है। 'तेय्यम' एक ऐसा ही पारंपरिक नृत्य है। इस नृत्य पर शोधार्थी ललित सिंह ने कुछ उन तथ्यों को समेटा है जिन्हें जानकर केरल की लोक यात्रा और उसके सांस्कृतिक पड़ावों को जानकर भला लगता है। 'तेय्यम' यानी दैवम (देव) अथवा ईश्वर। इस नृत्य में नर्तक देवी-देवताओं के तौर पर अपनी इच्छा और कल्पना के अनुकूल ईश्वरीय वेष-भूषा (तड़क-भड़क युक्त) पहन कर तथा सिर पर मुकुट धारण करके चपल गति से नर्तन करता है। 'तेय्यम' को कालियाट्टम (काली नृत्य) भी कहते हैं। क्योंकि उस काल में काली जैसी उग्रदेवी के तेय्यम प्रमुख हुआ करते थे। अपने जीवन-काल में कमाल की करामाते दिखाकर 'वीर' बने हुए व्यक्तियों के भी तेय्यम बनाने की प्रथा प्रचलित थी। तेय्यम द्रविड़ों का कला रूप है। इसमें मलयर, पाणन, वण्णान, वेलर जैसी जातियों का विशेष योगदान होता है। आस्था का भाव इतना गहरा है यहाँ, कि तेय्यम के कलाकार को भगवान् का प्रतिरूप माना जाता है। जिससे लोग उसकी प्रार्थना करते हैं तथा वह सभी को सुख और समृद्धि का आशीर्वाद देता है। तेय्यम देवता की पूजा के लिए मुर्गे की बलि देने का भी रिवाज़ है। इस कारण ब्राह्मणों को तेय्यम करने की अनुमति नहीं है। आमतौर पर थरवाडु लोग ही तेय्यम करते हैं। कालांतर में ब्राह्मणों ने भी मन्दिरों में तेय्यम देवता की मूर्तियों को स्थापित किया। इन तीर्थस्थलों में चामुण्डी, कुराठी, विष्णुमूर्ति, सोमेश्वरी और राकेश्वरी का आह्वान किया जाता है। इसमें देवी-देवताओं के अलावा आत्मा पूजन, नाग पूजा, कुल पूजा, वृक्ष पूजा, पशु पूजा का भी प्रचलन है।

तेय्यम केरल का लोक नृत्य है जिसमें मुखौटों का प्रयोग अनुष्ठानिक रूप में किया जाता है। विशेष रूप से दिसंबर से अप्रैल के महीनों में कन्नूर और कासरकोड के अनेक मन्दिरों में प्रदर्शित किया जाता है। करिवेल्लूर, निलेश्वरम, कुरुमात्तूर, चेरुकुन्नु, ऐषोम और कुन्नत्तूरपड़ी उत्तरी मालाबार के ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ तेय्यम का प्रदर्शन देखने के लिए भारी संख्या में जनसमुदाय एकत्रित होता है। कर्नाटक में तुलुनाडु के क्षेत्र में भी इसका रिवाज़ है। तेय्यम का स्वरूप धार्मिक है जिसमें परम्पराओं, पूर्वजों तथा नायकों के जीवनवृत्तों और शक्तियों को अनुष्ठानिक नृत्य के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

13वीं शताब्दी में हुसैला राजवंश के विष्णुवर्धन के समय तुलुआ क्षेत्र में तेय्यम लोकप्रिय नृत्य अनुष्ठान था। लोकश्रुति के अनुसार तेय्यम के उद्भावक के रूप में मनक्काडन गुरुक्कल को माना जाता है। गुरुक्कल वन्नान जाति से संबंधित एक उच्च श्रेणी के कलाकार थे। चिरक्कल प्रदेश के राजा ने एक बार उनकी दिव्य शक्तियों की परीक्षा लेने के लिए अपनी राज्य सभा में बुलवाया। राज्य सभा की तरफ़ यात्रा के दौरान राजा ने उनके लिए कई रुकावटें पैदा की लेकिन गुरुक्कल प्रत्येक रुकावट को दूर कर उनकी सभा में उपस्थित हो गए। उनकी दिव्य शक्तियों से प्रभावित होकर राजा ने उन्हें कुछ देवताओं के परिधान बनाने की ज़िम्मेदारी सौंप दी, जिसका प्रयोग सुबह नृत्य के अनुष्ठान में किया जाना था। गुरुक्कल ने सूर्योदय से पहले ही 35 अलग-अलग तरह की मनमोहक पोशाकें तैयार कर लीं। उनसे प्रभावित होकर राजा ने उन्हें मनक्काडन की उपाधि से सम्मानित किया। वर्तमान में उनके द्वारा प्रचलित शैली से तैयार की गई पोशाकें ही तेय्यम कलाकारों द्वारा पहनी जाती है।

'तेय्यम' प्रदर्शन खुला रंगमंच की तरह मन्दिर के सामने के अहाते में होता है। उस ज़मीन को 'काव' कहते हैं। दर्शक भक्ति भाव से चारों ओर बैठ कर प्रदर्शन देखते हैं। कलाकार अपनी वस्त्र सज्जा तथा रंग सज्जा स्वयं प्राकृतिक रूप से तैयार करते हैं। कुछ सामग्री आयोजक द्वारा प्रदान की जाती है। तेय्यम में मुख्य प्रस्तुति से पहले स्तुतिगान स्वरूप तोट्टम का प्रदर्शन किया जाता है। तोट्टम पात्र तेय्यम की थोड़ी बहुत वस्त्र सज्जा और रंग सज्जा का प्रयोग करके अनुष्ठानिक शुरुआत करता है। वह नृत्य करते हुए मन्दिर की परिक्रमा करता है और देव प्रतिमा में प्रसाद चढ़ाता है। इसके बाद यह मान लिया जाता है कि उसमें देव प्रतिरूप समाहित हो गया है। तेय्यम कलाकार की मुख सज्जा बहुत कलात्मक तरीक़े की जाती है। वह एक तरह से लचीला मुखौटा (पेंटेड फेस) होता है जो ऊपर से धारण करने की बजाए मुख पर ही बना दिये जाते हैं। उसमें खींची गई हर एक लकीर का अपना महत्त्व होता है। वह पात्र के चरित्र और भाव के अनुसार चेहरे पर बनाए जाते हैं। तेय्यम के कुछ पात्र ऐसे भी हैं जो ऊपर से मुखौटे धारण करते हैं। इनमें गुलिकन तेय्यम, पोट्टन तेय्यम, मट्टुल तेय्यम के पात्र बड़े-बड़े आकार के रौद्र मुखौटे धारण करते हैं।

तेय्यम की अनेक किस्में होती है। इनमें प्रमुख रक्ता चामुण्डी, करि चामुण्डी, मुच्चिलोट्टू, भगवती, वयनाट्टू, कुलावेन, गुलिकन और पोट्टम हैं। पोशाकें लाल रंग की तथा रूप सज्जा के लिए लाल, काले और सफ़ेद रंगों का प्रयोग किया जाता है। इनमें मुकुट का बड़ा महत्त्व होता है जो देव प्रतिमा के सामने पहने जाते हैं। ये इतने बड़े आकार के होते हैं कि भय और भव्यता प्रदर्शित करते हैं।

नृत्य और अनुष्ठान की मिली-जुली क्रियाएँ बारह से चौबीस घंटे तक चलती है। तेय्यम नर्तक प्रदर्शन के दौरान दर्शकों पर चावल छिड़कता है जो शुभ माना जाता है। दर्शक मन्नते भी माँगते हैं। तेय्यम मनुष्य, प्रकृति और देवता के बीच एक संवाद का माध्यम बनता है।

000

समझदारों की दुनिया में वह पग्गल जिनेश्वर....

ज्योति जैन

वह गर्मी की एक दोपहर थी। भर गर्मी में घर के कोने पर लगे हुए पेड़ के नीचे वह आकर बैठ गया। मुझे दरवाज़े के कोने में कुछ आहट हुई तो मैंने किचन की खिड़की से झाँककर देखा। पता नहीं कौन आदमी है। अजीब-सा था। लेकिन फिर भी गर्मी इतनी तेज़ थी कि मुझसे रहा नहीं गया और सौजन्यवश मैं बाहर चली गई। देखा तो एक बहुत ही फटेहाल आदमी था। निकर पहनी हुई थी। पैरों में कोई बहुत ही पुराने जूते और एक शर्ट पहना हुआ था। बाल बहुत छोटे, लगभग गंजा ही, मानों बालों का मेंटेनेंस न करना पड़े इसलिए सिर में मशीन चलवा दी, आँखें और मुँह हल्का सा टेढ़ापन लिए हुए था। जैसे विशिष्ट बच्चे होते हैं उस तरह का। मुझे देखते ही उसने अपने दोनों हाथ जोड़ दिए।

भाभीजी नाराज़ मत होना...। मैं कुछ चुराने नहीं आया। (मैंने अंदाज़ा लगाया कि आमतौर पर ऐसे लोगों को सभ्य लोग चोर ही समझ लेते हैं, शायद इसीलिए उसने ऐसा कहा होगा।)

कुछ ऐसे अंदाज़ में उसने कहा कि मैं हँस पड़ी। मैंने कहा- नहीं नाराज़ क्यों होऊँगी?

वह फिर बोला- भाभीजी गर्मी बहुत थी। इसलिए पेड़ के नीचे बैठ गया।

मैंने सहज भाव से पूछा- पानी पिओगे?

उसने तुरंत हाँ बोला।

मैं अंदर आई और पानी लेकर गई। पहले तो उसने तृप्त होकर पानी पिया और फिर कहा कि कोई काम हो तो बता दो भाभीजी। मैं सब कर दूँगा।

मैंने कहा- क्या कर दोगे।

कहने लगा छत झाड़ दूँगा। जहाँ बोलोगे सफाई कर दूँगा।

मैंने कहा बाप रे...! इतनी गर्मी में छत झाड़ दोगे।

नहीं भाभीजी, थोड़ा ठंडा होगा फिर आकर झाड़ दूँगा। आपकी जो मर्ज़ी हो पैसे दे देना।

मैंने कहा- ठीक है शाम को छह बजे तक आ जाओ।

थोड़ी देर वह बैठा और फिर चला गया।

ज्योति जैन
1432/24, नंदानगर
इन्दौर-452011, मप्र
मोबाइल- 930031812

मुझे बिल्कुल उम्मीद नहीं थी कि वह शाम को आएगा। लेकिन वह आया। दरवाज़ा बजाया। मैंने फिर झाँककर देखा तो वही खड़ा था।

भाभीजी, आपने बोला था ना छत झाड़ना है।

मैंने कहा- हाँ... हाँ झाड़ दो।

और उसे मैंने झाड़ू सुपड़ा देते हुए छत का रास्ता दिखाया। जाने से पहले मैंने उससे पूछा क्या नाम है..?

उसने कहा जिनेश्वर है भाभी जी... फिर हो...हो करके अजीब से अंदाज़ में हँसते हुए कहा-पर सब पग्गल बोलते हैं भाभीजी।

मुझे थोड़ा बुरा लगा। लेकिन प्रकट में मैंने कहा-अच्छा ठीक है.... कहते हुए मैंने अपनी काम करने वाली मेड को उसके साथ ऊपर भेजा और कहा सब कुछ अच्छे से सफाई करवा लो।

मैंने मार्क किया कि जब वह सीढ़ियाँ चढ़ रहा था तो उसके पैरों में कुछ तिरछापन था। मुझे सहज ही दया हो आई, अरे मैंने कहाँ ऐसे काम का बोल दिया।

फिर मैंने उसके लिए नींबू पानी बनाया और सफाई कैसी हुई यह देखने के लिए छत पर चली गई। मैंने देखा उसने बहुत अच्छे तरीक़े से पूरा बैठ-बैठकर झाड़ू काढ़ी और सफाई की। मैंने उसे नींबू पानी दिया और वह ख़ुश हो गया। फिर धीरे से बोला भाभीजी कुछ मिठाई हो तो दो ना खाने को और फिर हो... हो कहकर हँसने लगा।

मुझे भी हँसी आ गई। जिस तरह से उसने मिठाई की डिमांड की थी मुझे लगा कोई पेटू बच्चा है। मैंने कहा अच्छा नीचे चलो मैं मिठाई देती हूँ।

उस दिन मुझे पता चला कि मिठाई उसे बेहद पसंद है।

नीचे आए। मैंने उसे मिठाई दी और उसे 50 रुपये दिए। हालाँकि मुझे बाद में लगा कि उस पूरी छत की सफाई कराने के 50 रुपये बहुत कम हैं। और मुझे थोड़ी सी गिल्ट हुई।

लेकिन मैंने देखा वह तीन-चार दिन बाद फिर आया। कुछ काम हो तो बताओ भाभीजी मैं सब कर दूँगा।

मैंने कहा- नहीं.. काम तो अभी नहीं है। लेकिन यह 50 रुपये और रख लो।

नहीं.. नहीं भाभीजी मैं भीख नहीं लेता। उसने अपने टेढ़े-मेढ़े हाथ जोड़ते हुए कहा।

मैंने कुछ शर्मिंदा होते हुए कहा- यह भीख नहीं है। उस दिन पैसे कम दिए थे। यह रख लो।

यह सिलसिला करीब 6-7 माह तक चलता रहा। एक दिन अचानक वह दोपहर में घर आया।

मैंने पूछा क्या बात है...?

उसने पहले इधर-उधर देखा मानों तसल्ली करना चाहता था कि आसपास कोई है तो नहीं...? कोई सुन तो नहीं रहा..?

मैंने फिर पूछा क्या बात है जिनेश्वर...?

कुछ नहीं भाभीजी वो मेरे पास पैसे हैं तो आप रख लो...।

मैं थोड़ी पशोपेश में थी। किसके पैसे और मैं कैसे रख लूँ?

उसने फिर कहा- मेरे पास थोड़े पैसे हैं दुनिया बहुत ख़राब है। लोग चुरा लेते हैं। चाकू मार देते हैं। पैसे छीन लेते हैं। और फिर दोनों हाथ जोड़कर बोला भाभीजी आप पैसे रख लो।

मुझे समझ नहीं आया क्या करूँ?

मैंने अपने ससुर जी से बात की। उन्होंने भी यह कहा कि- ज़रूरतमंद है कहाँ जाएगा, होंगे उसके पास 5-50 रुपये जितने भी.. रख लो।

मैंने कहा ठीक है दे दो।

वह वहीं बैठ गया। पहले मैंने उसे पानी पिलाया, चाय पिलाई।

उसने तृप्त होकर चाय पी और फिर धीरे से खड़ा हुआ।

मैंने जैसे ही उसे पैसे निकालते हुए देखा मुझे बहुत हँसी आई। क्योंकि उसने अपनी बनियान के अंदर पता नहीं कहाँ से कुछ घड़ी किए हुए नोट निकाले। बहुत सारे फोल्ड किए हुए नोट थे। उसने वे निकाले और मेरे सामने रख दिए। फिर निकर की बेल्ट में से पता नहीं कहाँ से घड़ी किए हुए नोट फिर निकाले और मेरे सामने रख दिए। मैं मंद-मंद मुस्कराती रही, क्योंकि वह जिस तरह से नोट निकाल रहा था, मुझे ऐसा लग रहा था जैसे मैं कोई जादू देख रही हूँ। जादूगर जादू की छड़ी घुमा रहा है और कहाँ-कहाँ से नोट निकलते जा रहे हैं। फटे-टूटे नोट भी थे। कुछ अच्छे नोट भी थे। उसने बताया कि वह लोगों के घरों में काम करता है और वे लोग जो बदले में पैसे देते हैं वह बचा लेता हूँ।

मैंने पूछा- खाना कैसे खाते हो...? भूखे तो नहीं रहते?

नहीं भाभीजी, साईं बाबा मंदिर के बाहर लोग खाना देते हैं और वहीं मैं खा लेता हूँ।

मुझे थोड़ी तसल्ली हुई कि कम से कम वह भूखा तो नहीं रहता।

तो उसने खूब सारे नोट निकालकर रखे। मैं जब जब गिनने बैठी तो.... हे भगवान्..! वे 14 हज़ार रुपये थे। उसके पास 14 हज़ार रुपये होना बहुत बड़ी बात थी। लेकिन वह सारा पैसा उसकी मेहनत का था जो वह जाने कब से जमा कर रहा था। उन रुपयों में सबसे अधिक 10 और 20 के नोट थे फिर 50 के नोट कुछ 100 के और दो या तीन के नोट 500 के थे। मैंने सारा पैसा गिनकर उसे बताया और उसका नाम डालकर एक लिफाफे में लिख दिया जिनेश्वर के पैसे।

उस बात को करीब 2 महीने बीते होंगे और वह फिर आया और फिर कुछ रुपये रखकर चला गया। इस बार वे रुपये क़रीब 1700 थे। मैंने वह भी उसमें डाल दिए। लेकिन 15 दिन बीते और उसके साथ एक आदमी आया उसने बताया कि वह उसका भाई है और वह गाँव से आया है तो वे पैसे दे दो। अब मेरा माथा ठनका...।

बेचारे इस भोले-भाले आदमी की मेहनत की कमाई है। कहाँ भाई आ गया लेने।

मैं थोड़ी नाराज़ हुई। क्यों तुम्हारा पैसा इसको दे रहे हो?

तो उसका भाई बोला कि मैडम मैं इसको अपने साथ गाँव लेकर जा रहा हूँ। भाई है मेरा। गाँव ले जाकर मैं इसका इलाज करवाऊँगा, तो पैसे दे दो। मेरे सामने और कोई रास्ता नहीं था मैंने लिफ़ाफ़ा ला करके उसके हाथ में पकड़ा दिया। उसके भाई ने लपककर पैसे लिए और वे लोग चले गए। मुझे बहुत

अफसोस हो रहा था कि बेचारा अधपगला आदमी है। उसकी सारी कमाई भाई लेकर रफू चक्कर हो गया।

ख़ैर वह मेरे दिमाग़ से निकल गया। गाहे-बगाहे उसकी याद आ जाती थी।

करीब 8 महीने निकले होंगे कि बाहर फिर आवाज़ आई भाभीजी..भाभीजी।

उसका टिपिकल टोन था। बोलने का भी और दरवाज़ा बजाने का भी। मैंने देखा तो सचमुच जिनेश्वर ही था।

मैंने कहा तुमको भगा दिया भाई ने?

बोला- भाई छोड़कर गया है।

हाँ, तो... मैंने कहा- यही तो मैं कह रही थी कि तुम्हारे सारे पैसे भी ले लिए और तुमको भी भगा दिया।

नहीं भाभीजी... उसने मेरा इलाज करवाया है।

अच्छा क्या इलाज करवाया? मैंने पूछा।

वह किसी बड़े डॉक्टर के पास ले गया था।

मुझे हँसी आई। इंदौर के इतने बड़े डॉक्टरों को छोड़कर वह अपने गाँव के डॉक्टर के पास क्या दिखाने ले गया। वह कुछ बोला नहीं।

उसने फिर किसी बच्चे की तरह मुझसे मिठाई की माँग की। घर में लड्डू रखे थे। वह मैंने उसे दे दिए और फिर वह चला गया।

जाते-जाते बोला- कुछ काम हो तो बोलना भाभीजी...।

मैंने कहा हाँ बताती हूँ। चार-पाँच दिन बाद आ जाना।

वह चला गया और चार-पाँच दिन बाद फिर आ धमका। मैंने फिर उससे थोड़ा बहुत सफाई का काम करवाया।

और छह महीने निकले होंगे कि वह फिर आ गया और बोला भाभीजी यह कुछ पैसे रख लो। मैं इस बार चिढ़ गई।

तुम इतनी मेहनत से पैसे जमा करते हो और अपने भाई को दे देते हो।

नहीं भाभीजी, अब नहीं दूँगा।

और वह फिर पैसे रखकर गया। इस बार शायद लोगों ने उसे कुछ अधिक पैसे दिए होंगे। पता नहीं, लेकिन इस बार 16 हज़ार और 400-450 रुपये उसके इकट्ठे हुए थे। मैंने फिर वही लिफ़ाफ़े पर उसका नाम लिखकर रुपये रख दिए। थोड़े-थोड़े दिन में वह आता रहता।

भाभीजी मेरे पैसों का ध्यान रखना। आप गुस्सा मत होना। फिर हाथ जोड़ता, दुनिया बहुत ख़राब है..पैसा लूट लेती है... चक्कू मार देते हैं। इसलिए मैं अपने पास नहीं रखता हूँ।

मैंने कहा तुम बहुत अच्छा करते हो। फिर सर्दी आई तो मैंने उससे पूछा स्वेटर नहीं है तुम्हारे पास तो स्वेटर ला दूँ।

बोला नहीं भाभीजी, मेरे पास है और ठंड लगती है तो मैं पहन लेता हूँ।

कभी-कभी ऐसा लगता है उसे समझ नहीं है और कभी-कभी लगता है कि वह बहुत समझदार है। कभी लगता है इसका कोई पेंच हिला हुआ है। उसे एकदम से समझना थोड़ा सा मुश्किल लगता था।

दो-तीन महीने बीतते उसके गाँव से फिर उसका भाई आ गया। मेरा फिर माथा ठनका।

जिनेश्वर बोला- भाभीजी वे पैसे दे दो भाई के साथ गाँव जाकर अपना इलाज करवाऊँगा।

मैंने कहा- तुम हर बार यही करते हो। अब तो मेरे पास पैसे लेकर मत आना। वह अंदर आया मैंने उसको बोला कि तुम क्यों हर बार ऐसा करते हो?

इस बार वह बोला भाभीजी आप गुस्सा मत करो। आप पूरे पैसे मत दो। आधे दो। आधे अपने पास रख लो।

मुझे एक क्षण में सारी बातें समझ में आईं। मैंने आधे पैसे रखकर उसके भाई को आधे पैसे दे दिए। भाई पैसे ले गया, उसे भी ले गया। लेकिन एक महीने बाद ही जिनेश्वर मेरा दरवाज़ा फिर खटखटा रहा था।

मैंने कहा क्या हुआ, वापस आ गया?

तो कहने लगा हाँ, भाई ने भगा दिया। जब ही तो मैंने आपसे कहा था पूरे पैसे मत दो...। और हो हो हो हो...करके हँसने लगा।

वह सच में पग्गल नहीं था। वह गेलिया दिखने वाला जिनेश्वर सच में समझदार था, जो दुनियादारी को समझ चुका था।

000

ग़ज़ल

ग़ज़ल

जय चक्रवर्ती

ये कौन है जो जल में है वायु में, गगन में
पृथ्वी के क्षेत्रफल में सागर के आयतन में
कुछ और है ज़ुबाँ पर कुछ और उसके मन में
क्या जाने कब खिला दे गुल कौन-सा चमन में
लौटे नहीं परिंदे फिर नीड़ में दुबारा
इक बार पंख पाकर जब से उड़े गगन में
इक नज़्म ज़िंदगी की लिक्खी थी ज़िंदगी ने
गुम हो गई अधूरी कुछ अनकही–सी मन में
ये कौन-सी जगह है वापस चलो यहाँ से
दम घुट रहा है मेरा इन क़हक़हों के वन में
आवाज़ भौंकने की केवल बची है अब तो
कुछ श्वान आ गए हैं जिस रोज़ से सदन में
कपड़े बदल बदल के हर वक़्त घर से निकला
नंगा दिखा मगर वो हर एक पैरहन में

000

बज़्म में मौजूद थे उस रोज़ तो हम भी मगर
राम जाने क्यों नहीं हम आपको आए नज़र
घूमती औलाद दिन-भर ओढ़कर आवारगी
सोचिए, क्यों आपकी थी हर नसीहत बेअसर
हर किसी में सिर्फ कमियाँ ही दिखी हैं आपको
देखिएगा एक दिन अपने भी अंदर झाँककर
ज़िंदगी क्या चीज़ है उस रोज़ आएगा समझ
ये जवानी का नशा जिस रोज़ जाएगा उतर
आप जिनकी इक नज़र पर ज़िंदगी भर थे फिदा
भूल से ही काश! वो भी देख लेते इक नज़र
इसलिए कायम रहीं हरदम दिलों की दूरियाँ
बदगुमानी कुछ इधर थी बदगुमानी कुछ उधर

000

जय चक्रवर्ती
एम.1/149, जवाहरविहार, रायबरेली-229010
मोबाइल- 9839665691
ईमेल- jai.chakrawarti@gmail.com

बड़ा चोर: छोटा चोर

डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल

'रामलुभाया जी, आप तो बड़े धुरंधर अख़बार वाले हो, आपने तो वह कहावत सैकड़ों बार सुनी होगी, जिसमें कहा गया है कि 'नामी चोर मारा जाए, नामी बनिया खा कमाए।' इससे पहले कि हम लल्लन चोर की इस बात का जवाब देते, वह अपनी ज़ुबान को बिना लगाम दिए आगे बोला, 'आप तो रामलुभाया जी बड़े धुरंधर अख़बार वाले हो, इस कहावत को बदलकर अब यों कर दो, 'नामी नेता खा कमाए, नामी चोर मारा जाए।' क्योंकि अब किसी बनिए का नामी-गिरामी होना ख़तरे से ख़ाली नहीं रहा है, किसी भी समय बिक्रीकर वालों का छापा पड़ सकता है, पुलिसवाले आकर धींगामुश्ती कर सकते हैं, सैनेटरी इस्पैक्टर कभी भी आकर गर्दन ऐंठ सकता है, लालाजी की। हम जैसे चोर तो घात लगाए बैठे ही रहते है कि कब छत काटें और कब माल साफ़ करें।'

बात तो काफी पते की कही थी, लल्लन ने। हमने उत्तर देते हुए कहा, 'तुम्हारा सुझाव एकदम बढ़िया है, लल्लन। नामी बनिया अब इतना नहीं खाता-कमाता, जितने ख़तरे झेलता है वह जान के भी और माल के भी, इसीलिए तो बड़े-बूढ़े कह गए हैं, 'खाक पड़े ऐसे सोने पर, जिससे टूटें बान।' जान जोखिम में डालकर धन कमाया तो क्या कमाया, हाँ नामी नेता की बात अलग है, उसे न तो चोर का खटका है और न पुलिस का, न इंस्पैक्टर का, न कलक्टर का। नामी नेता खा कमाएँ, इतना बढ़िया संशोधन किया है तुमने फत्ते ख़ाँ इस पुरानी कहावत में, कि मज़ा आ गया। अब हमें विश्वास हो गया कि तुम यदि नामी चोर न होते तो बड़े नामी-गिरामी लेखक हो सकते थे।'

हमने देखा कि फत्ते थोड़ी गौरव-भरी हँसी हँसकर कुछ सोचने-विचारने की मुद्रा में आ गया है। मुहल्ले /का लल्लन इस क्षेत्र में चोरों का सरगना माना जाता है। पुलिस यह मानकर चलती है कि क्षेत्र में जहाँ-जहाँ भी चोरी की घटनाएँ होती हैं उनमें से लगभग अस्सी प्रतिशत घटनाओं में लल्लन का हाथ अवश्य होता है, पर हम लल्लन के हाथ होने की बात पूरी तरह सच नहीं मानते, हाँ चोरी की अस्सी प्रतिशत घटनाओं में उसका दिमाग़ होता हो तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। गप्प मारने के लिए कभी-कभी वह हमारे पास आ बैठता है और अक्सर ऐसी फुलझड़ी छोड़ जाता है कि हम उसके विवेक की दाद दिए बिना रह नहीं पाते। लेकिन हमारे इस आकलन पर कि यदि वह नामी चोर न होता तो कोई बड़ा नामी-गिरामी लेखक-कवि हो गया होता, हमने देखा कि लल्लन थोड़ा सटपटा गया है। पर जैसे ही उसने हमारी बात सुनी, वह क्षण-भर के लिए

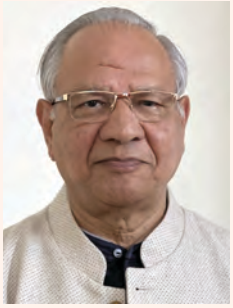

डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल
संपादक- शोध दिशा, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर (उ.प्र.) 246701
मोबाइल -7838090732
ईमेल-hindisahityaniketan@gmail.com

सोच-विचार में डूब गया। फिर थोड़ा सँभलते हुए बोला, 'पर रामलुभाया जी, चोर तो अपन को तब भी रहना ही था। कितने ही कवि-लेखक हमसे भी बड़े चोर हैं, वे चोरी भी करते हैं और सीनाज़ोरी भी।'

हमने कहा, 'तुम बात तो लगभग ठीक कह रहे हो लल्लन, लेकिन यह चोरी जो तुम करते हो, उसमें हर वक़्त पुलिस की दख़लंदाज़ी बनी रहती है और वह चोरी, जो वे लोग करते है, उस पर भारतीय दंडसंहिता की कोई धारा लागू नहीं होती।' हमारी बात सुननी थी कि फत्ता बहुत ज़ोर का ठहाका मारकर हँसा। ठहाका समाप्त कर वह धीमे स्वर में बोला, 'निर्णय करने में भूल हो गई रामलुभाया जी। पहली बार जब एक व्यक्ति के घर की छत काटी थी, तब यदि ऐसा न करके किसी कवि की जेब से कविता उड़ा ली होती तो मंच पर वाह-वाह भी लूटते और पुलिस से भी बचे रहते। तब यह बात सूझी नहीं और अब जिस डगर पर चल निकले हैं, उसे छोड़ना संभव नहीं।'

'हाँ भाई! तुम ठीक कहते है, चोर चोरी छोड़ देता है, हेरा फेरी नहीं छोड़ता।' हमने लल्लन की बात से सहमति व्यक्त करते हुए कहा। धीरे-धीरे बातचीत चोरों और चोरियों की विभिन्न श्रेणियों को लेकर होने लगी।

लल्लन बोला, 'हम तो कुछ भी चोर नहीं हैं, रामलुभाया जी, और यदि हों भी तो हमसे देश या राष्ट्र को कोई छोटा-मोटा ख़तरा भी नहीं। हमारा एक पाँव घर में होता है तो दूसरा जेल में। ज़रा उनको देखिए, जो दिन-दहाड़े चोरी करते हैं, सबकी आँखों में धूल झोंकते हैं किंतु क़ानून और क़ानून के रखवाले उनका बाल भी बाँका नहीं कर पाते।' लल्लन ने बहुत जोश-ख़रोश से अपनी बात कही। हम समझे नहीं कि लल्लन का इशारा किन लोगों की तरफ़ है। पूछा, तो लल्लन व्यंग्य-भरी हँसी हँसकर बोला, 'रामलुभाया जी! आज थोड़ी देर के लिए आप हमारे साथ चलिए। हम आपको दिखाएँगे कि कैसे-कैसे ऊँचे दर्जे के चोर पड़े हैं हमारे समाज में। पर कोई भी उनको चोर कहने-मानने के लिए तैयार नहीं।'

हमने हैरत से पूछा, 'पर चलना कहाँ होगा, लल्लन?'

बोला, 'कहीं परलोक में नहीं जाना, बस ज़रा यहीं कचहरी तक। आपको हम दिखाएँगे कि राशन-आपूर्ति कार्यालय में बड़ा बाबू, छोटा बाबू..., मँझोला बाबू..., अहलकार..., चौकीदार अपनी-अपनी सीटों पर आँखें मूँद सो रहे होंगे। आप पूछेंगे, लल्लन बताओ, ये क्या कर रहे हैं? हम आपको बताएँगे कि हजूरे-वाला, ये चोरी कर रहे हैं, समय की चोरी। जो समय यह सरकार को बेच चुके हैं, उसमें सेंध लगा रहे हैं और चुरा रहे हैं बेखटके। हम आपसे पूछेंगे कि क्या भारतीय दंड संहिता की कोई धारा इन पर लागू होती है? आप उत्तर देंगे, 'नहीं बिलकुल नहीं।' हम आपसे पूछेंगे कि 'क्यों जी, ये लोग हमसे बड़े चोर है कि नहीं, हम महीने-बीस दिन में छोटी-मोटी चोरी की एक-दो वारदात करते हैं, ये रोज़ समय चुराते हैं, इन समय-चोरों से देश और राष्ट्र को जो ख़तरा है, क्या वह हमारी हज़ार पाँच सौ की चोरी से हो सकता है? हमारा ख़याल है रामलुभाया जी, आपका जवाब हमारे समर्थन में ही होगा।'

समय- चोरों के इस जमावड़े से निकालकर हम आपको उसके निकट ही स्थित शिक्षा कार्यालय में ले चलेंगे। वहाँ हम आपको दिखाएँगे कि बड़े बाबू से लेकर मँझोले बाबू तक और मँझोले बाबू से लेकर छोटे बाबू तक जो भी है, फ़ाइलों की उलट-पुलट में लगा हुआ है। कोई किसी फ़ाइल की धूल झाड़ रहा है और फ़ाइल के साथ-साथ फ़ाइल वाले टीचर की धूल भी झाड़ता जा रहा है, कोई किसी फ़ाइल का फ़ीता खोलकर बाँध रहा है, कोई कागज़ इधर-से-उधर रख रहा है, कोई चाय का प्याला सामने रखे, क़लम से कान खुजा रहा है, कोई मालिश वाले से चंपी करा रहा है अपने सिर की, कोई टेलीफ़ोन पर बात कर रहा है अपनी प्रेमिका से, कोई सौदा पटा रहा है अनुदान के पैसों के बँटवारे का। आप यह सब देखकर हमसे पूछेंगे कि क्यों लल्लन! ये कौन लोग हैं और क्या कर रहे हैं? हम आपको बताएँगे कि ये सब लोग कामचोर हैं और ये काम की चोरी कर रहे हैं। चोरी भी और सीनाज़ोरी भी। इस रहस्योद्घाटन के बाद हम आपसे पूछेंगे कि क्यों श्रीमान् जी, इन पर भारतीय दंड संहिता की कोई धारा लागू होती है कि नहीं, हमें विश्वास है कि आपका उत्तर होगा कि नहीं, बिलकुल नहीं। ये तुमसे बड़े चोर हैं पर क़ानून की नज़र से दूर हैं।

अब हम आपको कार्यालय नामक चोर-घरों से निकालकर एक और स्थान पर ले चलेंगे। आप देखेंगे कि श्रोताओं की एक बड़ी भीड़ सजे-सजाए पंडाल में मौजूद है। मंच को बड़े ठस्से के साथ सजाया गया है। कविगण बैठे थर्मस से पानी का चकमा देकर दारू पी रहे हैं। माइक पर एक सज्जन कार्यक्रम जल्द आरंभ होने की सूचना देने में व्यस्त हैं। आप सब-कुछ भाँपकर भी हमसे पूछेंगे कि 'क्यों लल्लन, बताओ यह क्या हो रहा है?' हम उत्तर में आपसे कहेंगे, 'जी यह हो रहा है कविता पाठ! यहाँ मूल कवि कम हैं, चोर कवि अधिक। एक पंक्ति एक कवि की तो दूसरी पंक्ति किसी दूसरे कवि की, विचार किसी एक कवि का तो शृंगार किसी और कवि का। यह कंठ के मर्चेंट हैं, चोरी की कविता बेचते हैं, और धड़ल्ले से बेचते हैं, हज़ारों ऐंठते हैं, पीते हैं और बहकते हैं। क्यों श्रीमान् जी! क्या इन पर भी कभी कोई भारतीय दंड-संहिता की धारा लागू हो सकती है? हमें विश्वास है कि आप हमारे सवाल का उत्तर देंगे कि नहीं, हरगिज़ नहीं। तो भाई ये सब हमसे बड़े चोर हैं और क़ानून की नज़र से दूर हैं।'

श्रोताओं की भीड़ से हम आपका हाथ खींचकर जब किसी और स्थान के लिए प्रस्थान कर देंगे तो रास्ते में बढ़िया सूट-बूट पहने जो व्यक्ति मिलेगा, हम नाम लेकर उसका आपसे परिचय कराएँगे। वह आपसे मिलकर आगे बढ़ जाएगा, तो आप हमसे यह बात अवश्य पूछेंगे कि लल्लन तुमने इस व्यक्ति का नाम तो बता दिया, पर गुण नहीं बताए हैं इसके? आपके सवाल के उत्तर में हम आपसे बताएँगे कि यह सज्जन हैं बड़े भारी और माहिर नज़र-चोर। हमें विश्वास है कि 'नज़र-चोर' की बात सुनकर आप थोड़े आश्चर्य में अवश्य पड़ेंगे। क्योंकि धुरंधर अख़बारवाले होने के बावजूद चोरों की इस

प्रजाति से हमारे विचार में अब तक आपका वास्ता नहीं पड़ा होगा। आप हमसे अवश्य ही यह बात पूछेंगे कि लल्लन यह नज़र-चोर किस श्रेणी का चोर होता है जी? आपके सवाल का जवाब देते हुए हम कहेंगे कि सारी चोरियों में चोरी की यह कला काफ़ी मुश्किल और जोखिम से भरी होती है, पर जो लोग इस काम में दक्ष हो गए हैं उनके सामने कभी कोई ख़तरा नहीं आता। आप बात का खुलासा कराना चाहेंगे तो हम आपको बताएँगे कि ऐसे सज्जन, जो किसी पंसारी व्यापारी से दो-चार हज़ार या पाँच-दस हज़ार का माल उधार लेने में सफल हो जाता है तो वह जब भी उसकी दुकान-प्रतिष्ठान के सामने से गुज़रता है तो नज़र चुराकर गुज़रता है। सामने से नज़र चुराकर गुज़रने में वह इतना माहिर हो जाता है कि लाला तो लाला, लाला का बाल भी उसे रोक पाने में कामयाब नहीं हो सकता। लाला जी 'ए भाई ए भाई' चीख़ते रह जाते हैं और वह बराबर की गली में चुपके से ग़ायब? नज़र-चोरों का यह गिरोह हर शहर में है। और एक के बाद एक व्यापारी को अपना निशाना बनाता रहता है? नज़र चोरों का परिचय देकर हम आपसे पूछेंगे कि क्या ऐसा कोई चोर कभी पुलिस की गिरफ़्त में आता है और क्या भारतीय दंड संहिता की किसी विशेष धारा के अंतर्गत उस पर कभी मुकदमा चला है? हमें विश्वास है कि आप उत्तर में कहेंगे, 'नहीं जी, कभी नहीं।'

'रस्ते-रस्ते चलते हुए जब हम आपको लेकर कुछ और आगे बढ़ेंगे।' लल्लन अपना ख़याली भ्रमण जारी रखते हुए बोला, 'राजमार्ग पर सामने से आते हुए जो महापुरुष आपको दिखाई देंगे, वे अपने हुलिए और रख-रखाव में दूसरों से काफ़ी भिन्न दिखाई दे रहे होंगे। हमें विश्वास है कि आप इन्हें जानते तो होंगे, पर केवल ठिठोल की ख़ातिर हमसे पूछेंगे, 'क्यों लल्लन! तुम इन्हें जानते हो यह कौन हैं?' हम आपके सवाल का उत्तर देते हुए बताएँगे कि यह क्षेत्र के बड़े नामी-गिरामी जनतांत्रिक चोर हैं। चोरी के यानी नंबर दो के पैसे से चुनाव लड़ते हैं, चुनाव लड़ते ही नहीं चुनाव जीतते भी हैं, जीतते हैं तो विधायक-गर्दी अथवा सांसद-गर्दी करते हैं। जन-धन चुराते हैं, मौज उड़ाते हैं, हम-तुम पर धौंस चलाते हैं, ख़ुद खाते हैं, अपने जैसे लोगों को खिलाते हैं, इनकी जेब चौड़ी और पेट गहरा है। लक्कड़-पत्थर सब पच जाता है इन्हें। यह धन चोर भी हैं और कफ़न-चोर भी और वतन-चोर भी, इनकी पहुँच से कोई चीज़ बाहर नहीं। लल्लन थोड़ा रुका, फिर हमसे पूछने लगा, 'क्यों पत्रकार साहब! इन्हें और इन जैसे चोरों को कभी पुलिस की गिरफ्त में आते देखा है आपने। कभी भारतीय दंड संहिता की कोई धारा लागू हुई है इन पर? हमने उत्तर दिया, 'नहीं कभी नहीं।'

लल्लन बोला, 'ये चोरों की वे श्रेणियाँ हैं, जो कभी क़ानून की पकड़ में नहीं आतीं। यों तो ये सब हमसे कई लाख गुना बड़े चोर हैं। इनसे केवल चोरी से पीड़ित लोगों को ही नहीं देश को और राष्ट्र को भी ख़तरा है, पर कोई इनकी मूँछ का एक सीधा बाल भी नहीं उखाड़ पाता। जबकि हमें दिन-रात पुलिस घेरे फिरती है।' जब क़ानून से पकड़ की इन सुरक्षित चोरियों की लगभग सभी श्रेणियाँ गिना चुका लल्लन, तो हमने उससे कहा, 'यह तो सही है कि तुम्हारी हज़ार-दो हज़ार की छोटी-मोटी चोरी से यह समय की चोरी, काम की चोरी, जन-धन की चोरी राष्ट्र के लिए अधिक घातक है, पर यह बताओ तुम्हारा धंधा कैसा चल रहा है इन दिनों लल्लन!'

'अपना धंधा तो लगभग चौपट ही हो गया है जी।' लल्लन थोड़ा खीजकर बोला। इससे पहले कि हम धंधा चौपट होने का कारण पूछते, वह स्वयं ही बोला- 'अब कमीशन बहुत ज़्यादा बढ़ गया है पहले से। कमीशन देकर कुछ बचता-बचाता नहीं है।'

हमने आश्चर्य से पूछा, 'कमीशन से तुम्हारा क्या मतलब है लल्लन? यह कमीशन किसे देना पड़ता है तुम्हें?'

'यह मत पूछो कि कमीशन किसे देना पड़ता है, यह पूछो कमीशन किसे नहीं देना पड़ता।' लल्लन झुँझलाकर बोला, 'हलके के सिपाही से लेकर दीवान तक और दीवान से लेकर उपनिरीक्षक तक और उपनिरीक्षक से लेकर निरीक्षक तक और निरीक्षक से लेकर क्षेत्राधिकारी तक। अब किस-किस का नाम आपको बताऊँ। जोखिम में पड़ो और फोकट में दो, वह मामला हो गया है, पर कोई और धंधा पुलिस करने नहीं देती है हमें।'

'पुलिस नहीं करने देती?' हमने आश्चर्य से लल्लन की बात दोहराई। वह बोला, 'करे तो चोर का नाम, न करे तो चोर का नाम। वह बात हो गई हमारे साथ। सारे कामचोर, समय-चोर, कफ़न-चोर चूना लगा रहे हैं देश को, राष्ट्र को, पर कोई उनकी ओर नज़र उठाकर देखने वाला नहीं, पर हम किए, बिन किए दोनों तरह मारे जा रहे हैं। रात ही मुहल्ले के एक खोखे में चोरी हुई, सौ रुपये से अधिक का माल नहीं गया, पर पुलिस है कि सूँघती फिर रही है असली-नक़ली चोर को। जबकि डबल महाचोर दफ्तरों, कार्यालयों और सत्ता के गलियारों में स्वतंत्र घूम रहे हैं।'

लल्लन अभी इतना ही कह पाया था कि एक दरोगा, दो सिपाहियों को लेकर हमारे कमरे में दाखिल हुआ और लल्लन को रात हुई चोरी की वारदात में संदेह के आधार पर पकड़कर ले गया।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

व्यंग्य

हॉस्पिटल का इंस्पेक्शन

डॉ. मुकेश 'असीमित'

डॉ. महेश अपने चैंबर में उलझे हुए थे, इधर बाहर मरीज़ों की लंबी कतार और अंदर समय की टिक-टिक दोनों ही ओर से घिरे हुए। तीन बज चुके थे और मालती की दो बार की फ़ोन की घंटी उन्हें लंच के लिए बार-बार याद दिला रही थी। चेहरे पर झुँझलाहट साफ झलक रही थी। उनके मन में ख़याल आया, "क्या पूरा शहर ही बीमार पड़ गया है?" जैसे ही उन्होंने बाहर नज़र डाली, लंबी कतारें उसकी पुष्टि कर रही थीं।

इसी बीच, तीन पुरुष भीड़ को चीरते हुए उनके चैंबर में धड़धड़ाते हुए घुस आए। डॉ. महेश की समझ में नहीं आया कि माजरा क्या है? उन्होंने बिना अपॉइंटमेंट के आने पर उन्हें डाँटा भी, इधर पहले से ही अधीर खड़ी मरीज़ों की कतार अब व्याकुल होने लगी थी। तभी उनमें से एक ने कार्ड दिखाया - CMHO के ऑफ़िस से इंस्पेक्शन टीम। तीनों सदस्य डॉक्टर नहीं थे, साल भर पहले संविदा पर लगे हुए तीन कर्मचारी, उम्र कोई 25 से 30 वर्ष। डॉ. महेश ने पहली बार उनका चेहरा देखा था। वह अपराधी की भाँति काँपने लगे, फ़ोन पर तो कई बार उन तीनों से अपने आपको हड़कवा चुके थे, आज पहली बार प्रत्यक्ष रूप से हड़कने की बारी थी।

नाराज़गी उनके चेहरे पर साफ दिख रही थी, डॉ. महेश को आत्मग्लानि हो रही थी, जब पहले इतनी बार फ़ोन पर उनकी डाँट-फटकार सुन चुके थे तो उनकी छवि मस्तिष्क में अंकित हो जानी चाहिए थी। डॉ. महेश ने माफ़ी माँगते हुए कहा, "आपसे बात तो कई बार हुई लेकिन माफ़ कीजिए, आपने पहले बताया नहीं था कि आप आएँगे।" उनमें से एक ढीठता से कुर्सी और टेबल के नीचे से एक टाँग निकालकर उसे टेबल के ऊपर बिछाते हुए बोला-"वाह डॉक् साहब, मतलब हम अपने आने की ख़बर भी आपको पहले से दें, ताकि आप लीपापोती कर के सारी ख़ामियों को छुपा लो !"

बाहर मरीज़ों की भीड़ अधीर हो रही थी, डॉ. महेश ने स्टॉफ़ को बुलाया, "मरीज़ों को बोलो कि एक घंटा वेट करें, अभी इंस्पेक्शन चल रही है।" बाहर भीड़ में से कुछ लोग डॉक्टर, हॉस्पिटल और स्टॉफ़ को कोसते हुए वहाँ से निकल लिए, कुछ जो बाहर के गाँवों से आए थे, वे वहीं बाहर पड़ी कुर्सियों पर निढाल से बैठे रहे, इसी बीच मरीज़ों के परिजनों के बीच "डॉक्टर हॉस्पिटल लुटेरे हैं" विषय पर गहन चर्चा शुरू हो गई !क्या करें ग़ालिब वक़्त काटने का यह ख़याल अच्छा है !

डॉ. महेश के सामने तीनों बैठे थे, तीनों की कुर्सी की हाइट थोड़ी सी कम थी, उनमें से एक को यह बर्दाश्त नहीं हो रहा था, वह बार-बार अपनी कुर्सी के पाए के साइड में लगे हत्थे से कुर्सी की हाइट ऊँची करने की कोशिश में लग गया। डॉ. महेश ने वक़्त की नज़ाकत को समझा, और अपनी कुर्सी की हाइट नीचे कर ली ! तब तक स्टॉफ़ नाश्ते की प्लेटें और चाय ला चुका था। महेश अपने हाथ से एक-एक प्लेट उठाकर तीनों की ख़ातिरदारी करने में लग गए। तभी एक बोला-"अरे डॉक् साहब यह सब तो ठीक है, वह आपका मैनेजर दिखाई नहीं दे रहा, कागज़ात तो दिखाओ, हॉस्पिटल का इंस्पेक्शन कौन करवाएगा? बहुत शिकायतें आ रही है डॉक् साहब, पोर्टल भरा रहता है। वह तो हम हैं कि मामला ऊपर जाने नहीं देते, अपने स्तर से ही रफा-दफा कर देते हैं; लेकिन आप तो हमारा ख़याल ही नहीं रखते। आपने तो पहचाना ही नहीं हमें बताओ!" एक बार पुन: महेश को लगा कि आज जो भैंस बैठी है पानी में यह ऐसे नहीं उठने वाली। महेश इस मामले में बिलकुल बनिया के बैल ही थे, वह तो मैनेजर राकेश कुछ सँभाल लेता था, महेश बार-बार उसी को फ़ोन लगा रहे थे कि एक बार फ़ोन उठा ले तो इस बला से कोई निजात मिले !

हॉस्पिटल का इंस्पेक्शन अब बहुत कुछ लड़की दिखाने जैसा ही होता है, लेकिन फ़र्क सिर्फ इतना है कि लड़की देखने आने वाले कम से कम आने से पहले बता तो देते हैं कि हम आ रहे हैं तो उनके स्वागत की पूरी तैयारी हो जाती है, लेकिन इंस्पेक्शन वाले सीधे धमकते हैं और तब आते हैं जब अस्पताल तथा डॉक्टर का चरित्र, व्यवहार और अस्पताल के लोगों का आचार-विचार सब जान लेना चाहते हैं। कमियाँ होती नहीं है कमियाँ ढूँढ़ी जाती हैं। इंस्पेक्शन वालों को

डॉ. मुकेश 'असीमित'
गंगापुर सिटी, राजस्थान
पिन कोड -3222001
मोबाइल- 9785007828
ईमेल-thefocusunlimited@gmail.com

सिखाया ही यह जाता है, बचपन से ही दो तस्वीरों में अंतर ढूँढ़ने की कला में जो माहिर होता है, उसे ही इंस्पेक्शन टीम में रखा जाता है!

डॉ. महेश का एक छोटा-सा 15 बेड का हॉस्पिटल था। 2 साल लगे सरकारी स्कीम की फॉर्मेलिटी पूरी करने में, तब जाकर स्कीम मिली थी; हालाँकि बेड 2 से ज़्यादा कभी नहीं भरे गए और कोढ़ में खाज तो जब हुई तब हाल ही में सरकार ने 30 बेड की न्यूनतम आवश्यकता कर दी थी। अब तो डॉ. महेश बौखला गए थे। कई बार स्कीम को सरेंडर करने की भी सोची, लेकिन हर बार उनकी पत्नी मालती अड़ जाती थी, शहर के हॉस्पिटलों द्वारा सरकारी स्कीमों से खाए जाने वाली मलाई की दुहाई देती, "अपने फूटे करम कि ऐसे निठल्ले डॉक्टर से शादी हुई", यह एक राम बाण दलील जिसके आगे डॉ. महेश घायल थे!

"आज तो बुरे फँसे" डॉ. महेश मन ही मन बुदबुदा रहे थे। वह कहते हैं न मर्फी लॉ- जब बुरा होना होता है तो वह सब होता है जो हो सकता है, इसलिए आज उनका मैनेजर भी नहीं था, इधर डॉ. महेश ख़ुद फॉरमैल्टीज़ की बारीकियों से अनजान इस मुसीबत से निजात पाने के लिए तड़प रहे थे।

अभी तो नाश्ता होना है, फिर इंस्पेक्शन, एक-एक दीवारें, खिड़कियाँ, पलंग के नीचे कोने में घुस कर देखा जाएगा, विडियोग्राफ़ी होगी, मरीज़ों से फीडबैक लिया जाएगा, मरीज़ तो बाहर वैसे ही भरे पड़े हैं, उनका स्क्रिप्टेड वक्तव्य तैयार है- "सभी हॉस्पिटल और डॉक्टर एक जैसे हैं साहब, सिर्फ लूटने को बने हैं।"

फिर कल आएगी बड़ी सी हैडलाइन- हॉस्पिटल में पायी गईं भारी अनियमितताएँ, सी एम् एच ओ ऑफ़िस ने जारी किया –शो कॉज नोटिस, डॉ. महेश अभी भी डर से काँप रहे थे एक मुजरिम की तरह जो इन बाबुओं के रहमो करम पर पला हुआ एक कीड़ा जैसा, जिसकी डिग्री, ज्ञान और मरीज़ों का विश्वास सब दाँव पर लगा हुआ था।

000

लघुकथा

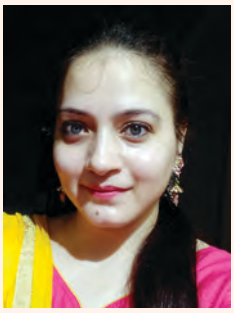

मध्यम

मनप्रीत मखीजा

सुबह-सुबह पत्नी द्वारा मुझे यह याद दिलाना कि आज बिल भरने की आख़िरी डेट है। फिर ऑफ़िस में 'यस सर' 'ओके सर' करते हुए एक दबाव का आकर मुझे घेर लेना और फिर शाम को घर लौटते हुए सिग्नल पर गाड़ियों की चें- चें- पों-पों सुनने के बावजूद सामने फैली नन्हीं हथेलियों पर ख़ुशी रख दुआएँ बटोर लेना। फिर रात भी, बच्चों की पिकनिक, ट्यूशन मूवी टिकट वगैरह की माँग पर भी अपनी जेब टटोलने की बजाय मुस्करा देना, यही मेरा रोज़ का क्रम है। डायरी नहीं लिखता, ख़ुद पर फ़िज़ूलखर्ची करना नहीं चाहता। वैसे भी रात को सोने से पहले सब परेशानी मस्तिष्क में घूम-घूमकर नींद चूस ही लेती है।

परेशानी चिल्लर है और इंसान गुल्लक। यह गुल्लक भरती ही जाती है। आवाज़ भी टन्न से आती है। हर दूसरे आदमी से मिलकर उसकी परेशानी जानकर भीतर पड़े सिक्के बजने लगते हैं। अब गुल्लक चाहे बाहर से सोने की दिखे, या मिट्टी की..जीवन इतना दिलेर है कि इसे खाली तो रहने नहीं देगा।

पुरुष की परेशानी और तनाव, चिड़चिड़ापन और बूँद-बूँद जमा होता अवसाद जीवन भर किसी को नहीं दिखता, दिखती है उसकी शर्ट की वज़नदार जेब या फिर उसकी बनियान के छेद। क्लास बताती इस ब्रांडेड शर्ट और औक़ात बताती इस फटी बनियान के मध्य भी एक पुरुष है जो सिर्फ उसे स्वयं को ही दिखता है।

अपने मनन में व्यस्त मैं कमरे की दीवार से उखड़ी पपड़ी को देख रहा था कि तभी बगल में लेटी पत्नी ने छाती से चिपककर कहा, "सुनिए, नए घर का कुछ सोचा क्या आपने! बच्चे भी बड़े हो रहे है, अब ये घर छोटा पड़ता है।"

"सब हो जाएगा। मैं सब देख लूँगा।" कहकर मैंने अपनी पत्नी को मेरे कंधे पर सिर रखकर सो जाने को कहा। वह सो गई है मैं उसे अपने बाहों में भर रहा हूँ, ठीक वैसे जैसे कोई देश एक ज़िम्मेदार वर्ग के कंधे पर हो और उस वर्ग ने भी देश को सीने से लगा रखा हो।

000

मनप्रीत मखीजा, ए/26, आराधना सोसाइटी, निकट सेंट ज़ैवियर स्कूल, कालोल (एन.जी.), ज़िला-गांधीनगर, गुजरात।

मोबाइल- 6355176299

ईमेल- manpreetmak6@gmail.com

अमेरिका यात्रा के बहाने...स्वयं को टटोलना

डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा

मुझे अमेरिका जाने का अवसर दो बार मिला। मेरे नए बने पासपोर्ट पर पहली मोहर ही अमेरिका की लगने के कारण मुझे कइयों ने बधाई दी, 'भई कमाल है। आपको पहली बार में ही अमेरिका का वीज़ा मिल गया।' इन बातों से अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि हमारे लोगों में बाहर जाने और विशेषकर अमेरिका/यूरोप जाने की कितनी लालसा है।

अमेरिका बहुत ही बड़ा देश है, इतना बड़ा कि उसके एक शहर से दूसरे शहर और एक प्रांत से दूसरे प्रांत तक जाने के लिए आम तौर पर हवाई जहाज़ द्वारा ही जाना पड़ता है। मैं अमेरिका के ईस्ट कोस्ट में स्थित पेंसिलवेनिया गई थी, जहाँ मेरा बेटा एलनटाऊन में रहता है। यहाँ से कैलिफ़ोर्निया या स्याटल जाने के लिए हवाई जहाज़ द्वारा छह-सात घंटे लगते हैं। इसलिए इतनी दूरी तक कार द्वारा जाने में अत्यधिक समय लगता है। आम तौर पर हवाई जहाज़ को ही प्राथमिकता दी जाती है। वहाँ सार्वजनिक आवागमन के साधन बसें या रेलगाड़ियाँ बहुत कम हैं। पेंसिलवेनिया ही इतना बड़ा है कि इसके ही एक शहर पिट्सबर्ग जाने पर कार द्वारा साढ़े चार घंटे लगते है। परन्तु यहाँ से न्यूयॉर्क, सिटी कार द्वारा सवा दो घंटे में पहुँचा जा सकता है और न्यूजर्सी डेढ़ घंटे में। वास्तव में समय बताने का आशय यह है कि पिछले कुछ अर्से से दिल्ली में इतना ट्रैफिक बढ़ चुका है कि कहीं भी जाने पर घंटा-डेढ़ घंटा लगना मामूली बात समझी जाती है। हालाँकि वह स्थान या शहर इतनी दूर नहीं होते परन्तु ट्रैफिक के कारण, सड़कों के टूटे होने के कारण, और नहीं तो किसी वी.पी.आई. के वहाँ से गुज़रने के कारण सभी लोगों को ज़बर्दस्ती रोक दिया जाता है। बैरीकेटर लगा दिए जाते है या मुख्य सड़क से यातायात को अचानक से दूसरे रूट पर बदल दिया जाता है। ऐसा तब तक रहता है, जब तक कि उस मंत्री या किसी नामचीन की गाड़ियों का क़ाफ़िला निकल न जाए। हमारे यहाँ देर लगने के मुख्य कारण यह है, जबकि वहाँ 'हाइवे' से गुज़रना पड़ता है। वहाँ रास्ते में कोई रुकावट नहीं, साफ-सुथरी और चौड़ी सड़कें, जिन पर लगातार तेज़ी से भागती गाड़ियाँ। वहाँ कारों की स्पीड भारत से अधिक है। फिर भी इतना समय लगने का कारण यह है कि वे स्थान वास्तव में दूर होते हैं न कि किसी अन्य कारण या किसी बस-ट्रक के खड्ड में गिरने या तेज़ रफ्तार के कारण उल्ट जैसा वहाँ कुछ नहीं होता।

दूसरी बात, वहाँ गाड़ी चलाते समय ट्रैफिक नियमों का पालन करना अति आवश्यक है। किसी व्यक्ति भारतीयों सहित वहाँ गाड़ी चलाने के लिए बहुत ध्यान देने की आवश्यकता होती है। आजकल तो ख़ूब बढ़िया है, ट्रैफिक नियमों की 'ऐप' फ़ोन पर डाउनलोड करके उसका ध्यानपूर्वक अध्ययन कर लिया जाए। वैसे भी गाड़ी चलाते समय जी.पी.एस. का सहारा लेने के बावजूद वहाँ इतनी सड़कें, लेनस, मोड़ और 'एग्ज़िट' होते है कि जितनी देर तक कोई सही रास्ते की ओर जाने के बारे में सोचें, तब तक वह आगे निकल चुका होता है। फिर कई किलोमीटर का चक्कर काट कर ही आप सही सड़क या मोड़ की ओर आ सकते हो। कई बार फिर वहीं से कोई और ही रास्ता आपको आगे ले जाता है। वहाँ सड़कों पर लगे बोडर्स पर इतना कुछ लिखा होता है कि पहली बार वहाँ से गुज़रने वाला व्यक्ति, तेज़ रफ्तार से जाती कार में से पलक झपकते सब

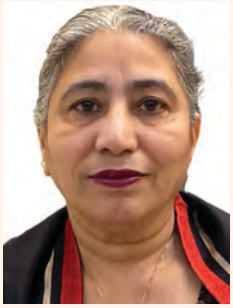

डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा
R-142, 1st फ़्लोर, ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली-48
फ़ोन- 9868182835
ईमेल- jasvinderkaurbindra@gmail.com

कुछ पढ़ना संभव नहीं हो पाता। इसीलिए कहा जाता है कि वहाँ एक बरस से अधिक समय लगता है, ट्रैफिक नियमों को समझने पर सड़कों पर लिखे निशानों और मोड़ों को जानने में। हालाँकि युवा पीढ़ी के लिए 'ऐप्स' और 'जी.पी.एस.' द्वारा इन्हें समझना काफी आसान हो गया है, बावजूद इसके भी समय लगता ही है। यही नहीं, सड़क के किस हिस्से पर पहुँच कर गाड़ी की स्पीड बढ़ाई जा सकती है, कहाँ कम रखना है, कहाँ पहुँच कर अपनी लेन बदल सकते है, किस लाल बत्ती या मोड़ पर किस दिशा वाला पहले आगे बढ़ेगा। इन सभी नियमों का ध्यान रखना आवश्यक है।

आपको फ़ोन पर ज़रूरी बात करनी है, सिर भारी हो गया है, आप कुछ देर के लिए साँस लेना चाहते हैं, कुछ पलों के लिए हाथ-पैर सीधे करने चाहते हैं तो सड़क के एक कोने में एक छोटी लेन जितना स्थान ख़ाली छोड़ दिया जाता है, जिसे 'शोल्डर' कहते है। आप अपनी गाड़ी को उस ओर ले जाकर कुछ देर के लिए रोक सकते है, सुस्ता सकते है। रास्ते में जाते हुए कुछ खाने-पीने या आराम करने के लिए 'रेस्ट एरिया' आते है। जहाँ वॉशरूम की सुविधा, खाना-पीना भी मिल जाता है। जिसकी जानकारी कुछ किलोमीटर पहले ही रास्ते में बोर्डों द्वारा मिल जाती है। वहाँ पार्किंग में हर स्थान पर 'डिस्ऐबल लोगों' और पुलिस लोगों के लिए आरक्षित होती है। उस आरक्षित स्थान पर गाड़ी पार्क करने पर भारी जुर्माना देना पड़ता है। लोग गाड़ी पार्क करने के लिए उतावलापन नहीं दिखाते, जैसाकि हमारे यहाँ होता है कि ज़्यादा भीड़ होने पर होता है, बस इधर-उधर घुस कर पहले अपनी गाड़ी लगा दें। लोग बहुत सहजता से काम करते है। वैसे भी ग्रोसरी सेंटर, सुपर मार्किट, स्टोर्स, रेस्ट रूमस वाले स्थान इतने खुले और बड़े होते हैं कि किसी को भी जल्दबाज़ी दिखाने या अपना नंबर पहले लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

किसे बड़े शहर या स्टेट जैसे फ़िलाडेल्फ़िया, न्यूयॉर्क, बॉस्टन या वाशिंगटन डी.सी. इत्यादि स्थानों पर घूमने

जाने से पहले वहाँ पार्किंग स्थान की बुकिंग करनी पड़ती है। यह बुकिंग आजकल आराम से ऑनलाइन हो जाती है, जहाँ आप 10 से 12 घंटे तक के लिए गाड़ी पार्क कर सकते हैं। ऐसे स्थानों पर पार्किंग फीस 20 डॉलर से अधिक होती है। गाड़ी हफ्ते या अधिक समय के लिए भी पार्क की जा सकती है। पार्किंग वाले स्थान पर कभी-कभी आप को कोई व्यक्ति बैठा नहीं मिलता, सब कुछ ऑटोमैटिक होता है या अधिक से अधिक एकाध व्यक्ति होता है। वहाँ गाड़ी पार्क कर, ज़्यादातर पैदल ही दूर-दूर तक घूमना पड़ता है। उबर आदि कैब 3-4 किलोमीटर की दूरी के लिए भी बहुत महँगी पड़ती है। शहरों में सड़क पार करने के लिए निशान लगे हैं, पैदल चलने वालों का सम्मान किया जाता है। यदि कोई बुज़ुर्ग धीरे-धीरे चल रहा है तो गाड़ी में बैठा व्यक्ति बिल्कुल भी हड़बड़ी नहीं दिखाता। वह उसके सड़क पार करने की प्रतीक्षा करता है।

सड़कों की मरम्मत लगातार होती रहती है। परन्तु यह सारा काम रात के समय किया जाता है। उस समय एक लेन बंद कर दी जाती है। जिसकी सूचना पहले दे दी जाती है। कोई एक्सीडेंट होने पर भी, बहुत जल्दी वहाँ से गाड़ी और घायल व्यक्तियों को हटा लिया जाता है, ताकि यातायात में रुकावट न पड़े। हमारे यहाँ एक्सीडेंट के पास से भी जल्दी निकलने की होड़ लगी रहती है। वहाँ हमने कभी 'होर्न' की चिल्लम-पों नहीं सुनी, जैसे यहाँ ट्रैफिक में लगातार बजते हार्नों से कानों के पर्दे फटने लगते हैं। वहाँ की पुलिस सड़क, ट्रैफिक और यातायात पर बहुत मुस्तैदी से नज़र रखती है। यदि कोई नियत स्पीड से तेज़ जा रहा है तो पुलिस उसका पता तुरन्त लगा लेती है। वे कहीं न कहीं छुपे बैठे होते हैं और तुरन्त ही बाहर निकल आते हैं और गाड़ी को रोक ले लेते हैं। वहाँ पुलिस को धचका देकर भाग निकलना असंभव है। आजकल किस सड़क पर एक्सीडेंट करके, ट्रैफ़िक जाम हो रहा है या कहाँ पुलिस गाड़ी को रोक रही है या फलाँ स्थान पर पार्किंग 'फुल्ल' हो चुकी है, इसकी सूचना बोर्ड और जी.पी.एस के द्वारा साथ-साथ पहुँच जाती है। तकनीकी सूचना ने कामों को कितना आसान कर दिया है....!

000

लंबे मीलों दूर रास्तों पर गाड़ियाँ सरपट भागती जाती हैं। हमने बहुत सारे स्थान देखे। सभी जगहों पर अपनी गाड़ी से ही गए। जैसे न्यूयॉर्क स्टेट, रोड आईलैंड जाने में चार-साढ़े चार घंटे का समय लगा या वाशिंगटन डी.सी. के लिए साढ़े तीन घंटे, जबकि नियागरा फॉलस के पाँच घंटे। इतने लंबे सफ़र में एकाध बार किसी 'रेस्ट एरिया' में रुकना पड़ा। अक्सर सुबह के खाने के लिए कुछ न कुछ बना कर साथ ले जाते थे। बाक़ी तो हर जगह पर 'बर्गर, पीज़ा या चाउमिन' आदि ही नहीं, बहुत बार इंडियन खाना भी मिल जाता है। परन्तु इतने लंबे समय पर कई बार बोरियत भी होने लगती है क्योंकि हर ओर एक जैसे दृश्य देखने को मिलते हैं। दोनों ओर हरियाली, साफ चमकता आसमान, कहीं-कहीं बादलों की टुकड़ियाँ...बस! खाने के लिए रुकने वाले स्थानों पर भी लगभग एक जैसा समान। तब वहाँ इंडिया की सड़कें याद आती हैं, जहाँ लंबे सफ़र पर जाते हुए शहर बदलने से आस-पास का इलाका भी बदल जाता है। कहीं पर कीनू या गन्ने के रस की रेहड़ियाँ, कहीं मौसमी फलों का ढेर लगाए बैठे ग्रामीण, जिनमें कई बार बच्चे भी होते हैं। आप गाड़ी रोक कर कहीं रस पीते हो, कहीं ताजा संतरे, केले या अमरूद ख़रीदते हो। चाय तो कहीं भी पी जा सकती है। बदलते परिवेश के साथ

पहनावा बदल जाता है, बोली बदल जाती है। कहीं घाघरा पहने गुजरती औरतें, कहीं ऊँची साड़ी लपेटे या सूट पर रंग-बिरंगा दुपट्टा लहराती कोई लड़की या महिला। दोनों ओर ढाबों की भरमार, गर्मा-गर्म तंदूरी रोटी और कोई भी सब्ज़ी, रोटी-सब्ज़ी का बदला जायका भी एक अलग मज़ा देता है। कहीं किसी पेड़ के तले, मूँज की बुनी चारपाई पर बैठ कर हुक्का पीते बुज़ुर्ग और पास में मिट्टी में खेलते बच्चों को देखकर, टाँगें सीधे करने के बहाने या कोई फल, कुछ खाने का सामान खरीदने के लिए उतरते समय, रास्ते की धूप और धूल के बावजूद मन तरो-ताज़ा हो जाता है। वहाँ हर तरफ एक ही तरह के दृश्य देख-देख कर मन उकताहट महसूस करने लगता है। इंडिया जैसी रंगीनता और विविधता बहुत कम देखने को मिलती है, शायद यही ख़ासियत इंडिया को दुनिया में अद्वितीय बनाती है।

हालाँकि अमेरिका में आपको सारी दुनिया के लोग देखने को मिलते हैं, काले, गोरे, ब्राऊन, गेहुँआ....हर देश, रंग, नस्ल, धर्म और आयु के लोग। अफ्रीकी, मैक्सिकन, फिलीपीइंस, कोरियन, चीनी, जापानी, अरबी, पाकिस्तानी और हिन्दुस्तानी तो पूछो ही मत! जिनमें भी अधिकतर गुजराती और पंजाबी। कोई भी भारतीय कहीं दूर से या पास से दिखे, आँखों में एक पहचान उभरती है। दूर से हाथ हिला कर, कभी सिर हिला कर, पास से मुस्करा कर गुज़रते हुए कई नमस्ते या हमें देखकर सति सिरी अकाल भी कहते। परन्तु गुजराती और अक्सर दक्षिणी भारतीयों को कम ही किसी को बुलाते देखा। बल्कि न्यूयॉर्क शहर के 'वन वर्ल्ड ऑब्ज़रवेटरी' की 103वीं मंज़िल से न्यूयॉर्क सिटी का व्यू देखने के लिए जब हम ऊपर पहुँचे तो वहाँ एक काले अमेरिकी युवक ने हमें देखते ही 'सति सिरी अकाल' कहा। सुन कर मज़ा आ गया। इसी प्रकार 'ओशन सिटी' के बीचस पर फुटबाल खेलते नौजवानों की टोली मेरे पास से गुज़री तो उसमें से एक काले युवक ने बहुत प्यार से मुझे 'नमस्ते' कहा। इन बातों से पता लगता है कि भारतीयों की, पंजाबियों की तूती

हर जगह बोलती है।

000

वहाँ अधिकतर लोग अपने में मस्त, आस-पास से एकदम बेपरवाह, अकेले, प्रेमी-प्रेमिका, अपने बच्चों के साथ, परिवार के साथ घूमते-फिरते व शॉपिंग करते दिखाई देते हैं। नज़र मिलने पर अमेरिकी लोग किसी को भी देख कर एक मुस्कराहट अवश्य देते है, धीरे से 'मॉर्निंग' भी कहते है। अपने कुत्तों को हर जगह अपने साथ घुमाते है, भले आर्ट गैलरी हो या कोई म्यूज़ियम। परन्तु रास्ते में सफाई का पूरा ध्यान रखते है। वहाँ हमने कुत्तों को एकदम साफ-सुथरा देखा परन्तु उन्हें भौंकते या लोगों की ओर झपटते बिल्कुल नहीं देखा। शायद ही हमने किसी कुत्ते की भौंकने की आवाज़ सुनी हो जबकि हर एक के साथ कुत्ते देखे, जो उनके अकेलेपन के साथी के तौर पर या बच्चों के तौर पर साथ नज़र आए। अपने बच्चों समान ही उनसे लाड़ लड़ाते देखा। बहुत बार चालीस-पैंतालिस बरस के जोड़ों को छोटे-छोटे बच्चों को प्रैप में घुमाते देखा। जिससे मैंने अंदाज़ा लगाया कि वे उम्र के तीसरे पड़ाव पर आकर अपना परिवार बनाते हैं। आम तौर पर अमेरिकी लोग शाम के सात-साढ़े सात बजे तक खा-पीकर जल्दी सो जाते हैं, वीक-एंड को छोड़ कर। काले अमेरिकी व अफ्रीकी आपके पास बिल्कुल अजनबियों की तरह गुज़र जाते हैं परन्तु इकट्ठे होकर वे बहुत हो-हल्ला मचाते हैं। अकेले-दुकेले नहीं। वहाँ भी ग़रीब और बे-घर लोग, हर आयु के स्त्री-पुरुष, युवक-युवतियाँ दिखाई देते हैं, जिनमें अधिकतर काले अमेरिकी, नाइज़ीरियन बदहवास, फटेहाल, नशे की हालत में सड़कों पर भटकते दिखाई देते हैं। ख़ास कर न्यूयॉर्क, फ़िलाडेल्फ़िया, ओशन सिटी जैसे बड़े शहरों में। इसीलिए वहाँ से गुज़रते हुए बहुत तेज़ गंध आती है, जो हमारे यहाँ के बीड़ी, सिगरेट के धुएँ से अलग होती है। वहाँ कुछ नशों पर पाबंदी नहीं, ख़ास कर रात के समय, सड़कों पर से गुज़रते हुए अजीब सी तेज़ गंध हवा में फैले होने के कारण दम घोंटती प्रतीत होती है।

अमेरिका में बसने वालों के चेहरों पर संपन्नता नज़र आती है। परन्तु ख़ूबसूरती भरे चेहरे देखने को नहीं मिलते, सिवाय बच्चों को छोड़ कर। लोग दूसरों की परवाह नहीं करते, ठीक है परन्तु अपने शरीरों की भी परवाह नहीं करते, यह अजीब है! बहुत भारी शरीर, बेडौल जिस्म। फँसे हुए कपड़े। भले कोई ड्रैस फबे या न फबे। वहाँ फैशन सैंस बिल्कुल नज़र नहीं आई, जैसे यूरोपियन देशों में देखने को मिलती है। वहाँ कपड़ों की अधिक वैरायटी नहीं मिलती। लगभग हर स्टोर, हर शो-रूम में वहीं दो-चार रंग, वही डिज़ाईन के कपड़े। आदमी अधिकतर खुले-खुले टी-शर्टस, निक्करों और बरमूड़ा में और औरतें व लड़कियाँ तंग-शोर्ट कपड़ों और बहुत छोटी निक्करों और जीन्स में। जो कपड़ों, पहनावे और परिधानों की वैरायटी हमारे पास है, रंगों-डिज़ाईनों की भरमार है, वे उनके पास नहीं है। क्योंकि वहाँ कपड़े बाहर से आते है। जबकि हमारे यहाँ ख़ूबसूरती नज़र आती है, भले पुरुष-औरतें हो या युवा लड़के-लड़कियाँ। अब तो केवल युवा पीढ़ी ही नहीं हर आयु के स्त्री-पुरुष अपनी पर्सनेलिटी को संवारने और स्मार्ट दिखने की ओर ध्यान देते हैं। अब तो यहाँ स्वास्थ्य के प्रति भी काफी जागरूकता नज़र आने लगी है, जिसके अन्तर्गत खान-पान, योगा, कसरत, सैर आदि को भारतीय अपनाने लगे और अपने जीवन का हिस्सा बनाने लगे हैं, जो एक अच्छा परिवर्तन कहा जा सकता है। हमें यहाँ बैठ कर लगता है कि अमेरिकी बेहद अमीर है। परन्तु

ऐसा है नहीं! उनकी तनख़्वाह या काम करने के घंटों की कमाई से अमीरों जैसा जीवन जीना संभव नहीं, जैसा कि हमारे यहाँ मध्य वर्ग या उच्च मध्य वर्ग जीता है। हमारा यह वर्ग फाइव स्टार होटलों में भी जाना और खाना-रहना काफी हद तक अफोर्ड कर सकता है जबकि वहाँ ऐसा संभव नहीं। शॉपिंग करते हुए हमने अक्सर देखा, लोग बहुत महँगे और ब्रांडेड सामान सेल में ही ख़रीदते है। हमें यहाँ रुपये की क़ीमत का भले पता न हो परन्तु उन्हें अपने डॉलर की वास्तविक मूल्य की अवश्य जानकारी है।

000

अमेरिका जैसे बड़े देश में...सारी दुनिया के लोग बसना चाहते हैं, सबसे अमीर देश...परन्तु डॉक्टरी सहूलियतों की इतनी कमी! छोटी-मोटी बुखार, खाँसी या कोई पेन-किलर, मलहम, ट्यूब जैसे दवाईयाँ स्टोरों पर मिल जाती हैं परन्तु अन्य कोई दवा लेने के लिए डॉक्टर के 'प्रिसक्रिप्शन' की आवश्यकता होती है। परन्तु डॉक्टर का मिलना... भगवान् मिलने से भी अधिक मुश्किल है। बहुत जल्दी का अपॉइंटमेंट भी तीन से चार महीने से पहले की नहीं मिल सकती। ऐसा क्यों...? बहुत इमरजेंसी के बिना डॉक्टरी सहायता मिलना मुश्किल है। मेडिकल इंश्योरेंस होने के बावजूद भी वक़्त लगता है। और अगर आपके पास मेडिकल इंश्योरेंस नहीं, फिर तो परमात्मा ही मालिक है! मेरे बेटे के कुलीग के माँ-बाप भी अपने पुत्र के पास इसी प्रकार अमेरिका घूमने के लिए गए। वहाँ उस लड़के के पिता को हार्ट-अटैक हो गया। उसे अस्पताल ले जाया गया। वहाँ बिल आया साठ हज़ार डॉलर। लड़के के पास मेडिकल इंश्योरेंस नहीं, न ही पिता के पास। अस्पताल ने मरीज़ का इलाज कर, उसे घर जाने की इजाज़त भी दे दी। वहाँ किसी भी व्यक्ति की जान को प्राथमिकता दी जाती है, यह उनका मानवता भरा पहलू है। बाद में यदि वे लोग बिल नहीं भरते तो उसके माँ-बाप का नाम हमेशा के लिए 'ब्लैक लिस्ट' में आ जाएगा। अमेरिका की ओर से 'ब्लैक लिस्ट' होने का मतलब है, दुनिया के अन्य देशों का

वीज़ा मिलने में भी मुश्किल पैदा होना। अब उस लड़के को अपनी तनख़्वाह के आधार पर उस बिल की अदायगी की किश्त देनी होगी वरना मुश्किल उसके लिए भी बन जाएगी। इसलिए जाने से पहले अपने स्वास्थ्य की पूरी जाँच करवा कर जाएँ। हो सके तो अपने सफ़र का बीमा भी करवा कर लें, ताकि किसी अनहोनी के समय आपको उसका एवजाना मिल सके।

वहाँ तलाक़ लेना या किसी अन्य किसी केस का फ़ैसला होना शायद आसान है, जो हमारे यहाँ होना इतना आसान नहीं। भारत में किसी केस का फ़ैसला अगली पीढ़ी तक आना आम बात है। इसलिए लगता है, कुछ बातों की सुविधा अमेरिका में आसान है और कुछ भारत में। यहाँ आपको आधी रात को भी कुछ चाहिए तो वह आपको मिल ही जाएगा, भले कुछ अधिक पैसे देने पड़े या कुछ समय लग जाए। जबकि वहाँ अमेरिका में हर काम का समय निश्चित है। सुपर मार्किट्स, स्टोर, रेस्तराँ आदि का समय नियत है। कुछ स्टोर शाम को आठ बजे बंद हो जाते है, रेस्तराँ दस बजे तक। हमारे यहाँ दोस्त-यार या परिवार रात को आठ-नौ बजे के बाद घर से निकलते हैं, रात को बाहर 'डिनर' के लिए। यहाँ देर रात तक होटल, रेस्तराँ, ढाबे आदि खुले मिलते हैं। नियागरा फॉल्स घूमते हुए रात को नौ बजे सारे रेस्तराँ बंद हो गए। शटर नीचे, हमें बहुत मुश्किल से 'बर्गर' मिले, वह भी इसलिए कि हमने पाँच मिनट पहले ही अपना आर्डर दे दिया था और वह हमें मना नहीं कर पाए। परन्तु उन्होंने हमें अंदर नहीं आने दिया, कहा, आर्डर तैयार होने पर आपको खुली खिड़की में से दे दिया जाएगा। मुझे मालूम है, ऐसी कोई स्थिति भारत में नहीं आ सकती। यहाँ सारी रात आपको खाने के लिए सब कुछ आसानी से उपलब्ध हो जाता है। हालाँकि वहाँ कुछेक 'डाईनर' ही ऐसे है, जो सारी रात खुले रहते है परन्तु वह बहुत सीमित है और दूर-दूर है। जहाँ आपको आम तौर पर आमलेट ही मिलता है।

000

चार जुलाई को अमेरिका का स्वतंत्रता दिवस होता है। इस दिन हमारे देश की तरह भले दिन के समय कोई राजसी समारोह नहीं होता परन्तु छुट्टी होती है। रात को अवश्य सरकारी और निजी तौर पर जगह-जगह पर आतिशबाज़ी करके अपनी ख़ुशी को प्रकट किया जाता है। अन्य कुछ दिन ऐसे है, जब सरकारी छुट्टी होती है, जैसे: थैंक्स गिविंग डे, ब्लैक फ्राइडे आदि। इन अवसरों पर वहाँ बड़े-बड़े स्टोर, सुपर मार्किट्स और शो-रूम्स में भारी सेल लगती है। इन दिनों में अधिकतर लोग कपड़े, इलेक्ट्रोनिक सामान और अन्य बहुत कुछ ख़रीदते हैं परन्तु इन दिनों में भी स्टोरों का समय निश्चित है। शाम को छ बजे स्टोर बंद हो जाएँगे...तो हो ही जाएँगे। हमारे यहाँ की तरह नहीं कि दीवाली, दुर्गापूजा, ईद और अन्य किसी छुट्टी या त्योहारों पर कई-कई दिनों तक बाज़ार सारी रात खुले रहते हैं। मतलब दुकानदार, मॉल्स, बाज़ार वाले और वहाँ काम करने वाले इन त्योहारों का आनंद अपने परिवारों के साथ नहीं ले सकते। वे सोचते हैं, ये तीन-चार दिन कमाई के है, बस दब कर कमाई कर लो। जबकि वहाँ हर काम करने वाले को अपनी छुट्टी, अपने परिवार के साथ, अपनी ज़िंदगी का आनंद लेने का हक़ दिया जाता है, सरकारी तौर पर।

सुबह आठ-नौ बजे स्टोर खुल गए हैं तो शाम को छह बजे बंद हो जाएँगे। भले कोई आए, वहाँ किसी के लिए कोई विशेष प्रबंध या वी.पी. आई ट्रीटमैंट नहीं है। सभी को लाईनों में लग कर अपनी ट्राली में सामान

लेकर बिल भरना होता है, जो अनेक मशीनों पर 'स्वयं' ही भरना होता है। बहुत कम स्टोर्स में कोई बिल लेने के लिए खड़ा होता है। इतने बड़े स्टोर्स में आदमी जैसे खो ही जाता है। आपको सामान दिखाने के लिए या आगे बढ़ कर उस सामान की विशेषताएँ बताकर सामान बेचने वाले सेल्सगर्ल या सेल्समैन नहीं होते। सामान रैक्स में रखा है, कीमत का टैग लगा हुआ है, जो आपको पसंद हो, उठा लो...नहीं तो कोई आकर वहाँ सामान ख़रीदने के लिए ज़ोर नहीं डालेगा। परन्तु कई बार कोई साइज़ समझ में न आए या कुछ पूछना पड़े तो वहाँ बहुत कम असिस्टैंट होते हैं, वे अपनी ओर बताने का प्रयास करते हैं परन्तु कोई ख़ास मदद नहीं मिलती। वहाँ एक बात देखी कि आप ले गए सामान को आसानी से वापस कर सकते हैं, बल्कि उस स्टोर की किसी भी शाखा में, जो नज़दीक हो, एक महीने से तीन महीने के बीच सामान वापस किया जा सकता है। हर सामान पर वापसी की तारीख़ लिखी होती है। मज़े की बात है कि सामान वापसी के लिए उसके बदले में कोई अन्य सामान ख़रीदना ज़रूरी नहीं, बस उसे समय पर वापस करना ज़रूरी होता है। इसी प्रकार वहाँ पैट्रोल पंप पर जाकर अपनी गाड़ी में पैट्रोल स्वयं भरना पड़ता है। रकम कार्ड द्वारा ऑटोमेटिक ढंग से भरी जाती है। वहाँ प्रत्येक कंपनी के पैट्रोल के दाम अलग-अलग है। आप चाहो तो किसी भी मार्ट या स्टोर के सदस्य बन कर, अपने ख़रीदे सामान पर कुछ कुछ प्रतिशत की कटौती पा सकते हो।

000

अमेरिका का नाम लेते ही न्यूयॉर्क सिटी याद आने लगता है। इस नाम का एक शहर है और एक स्टेट है। घूमने व देखने के लिए बेहद आकर्षित सिटी है। यहाँ प्रसिद्ध टाइम्स स्क्वेयर, वॉल स्ट्रीट, बिग बुल, कई चर्च, ब्रुकलिन ब्रिज, नज़दीक ही मैनहटन और कई मार्किटस हैं। न्यूयॉर्क के एक प्रसिद्ध चर्च सेंट पैट्रिक कैथड्रल में हमने इतवार शाम को 'प्रार्थना' में हिस्सा लिया। जिसमें 'पोप' अपनी पारंपरिक ड्रैस में हाज़िर थे। चर्च भरा हुआ था। दूसरे देशों के बहुत सारे लोग उस

ऐतिहासिक चर्च में मौजूद थे। उनके बीच में अलग-अलग सीटों पर हम भी मौजूद थे। वे सभी पोप को कहे कथनों को दुहराते, कभी खड़े होते, कभी घुटने टेक कर बैठते रहे। हालाँकि हमें उन शब्दों की पूरी तरह से समझ नहीं आई परन्तु यह आसानी से समझ में आ गया कि परमात्मा को याद कर, बार-बार उसकी कृपा के लिए धन्यवाद किया जा रहा है। ऐसे शब्दों को समझने की नहीं, महसूस करने की आवश्यकता होती है। बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार से मुस्कराहट, हँसी और प्यार भरी नज़र बिना किसी भाषा के, बिना बोले, बिना जान-पहचान के भी सरलता से समझ में आ जाती है। जब हम परमात्मा को सर्वव्यापी मानते है, सभी धर्मों को एक समान कहते हैं, फिर शब्दों की अहमीयत कहाँ रह जाती है...! परन्तु सभी जगहों के इतने आलीशान चर्चेज़ में जगह-जगह पर लिखा देखा कि 'एक कैंडल जलाने के लिए एक या दो डॉलर भेंट पेटी में डालो।' यह थोड़ा सा अजीब लगा... कैंडल जलाने के बदले में पैसे माँगना...। हमें तो गुरुद्वारों की आदत है, मन करें तो माथा टेकते हुए गोलक में माया डालो या न डालो, परन्तु ढेर सारा कड़ाह प्रशादि अवश्य लो। लगे हाथ लंगर भी छक कर जाओ! भई वाह! न्यूयॉर्क के प्रसिद्ध टाइम्स स्क्वेयर में जिस दिन हम वहाँ थे, संयोग देखिए, उस दिन वहाँ 'केरला डे' का आयोजन किया जा रहा था और वहाँ केरल की नामचीन नृत्य मंडली नृत्य और गायन का कार्यक्रम पेश कर रही थी। वहाँ सामने की बड़ी स्क्रीन पर केरल के विकास को दर्शाया जा रहा था। वहाँ की उस चमचमाती शाम में, दुनिया भर के लोगों के सामने इंडिया और केरल का नाम देख-सुनकर हमें अत्यन्त गर्व महसूस हो रहा था। टाइम्स स्क्वेयर की चकाचौंध और भीड़ को देखना और उसका हिस्सा बनना अपने आप में एक यादगार अनुभव है।

एक बार यहीं पर ब्रुकलिन ब्रिज से वापस आते हुए रात को नौ बजे बज गए। उस दिन शनिवार रात को सड़कें एकदम सुनसान थी। हमें अभी खाना भी खाना था। बेटे ने बड़ी मुश्किल से ऑनलाइन एक छोटा सा रेस्तराँ ढूँढ़ा। हमने बेस्वाद चाइनीज़ खाना खाया। उस रेस्तरां से वह पार्किंग स्थान कोई दो-ढाई किलोमीटर दूर था, जहाँ सुबह हमने गाड़ी पार्क की थी। उस रात न्यूयॉर्क के प्रसिद्ध शहर की सुनसान सड़कों से गुज़रते हुए डर लग रहा था क्योंकि थोड़ी-थोड़ी दूरी पर कोई न कोई काला स्मैकिया व्यक्ति नज़र आ रहा था। हम तीनों एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर चल रहे थे, बेटा साथ-साथ मोबाइल पर रास्ता भी देख रहा था। इस बात का भी डर था कि कोई हाथ से फ़ोन ही छीन कर न ले जाए। मुझे रात का वह रास्ता भूलता नहीं, जहाँ बहुत डर से, बिल्कुल ख़ाली सड़कों पर, एक-दूसरे के हाथ पकड़ कर निकले। जबकि दिन के समय यह शहर लोगों की आवाजाही और कारों-बसों के निकलने के कारण भरा रहता है। न्यूयॉर्क शहर ऐसा है, जिसे कोई भी एक बार में देख नहीं सकता। हम भी तीन से चार बार न्यूयॉर्क घूमने के लिए गए। यहाँ नई और पुरानी तरह की बड़ी-बड़ी इमारतों को देखा जा सकता है। परन्तु शनिवार-रविवार को यहाँ सड़कों पर कूड़े के बड़े-बड़े काले थैले भरे हुए हर दुकान के आगे पड़े दिखाई देते हैं और कई बार पास से निकलने पर बदबू भी आती है। फिर भी न्यूयॉर्क सिटी का चार्म और अपना ही ग्लैमर है, जिसे यहाँ से गुज़रते हुए महसूस किया जा सकता है। यहाँ नई और पुरानी तरह की बड़ी-बड़ी इमारतों को देखा जा सकता है।

000

इसी प्रकार 'फिंगर्स लेकस' नामक स्थान पर कई झरने और झीलों को देखते हुए, एक 'थाई रेस्तराँ' में बहुत ही स्वादिष्ट खाना खाकर निकलते हुए रात के नौ बजने वाले थे। जबकि अपने घर पेंसिलवेनिया पहुँचने में हमें साढ़े चार घंटे का समय लगना था। वहाँ समय इस प्रकार से है कि रात के नौ बजे तक सूरज खड़ा दिखाई देता है और फिर पलक झपकते ही, सूरज पता नहीं कहाँ छिप जाता है और एकदम से ही अँधेरा हो जाता है। ऐसा शायद इस कारण है कि अमेरिका जहाँ स्थित है, वहाँ 'होरिजेंटिकल भूभाग होने के कारण ऐसा होता है। (मुझे इस बारे में पूरी जानकारी नहीं, बस कुछ सुना है।) ख़ैर, गाड़ी में बैठने तक रोशनी थी, कुछ ही दूर जाने पर घुप्प अँधेरा हो गया। वहाँ सड़कों पर हमारे देश की तरह बत्ती नहीं लगी होती। वहाँ इतने हाई-वे हैं, कहाँ तक बत्तियाँ लगाई जा सकती हैं। सड़कों पर 'रिफलैक्टर' लगे होते है, जो गाड़ी की लाइट के साथ चमकते है। पहले एक-डेढ़ घंटा तो आपस में बातें करते, हँसी-मज़ाक करते हुए निकल गया। उसके बाद जी.पी.एस. ने जो रास्ता दिखाया, वह एकदम सुनसान था। हाई-वे की तेज़ भागती गाड़ियों की बजाय हम किसी जंगल की ओर जा निकले। आधी रात का समय, दोनों ओर घना जंगल, घुप्प अँधेरा और पतली सी सड़क पर जाती हमारी एकमात्र गाड़ी। बहुत देर तक हम पता नहीं कहाँ-कहाँ से निकलते रहे। आदमी न आदमी की जात! एक-दो बार कोई जानवर तेज़ी से हमारी गाड़ी के आगे से भाग कर निकला। कुछ आगे जाकर, एक आदमी मस्त चाल से वहाँ से गुज़रते देखा। परन्तु उसने हमारी ओर देखा तक नहीं। भगवान् जाने कौन था! अब हम गाड़ी में चुपचाप में बैठे, बस यही प्रार्थना कर रहे थे कि किसी तरीक़े यहाँ से निकल जाए। कहीं तो बड़ी मुख्य सड़क नज़र आए। बेटा गाड़ी चलाते हुए बौखला गया। उसे मोबाइल पर लगा जी.पी. एस. दिखाई देना हट गया। आँखों के आगे अँधेरा नज़र आए। मेरी बहू ने अपने हाथ में मोबाइल लेकर उसे रास्ता बताना शुरू किया। एक जगह पर पहुँच कर रास्ता ख़त्म हो गया और घना अँधेरा।

हाथ को हाथ दिखाई न दें। समझ में न आया, किस ओर जाना है, कहाँ मुड़ना है। दो-चार मिनट बाद लड़के ने बाईं ओर गाड़ी को मोड़ लिया, शायद कोई रास्ता मिल जाए। इस प्रकार इधर-उधर भटकते, टक्कर मारते, कोई डेढ़ घंटे के बाद जाकर बड़ी सड़क मिली। जहाँ से घर का रास्ता 15 मिनट का बताया जा रहा था कि अचानक ही जी.पी. एस. एक घंटा दिखाने लगा। कहाँ हम सुख की साँस लेने लगे थे कि रास्ता और बढ़ गया। उस समय एक मुश्किल यह भी थी कि गाड़ी में पैट्रोल बहुत कम रह गया था। कुछ आगे जाकर एक पैट्रोल पंप से पैट्रोल भरा। परन्तु उस रात के बाद मैंने बेटे से कह दिया, आगे से कभी भी इतनी देर से घर की ओर वापसी नहीं करनी, चाहे कुछ हो जाए।

वहाँ क्या है कि कभी सड़क बहुत ऊँची आ जाती है, कभी ढलान आ जाती है। उन्होंने कहीं भी ज़मीन को समतल करने की कोशिश नहीं की, वह जिस प्रकार से आ रही है, उसी प्रकार ही वहाँ सड़क बना दी गई है। ऐसा बहुत स्थानों पर मिलता है। फिर वहाँ घने जंगल में भी सड़क बनी हुई है, कहीं कोई खड्ड या गड्डा नहीं, कहीं कोई कीचड़ या रुकावट नहीं। मक्खन जैसी सड़क....जिस पर कार फिसलती गई। हम मोबाइल पर जी.पी. एस. के सहारे, किसी प्रकार अपने शहर, अपने घर पहुँच ही गए। हालाँकि वह सूनी, घने जंगल वाली रात हमें कभी भूलेगी नहीं, जब रास्ता ही ख़त्म हो गया और एकदम अँधियारे में घिरी हमारी गाड़ी। और उस गाड़ी में बैठा हमारा परिवार, एकदम ख़ामोश...अपने ही भीतरी डर से भयभीत...! उस रात को महसूस करते हुए, बाद में सोचा, भले रास्ता एकदम सुनसान था, घना जंगल था, आस-पास कोई नहीं था। हम ख़ुद से डर रहे थे। यदि ऐसा कहीं भारत में हम कहीं आधी रात को फँस जाते और किसी जंगल में जा घुसते, तब हमारी क्या हालत होती... यहाँ तो अँधेरी सड़कें ही बहुत है, कोई कहाँ छिपा बैठा हो...यह सोच कर ही धुक्कधुकी होने लगी। रात में दिल्ली जैसे शहर में अब टैक्सी और कैब चालक भी सुरक्षित नहीं रहें, लड़कियों/औरतें तो कभी भी सुरक्षित नहीं रही।

000

'रोड आइलैंड' में बहुत सारे मैंशन्स है, यहाँ कई लोगों के पास प्राइवेट बीचेस भी हैं। इन मैंशन्स को देखने की टिकट है, जो कम नहीं, अठाईस से तीस डॉलर प्रति व्यक्ति है। असल में अमेरिका में हर जगह देखने के लिए टिकट लेनी पड़ती है, भले कोई पार्क हो, लाइब्रेरी, म्यूज़ियम हो या मैंशनस। शायद इसी कारण उन्होंने अपनी प्रत्येक चीज़, स्थान और अपनी विरासत को सहेज कर, सँभाल कर रखा है।

रोड आइलैंड स्टेट में बहुत बड़ी 'आर्ट यूनिवर्सिटी' है। यह सारा इलाका छात्रों से भरा नज़र आया, जहाँ हमने चीनी, कोरियाई, यूरोपियन के साथ-साथ कुछ भारतीय नौजवानों को भी देखा। वहाँ एक बहुत बड़ा 'आर्ट म्यूज़ियम' देखने के लिए हम गए, जहाँ उनके छात्रों द्वारा बनाई गई तस्वीरों के साथ अन्य कई कलाकृतियाँ, कुछ प्रसिद्ध कलाकारों द्वारा डोनेट की गई हैं। वहाँ हमने कुछ भारतीय आर्टिस्टों की भी कुछ तस्वीरें देखीं, जिनमें एक 'हरित क्रांति' के बुरे प्रभावों को उजागर कर रही थी। वहीं खड़ी एक अधेड़ उम्र की अटैंडेंट ने मुझे देख कर एक ओर तस्वीरें देखने का इशारा किया। उस दीवार पर एक बंगाली आर्टिस्ट की 'सीरीज़' थी। मैंने उस अटैंडेंट का धन्यवाद किया। पाँच मंज़िल उस गैलरी में घूमते हुए, जब वापस

जाने के लिए कहा तो बेटा ज़बर्दस्ती सबसे ऊपरी और आख़िरी मंज़िल पर ले गया। वह पूरी मंज़िल 'अध्यात्म' को समर्पित थी। जहाँ हमने विष्णु, शिव-पार्वती और नटराज की अनेक कृतियाँ देखीं और सबसे अंचभित हुए, वहाँ विशाल आकार की लकड़ी की महात्मा बुद्ध की कृति को देख कर, जो दुनिया में बुद्ध की विशााल आकृतियों में से दूसरी मानी जाती है और लकड़ी की बनी पहली बड़ी। इसे किसी ने यहाँ डोनेट किया था। लगा, अगर इस मंज़िल पर थकावट के कारण न आते तो सचमुच इतनी अद्‌भुत कृति को देखना गवाँ बैठते। इसके लिए फिर बेटे का धन्यवाद किया।

000

'बोस्टन' भी बहुत ख़ूबसूरत शहर है परन्तु न्यूयॉर्क से थोड़ा सँकरा लगा। यहाँ बहुत सारे सरकारी और प्राइवेट कार्यालयों की बिल्डिंगें, बड़े-बड़े शो-रूम्स हैं। यहाँ पार्किंग सबसे अधिक महँगी है, दो घंटे के बीस डॉलर। यहाँ प्रसिद्ध मैसीसिच्यूट इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी है, जिसका परिवेश बहुत ही ख़ूबसूरत है। यहाँ भी हमें अधिकतर युवक छात्र देखने को मिले। 'न्यूजर्सी' के बीच्स बहुत सुंदर हैं और 'स्टेच्यु ऑफ लिबर्टी' कला का अद्‌भुत नमूना! 'ओशन सिटी' का बीच बेहद ख़ूबसूरत है। रात को किसी हिल स्टेशन के 'माल रोड' जैसा नज़ारा लगता है। वहाँ काफी कैसीनो होने के कारण बहुत रौनक रहती है। जो शोहरत अब 'लॉस वेगस' को प्राप्त है, पहले वह यहाँ के कैसीनो को प्राप्त थी। बहुत बढ़िया जगह।

000

'फ़िलाडेल्फ़िया' अमेरिका का बहुत ही पुराना शहर, जिसका सेंट्रल हिस्सा बहुत ही ख़ूबसूरत है। इस हिस्से के पूरे चक्कर पर देखने के लगभग 14 स्थान आते हैं। जहाँ म्यूज़ियम, आर्ट गैलरी, पार्कस के अलावा इंडीपेंडस हॉल, लिबर्टी बैल मौजूद है। यहाँ पर ही प्रसिद्ध 'रॉकी स्टेच्यू' है, जिसके साथ फ़ोटो खिंचवाने और खींचने के लिए दुनिया भर के लोग लाइनों में खड़े होकर अपनी बारी का इंतज़ार करते हैं। इस शहर से जुड़ा हमें

अनजाने ही एक बढ़िया अनुभव प्राप्त हुआ। शाम के समय इस के 'वाटर फ्रंट' पर घूमने जाने पर वहाँ बोर्ड लगे देखे कि रात को आठ बजे वहाँ अमेरिकी सेना की ओर से 'म्यूज़िक कंसर्ट' पेश किया जाएगा, जो 4 जुलाई के स्वतंत्रता दिवस को समर्पित था। संयोग से उस दिन 2 जुलाई शनिवार का दिन था। हमारे देखते ही देखते लोग परिवारों सहित उस प्रोग्राम को देखने के लिए जुड़ने लगे। वहाँ सामने झील थी। वहाँ आने-जाने के लिए एक रास्ता छोड़ कर, बाकी स्टेडियम की तरह ऊँची-ऊँची सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। सारी सीढ़ियाँ खचाखच भर गईं। कई लोग अपने साथ फोल्डिंग कुर्सियाँ लेकर आए थे। यह प्रोग्राम करीब डेढ़ घंटे का था। हमारे सामने ही मिलट्री बैंड का पूरा सैटअप लगाया गया। उसमें नौजवान लड़के-लड़कियों के साथ बड़ी उम्र के भी वादक शामिल थे। सभी अपनी पारंपरिक यूनिफॉर्म में, कई अपने पारंपरिक वाद्य-यंत्रों के साथ। सचमुच उन्होंने अपनी धुनों से मनमोहक समय बाँधा, एक-दो गीत शहीदों को समर्पित करते हुए गाये गए। अनजाने में ही हम इस ऐतिहासिक समारोह का हिस्सा बन गए। वहाँ की बड़ी सीढ़ियों पर मौजूद सैंकड़ों अमेरिकियों के साथ हमारे जैसे कुछ विदेशी पर्यटक भी शामिल थे, उनके स्वतंत्रता दिवस को मनाते हुए। उनके साथ तालियाँ बजाते, उनके राष्ट्रीय गान का सम्मान करने के लिए खड़े होते हुए, उनके शहीदों के साथ अपने देश के शहीदों को याद करते हुए...! उसके बाद क़रीब बीस मिनट तक अतिशबाजी का मज़ा लेने के बाद, हम उस दिन को एक यादगार के रूप में सँभालते हुए, अपनी गाड़ी की ओर चल दिए।

000

'वाशिंगटन डी. सी.' संयुक्त अमेरिका की राजधानी है, जहाँ प्रशासनिक प्रबंधन की अत्यन्त बड़ी-बड़ी, विस्तृत इमारतें और अमेरिकी राष्ट्रपति का निवास स्थान प्रसिद्ध 'व्हाइट हाउस' है। जिसका रौबदाब और दबदबा सारे विश्व पर छाया रहता है। हालाँकि देखते हुए वह अपने यहाँ के 'राष्ट्रपति भवन' से काफी छोटा लगा। उसके आस-पास लॉन्स और ग्रिल के पास खड़े होकर सारी दुनिया के लोग फ़ोटो खींच रहे थे। वहाँ वर्दीधारी पुलिस और गार्ड्स मौजूद होने के बावजूद भी आम लोगों को परेशान नहीं करते। हमारे देश की तरह वी.वी.पी. आई. ट्रीटमैंट या ज़रूरत से अधिक सिक्योरिटी गार्ड्स खड़े नज़र नहीं आए, जो बिना वजह डंडे खड़काते, लोगों को इधर-उधर धकेलते, राजसी लीडरों से अधिक रौब दिखाते हैं। न ही एक किलोमीटर पहले रोक कर, बैरीकेटर्स लगे दिखाई दिए और न ही कोई चैकिंग हुई।

वहाँ कई म्यूज़ियम देखने वाले हैं, जिनमें से एक 'स्पेस म्यूज़ियम' है, जहाँ 'राइट्स ब्रदर्स' द्वारा बनाए गए पहले हवाई जहाज़ से लेकर स्पेस में उतरने वाले रॉकेट्स की तैयारी और पूरा इतिहास संरक्षित रखा गया है। यहीं पर काफी दूर अब्राहिम लिंकन की बड़ी मूर्ति और शहर के बीचों-बीच खड़ी 'डी. सी. लॉट' सारे शहर में दिखाई देती है। हालाँकि यह शहर बाकी शहरों के मुकाबले थोड़ा छोटा कहा जा सकता है। पूरा दिन ख़ूब घूमने-फिरने के कारण, रात को मुझे बहुत थका देख कर बेटे ने पास से गुज़रती एक टैक्सी को हाथ देकर रोक लिया ताकि हम अपनी कार पार्किंग तक पहुँच सके। टैक्सी का दरवाज़ा खोलते ही ड्राईवर ने 'आओ जी' कहते हुए हमारा स्वागत किया। मैंने समझा कोई पंजाबी भाई है। मैं अपने स्वभाव अनुसार उससे बातें करने लगी। बातों-बातों में ही मैंने पूछा, 'आप को देश गए, कितना समय हो गया।' उसने कहा, 'अब

लाहौर जाने के बारे में सोच रहा हूँ। ओह तो यह 'पाकिस्तानी वीर' है। उसने कहा, आपकी तरह हमारे पास भी गुजरात है परन्तु शहर रूप में, स्टेट नहीं। मैंने कहा, 'आप 'पंजा साहिब' गए है।' उसने कहा, 'नहीं, अभी गया नहीं। परन्तु जाऊँगा ज़रूर।' मैंने तुरन्त कहा, 'जब भी वहाँ जाना, मेरी ओर से भी माथा टेक देना।' उतरने से पहले बेटे ने उससे वहाँ के चर्च का रास्ता पूछा। वह बताने के बाद उसने तुरन्त कहा, 'चर्च के साथ ही एक सड़क मुड़ कर, वहाँ गुरुद्वारा है। आप वहाँ भी जा सकते हो।' मुझे लगा, उस 'वीर' ने अपनी ओर से हमें एक और गुरुद्वारे के दर्शन का रास्ता बताया। शायद मेरी ओर से सौंपी गई ज़िम्मेदारी को याद रखते हुए, इस गुरुद्वारे के बारे में बताना, अपना कर्त्तव्य समझा। हमारे उतरते ही उसने कहा, 'रब राखा।' बल्ले ओए, भाषा की मीठी साझ ! कैसे दूर विदेशों में भी अपना बना लेती है। अगले दिन हम उस गुरुद्वारे गए, कीर्तन सुना और लंगर भी छका।

000

छोटे बेटे का जन्मदिन आया, हम वहाँ के मशहूर 'रैड रॉबिन' रेस्तराँ में गए। एक अधेड़ उम्र की भारी सी स्त्री हमें 'सर्व' कर रही थी। बहुत ख़ुशमिजाज़, भले वह थकी हुई लग रही थी परन्तु बहुत फुतीर्ली थी। उसे पता लगा, बेटे का जन्मदिन है, वह स्टाफ को साथ ले आई। उन्होंने तालियाँ बजा कर 'बर्थ डे गीत' गाया। वहाँ 'टिप कल्चर' है, आपको बिल के अनुसार कम से कम दस परसैंट टिप देना ही पड़ता है; क्योंकि इन स्थानों पर काम करने वालों की कमाई का अधिकतर ज़रिया यही है, सिर्फ तनख़्वाह से गुज़ारा नहीं होता। मेरे छोटे बेटे ने उसे बाईस परसैंट टिप दी, जो ऑनलाइन बिल भरते समय ही दे दी गई। अगले ही पल वह लेडी हमें 'थैंक्यू' कहने के आई। उसकी आँखें और स्वर भर्राए हुए थे। हमने देखा कि स्टॉफ़ के बाकी सदस्य भी उसे इतनी बड़ी टिप मिलने पर बधाई दे रहे थे। उस लेडी के चेहरे पर मुस्कराहट देख कर छोटे बेटे को लगा, उसका जन्मदिन बहुत सफल हो गया।

000

कहीं भी घूमते हुए, भीड़ भरे इलाकों में भी मुझे किताबों की दुकान और लाइब्रेरी के बोर्ड नज़र आ ही जाते थे। जब भी सुपर मार्किट्स जाने पर मैं इधर-उधर हो जाती तो परिवारवाले समझ जाते कि मैं अवश्य किताबों के रैक्स के पास खड़े किताबों को उलट-पलट कर देख रही होऊँगी। उनके द्वारा खोजने पर मैं वहीं खड़ी मिलती। किताबों की कई बड़ी दुकानों में मैंने भारतीय संस्कृति और धर्म से संबंधित कई किताबें देखी, यहाँ तक कि अंग्रेज़ी में जादू-टोने और तंत्र-विद्या के मंत्रों की किताबें भी देखी। अमेरिकी लोग भी भूत-प्रेत में यकीन रखते हैं। अब यह बात तो जगजाहिर है कि तंत्र-विद्या और अन्य अंधविश्वासों के लिए भारत से बड़ा कोई देश नहीं।

नियागरा फॉल्स के ग्राउंड से गुज़रते हुए, मुझे लगा, जैसे मैंने पंजाबी में कुछ पढ़ा है। आगे बढ़ चुके दो क़दमों से मैं पीछे आई और देखा कि दो लड़कियाँ बहुत सारी किताबों का ढेर लगाए खड़ी थीं। उनमें सबसे ऊपर पंजाबी में 'यीशू मसीह' लिखा, किताबचा पड़ा था। असल में सारी ही किताबें यीशू मसीह से संबंधित थी। मैंने उन लड़कियों से कहा, 'यह मेरी मातृ-भाषा पंजाबी में है।' उन्होंने एकदम से कहा, 'फ्रॉम इंडिया।' मैंने ख़ुश होकर हाँ कहा। उन्होंने वह किताब मुझे दी और साथ में फोटो भी खिंचवाई। उन्होंने बताया, उनके पास अन्य भारतीय क्षेत्रीय भाषाओं में भी छपी किताबें है। जहाँ अमेरिका के एक शहर में मैं पंजाबी की किताब देखकर ख़ुश हुई, वहीं उदास भी हो गई। हम अपने घरों, बच्चों और परिवारों में अपनी 'माँ-बोली' को भुलाते जा रहे हैं। अपनी विरासत के स्थान पर पश्चिमी देशों की नकल कर रहे है। ख़ुद को 'अल्ट्रा मॉर्डन' दिखाने के लिए उनकी बुरी आदतों को अपना रहे हैं। जबकि बाहर के देश अपनी विरासत को बहुत सँभाल कर रखते है। अपने लेखकों, कलाकारों और नायकों का सम्मान करते हैं। जगह-जगह पर उनकी मूर्तियाँ लगाते हैं, उनके निवास-स्थानों को संरक्षित करके रखते हैं। पता नहीं, हम पश्चिमी देशों से उनकी हर बुरी आदत ही क्यों सीखते हैं, जबकि हम न उनसे उनकी अच्छी आदतों व बातों को सीखते हैं और न ही हमें अपनी अच्छी परंपराओं और मान्यताओं को सँभाल कर रखना हमें आता है।

यह सच है कि वहाँ वास्तव में आसमान नीले रंग का दिखाई देता है, झीलें, झरनों और समुद्र के पानी एकदम साफ-शफ़्फ़ाक! इनके आस-पास, पार्कों या पानी में कहीं भी कोई कूड़ा, पानी की ख़ाली बोतलें, पान के दाग़, बीड़ी-सिगरेट के टुकड़े और अन्य कोई कूड़ा-कबाड़ा नज़र नहीं आता। मौसम बहुत रंग बदलता है। एकदम बादल और मूसलाधार बारिश, लगता है, अब यह रुकेगा नहीं, परन्तु थोड़ी देर बाद धूप निकल आती है, वह भी एकदम तीखी और चुभन भरी। कहीं कोई रुका हुआ पानी नज़र नहीं आता। जाम नहीं लगता। सब कुछ अपनी स्वाभाविक गति से प्रवाहित होता है। प्रदूषण रहित हवा में साँस लेते, चारों ओर हरियाली में आप कहीं भी बिना किसी डर, भय व सहम के सहजता से घूमते हैं। वहाँ कोई लड़कियाँ या औरतों को घूर कर नहीं देखता। उनके कपड़ों को लेकर आलोचना नहीं करता। उनकी चाल-ढाल पर छींटाकशी नहीं करता। हमने सारे बीचस पर सभी आयु की लड़कियों व औरतों को 'बिकनी' पहने वहाँ तैरते और घूमते देखा। परन्तु कहीं उनकी ओर किसी पुरुष को घूरते नहीं देखा। कालोनी में बच्चे कहीं भी खेलते नज़र आ जाते हैं, जिनमें भारतीय, यूरोपीय और अमेरिकी सभी शामिल होते हैं। वे कहीं भी गेंद फेंक जाते, साइकिलें छोड़ जाते। वे

वहीं कई -कई दिनों तक वैसी ही पड़ी रहती, कोई उन्हें छेड़ता न हिलाता। उठा कर ले जाने का तो सवाल ही नहीं। सभी छोटे लडके-लड़कियाँ साइकिल चलाते, आपस में खेलते। कहीं कोई डर-ख़तरा नहीं, किसी बच्ची, किशोर लड़की या सैर करती जवान या बड़ी उम्र की औरत को...। देर रात तक भी! वहाँ कोरियर से आया कोई भी सामान, घर के बाहर रख दिया जाता है। उसे कोई भी छेड़ता या हिलाता तक नहीं। कई बार कई-कई दिनों तक भी वह वैसे ही पड़ा देखा।

तीन महीनों से अधिक समय वहाँ रहते हुए, इतने शहरों में जाते हुए, अनेक सड़कों से गुज़रते हुए, कहीं एक बार भी अमेरिकी राष्ट्रपति या उसके अन्य मंत्रियों के न कहीं कोई होर्डिंग्स लगे देखे और न ही पोस्टर देखे। सड़कों पर लगे होर्डिंग्स सामानों के या प्रचार संबंधी ही नज़र आए। अपने यहाँ हर जगह पर प्रधानमंत्री के होर्डिंग्स तो नज़र आते ही हैं, क्षेत्रीय नेताओं के पोस्टरों के साथ भी दीवारें पटी रहती हैं। वहाँ न कोई नारेबाज़ी न दंगा-फसाद, न लड़ाई न गालियाँ...कुछ नहीं। बस शांत माहौल, जिसमें बैठ कर मन सुकून से भर जाए। दिल्ली के शोरगुल और ट्रैफिक के शोर से उकताए होने के कारण, यह सब बहुत सुखद लगा। बेटे-बहू ने बहुत घुमाया। बहुत ध्यान रखा। वैसे भी सारा परिवार एक साथ था, इसलिए हम सभी बेहद ख़ुश थे। वहाँ भारतीय दोस्त-मित्र और कुलीग मिल कर, एक-दूसरे के दुख-सुख के काम आते है। आपस में मिलकर त्यौहार मनाते हैं। विदेश में यही परिवार उनके अपने निकटवर्ती होते हैं। हम भी उसके कई दोस्तों के घर खाने पर आए और उन्हें भी घर पर बुला कर एक 'गेट-टुगेदर' किया।

सारी दुनिया की तरह वहाँ भी कोविड के बाद हालात बहुत ख़राब हो गए हैं। महँगाई बहुत बढ़ गई है। जो चीज़ किसी सुपर मार्किट या स्टोर में ख़त्म हो गई, पूछने पर उनके पास कोई जवाब नहीं होता, वह फिर कब मिलेगी। सुना है, बंदगाहों पर कंटेनर ख़ाली खड़े हैं। चीन के साथ संबंध ठीक न होने के कारण सामान की डिलीवरी नहीं हो रही। कहाँ पिछली बार कारों के शो-रूम्स भरे नज़र आते थे, अब सभी ख़ाली पड़े हैं। नई-पुरानी सभी कारें बहुत महँगी हो गई हैं। और बिना कार के आप कहीं नहीं जा सकते। वहाँ कोई रिक्शा, स्कूटर, ई-रिक्शा नहीं, जिस पर बैठ कर आप अकेले बाज़ार जाकर ग्रॉसरी का सामान ले आएँ या शॉपिंग कर ले। कभी कहीं रिश्तेदारों से मिल आए। इसके लिए आप को कार चलाना आना चाहिए या फिर ड्राइवर हो। परन्तु ज़ाहिर सी बात है, ड्राइवर को वहाँ अफोर्ड नहीं किया जा सकता। यह मौज अपने यहाँ ही है, नौकर, बाइयाँ, घरेलू नौकर-नौकरानी, ड्राइवर, असिस्टैंट भले कुछ भी रखो। पैसे देकर यहाँ कोई भी काम आसानी से करवाया जा सकता है। जबकि वहाँ आपको अपने घर का सारा सामान जैसे सोफा सैट, अलमारियाँ, टेबल और बैड इत्यादि तक को मॉल्स से लेकर ख़ुद ढोना पड़ता है और फिर उन्हें स्वयं ही खोल-खोलकर सैट करना पड़ता है।

आख़िर वापसी का दिन आ गया। इंडिया पहुँचने पर दोस्तों व रिश्तेदारों द्वारा कहा और पूछा गया, 'आपका वहाँ से वापस आने का दिल कर रहा था? हाय! यहाँ तो बहुत ही गर्मी है, सड़ी हुई।' मुझे ऐसा कुछ नहीं लगा। इसी गर्मी में सारी उम्र रहते आए है। दो-तीन महीनों में क्या बदल जाएगा। मुझे अपना देश, अपना शहर बहुत प्यारा है। हाँ, कुछ बातें (अब अधिकतर) अच्छी नहीं लगती। सिस्टम के कारण, सियासी दाँवपेचों के कारण, परन्तु इनके कारण अपना घर-बार छोड़ कर जाने का भी दिल नहीं करता। बात तो वही है, हम ख़ुद अपने किसी की कितनी भी बुराई कर लें, उसकी ग़लतियाँ निकाल कर, नाक-मुँह सिकोड़ लें परन्तु किसी बाहरवाले से अपनों की बुराई नहीं सुन सकते। जो मौज यहाँ हैं, वे बाहर नहीं मिलती और जो बाहर मिलता है, उसके लिए कई बार अपनों से दूर जाना पड़ता है।

सच है, 'हर किसी को मुकम्मल जहाँ नहीं मिलता...कभी ज़मीं तो कभी आसमाँ नहीं मिलता....!!

000

लघुकथा

लाल बत्ती

कमलेश भारतीय

मैं आज अपनी कार में बेटी को यूनिवर्सिटी छोड़ने जा रहा था। आमतौर पर अपनी सरकारी लाल बत्ती वाली चमचमाती गाड़ी में छोड़ने जाता हूँ। लाल बत्ती देखते ही सिक्योरिटी पर तैनात सिपाही सैल्यूट ठोकना नहीं भूलते। पर आज ड्राइवर छुट्टी पर था। मैंने सोचा कि मैं ही अपनी कार में बेटी को छोड़ आता हूँ।

जैसे ही मेन गेट पर कार पहुँची, सिक्योरिटी वालों ने हाथ देकर रुकने का इशारा किया। मैं हैरान! जो मुझे देखे बिना सैल्यूट ठोकते थे, आज चैकिंग के लिए पूछ रहे थे; क्योंकि आज लाल बत्ती वाली गाड़ी जो नहीं थी।

मैंने बताने की कोशिश की कि मैं वही हूँ, जिसे आप बिना देखे सलाम करते हो लेकिन वे मानने को तैयार न थे! तो क्या लाल बत्ती ही मेरी पहचान है, मैं नहीं? और मैं आईकार्ड ढूँढ़ने लगा!

000

कमलेश भारतीय
1034 बी, अर्बन एस्टेट2, हिसार हरियाणा -125005
मोबाइल- 9416047075
ईमेल- bhartiyakamleshhsr@gmail.com

ग़ज़लें

सत्यशील राम त्रिपाठी

बहुत छोटी उमर में ही वो शैतानी नहीं करते
जो बच्चे टूट जाते हैं वो नादानी नहीं करते
जुदाई चाहता है तो उसे हँसकर विदा देना
मोहब्बत में कभी भी ख़ून को पानी नहीं करते
दिखाकर पेट मुझसे एक बूढ़े ने कहा था कल
अगर ये पेट भर जाता तो यजमानी नहीं करते
हमारे गाँव में तो आज भी तहज़ीब ज़िंदा है
यहाँ के लोग नेताओं की अगवानी नहीं करते
कहाँ जाने लगी हो, किससे मिलकर बात करती हो
अमाँ हम इश्क़ में इतनी भी निगरानी नहीं करते

000

शेर मेरे उनके होंठों पर चढ़े
जैसे कोई फूल देवों पर चढ़े
बात करिए बेवजह, ऐसा न हो
चुप्पियों की पर्त रिश्तों पर चढ़े
साफ करिए वक़्त रहते ही इसे
ढोंग का चश्मा न आँखों पर चढ़े
लील जाती हैं सड़क पगडंडियाँ
काश पगडंडी भी सड़कों पर चढ़े
खेल में जिसकी न थी कुछ भूमिका
शर्त है वह आज जाँघों पर चढ़े

000

अचानक आँख लग जाती है लोरी टूट जाती है
कि चाबी साथ रहती है तिजोरी टूट जाती है
मोहब्बत की जगह जब वासना उपहार मिलती है
बहुत छुप-छुप के रोती है किशोरी टूट जाती है
बुलंदी का पतंगा आसमाँ छूने को होता है
अचानक ही तभी साँसों की डोरी टूट जाती है
मोहब्बत की कहानी में यही हर बार होता है
चकोरा छूट जाता है चकोरी टूट जाती है
फरक छोटे बड़े का 'सत्य' रिश्ते में ज़रूरी है
अगर मज़बूत हो चम्मच कटोरी टूट जाती है

000

कभी इस दर से लौटेगी कभी उस दर से लौटेगी
मोहब्बत बाँटते हो तो ज़माने भर से लौटेगी
यही कुछ सोचकर पर्वत का पत्थर दिल पिघलता है
नदी जो जा रही है अब कहाँ पी-घर से लौटेगी
बनाकर चाय, कपड़े धोके फिर खाना बनाएगी
बहुत थककर बहू जो शाम को दफ्तर से लौटेगी
जिसे गैरों के हाथों सौंपकर इतरा रहा माली
कली नाज़ुक बहुत है अधमरी बिस्तर से लौटेगी
पतंगा भेजकर जिसको ज़मीं पर ला रहा रामू
करे कुछ भी मगर काकी न अब ऊपर से लौटेगी

000

वो ग्वाला दूध में कुछ ऐसे ही पानी पलटता है
कोई मक्कार जैसे संत की बानी पलटता है
किसी की सोच को कुछ ऐसे ही ज्ञानी पलटता है
कि जैसे जंग अपने दम पे सेनानी पलटता है
भले हों लाख पहरे अपनी चिट्ठी दे ही देता है
अगर सच्चा हो प्रेमी शाहे-निगरानी पलटता है
तुम्हारा काम बस्ती-गाँव को मक़तल बनाना है
मगर ये काम साहब! तख़्त-ए-सुल्तानी पलटता है
किसी छोटे से बच्चे की मोहब्बत गौर से देखो
खिलौनों में वो कैसे उम्र-ए-नादानी पलटता है

000

हमारे गाँव के मुखिया तो हल्द्वानी में रहते हैं
मगर जब लौटते दस-बीस अगवानी में रहते हैं
हमारे गाँव की हालत तो उस तालाब जैसी है
जहाँ मेंढक मगर के साथ ही पानी में रहते हैं
बहुत ऊँची इमारत के कभी नीचे जो देखोगे
ठिठुरते फूल जैसे लोग रजधानी में रहते हैं
किसी लड़की के चारों ओर लड़के देखकर समझा
अगर हों फूल तो काँटे भी निगरानी में रहते हैं
हमें इस ज़िंदगी के साथ कुछ ऐसे ही रहना है
अकेले जिस तरह से फूल वीरानी में रहते हैं

000

सत्यशील राम त्रिपाठी,
ग्राम रुद्रपुर, पोस्ट खजनी
जिला गोरखपुर, उप्र
पिन कोड - 273212
मोबाइल- 6386578871

लेखक बनने के 101तरीक़े

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

इस तरह की किताबें पहले बहुत प्रचलित थीं। बस स्टैंड पर, रेलवे स्टेशन पर या फुटपाथ पर ख़ूब बिकती थीं। मैंने भी कुछ ख़रीदी थीं, स्कूल और कॉलेज के दिनों में- '101 अनसुलझे रहस्य', '101 विश्व प्रसिद्ध घटनाएँ', '101 रोचक तथ्य'... आदि... आदि। मुझे यह समझ नहीं आया कभी कि ये किताबें हमेशा पूरे अंक 100 में कोई बात क्यों नहीं करती थीं, हमेशा एक सौ पर एक अंक बढ़ा कर बात करती थीं। कभी-कभी मैं बस स्टैंड पर अपनी बस के इंतज़ार में यूँ ही खड़े होकर देखता रहता था कि कौन आकर कौनसी किताब ख़रीदता था। 'स्मार्ट बनने के 101 तरीक़े', 'सर्वप्रिय बनने के 101 तरीक़े' जैसी किताबें ख़रीदने वालों पर मेरी विशेष नज़र रहती थी। पता नहीं उन किताबों को पढ़ कर कोई स्मार्ट या सर्वप्रिय बना या नहीं, मगर यह बात सच है कि वे किताबें ख़ूब बिकती थीं। अक्सर तो उन पर लिखने वाले का नाम भी नहीं होता था। पिछले दिनों मेरे साथ एक घटना हुई, उससे मेरे दिमाग़ में भी यह विचार आया कि मैं भी इस प्रकार की एक किताब तो लिख ही सकता हूँ। एक हमउम्र लेखक मित्र का दिल्ली से कॉल आया। इधर-उधर की बातों के बाद मित्र ने इच्छा व्यक्त की कि वह अपने संपादन की एक किताब शिवना प्रकाशन से प्रकाशित करवाना चाहता है। मैंने विषय की जानकारी ली तो मुझे विषय रोचक और अच्छा लगा, मैंने कहा कि भेज दो साफ़्ट कॉपी। मित्र थोड़ा झिझकते हुए बोला- 'भाई संपादक में क्या आपका भी नाम जाएगा ?' मैं इस प्रश्न पर हैरत में डूब गया, यह कैसा विचित्र प्रश्न है। मैंने कुछ अचरज से पूछा- 'संपादन आपका है मेरा नाम क्यों जाएगा ?' मित्र ने जो जानकारी प्रदान की उसने मेरी आँखें खोल दीं। मित्र ने बताया कि उसने किताब के प्रकाशन को लेकर पूर्व में एक-दो प्रकाशन संस्थानों में बात की थी, हर जगह उसे कहा गया कि किताब तो प्रकाशित हो जाएगी लेकिन संपादक में उसके नाम के साथ एक नाम और जाएगा। एक जगह से तो कहा गया कि किताब पर मुख्य संपादक के रूप में किसी दूसरे का नाम जाएगा, उसका नाम सह संपादक के रूप में जाएगा। मेरे लिए यह बिलकुल ही नई जानकारी थी। ऐसा कौन करता है भाई ? मेहनत करे मुर्ग़ी, अंडे खाए फ़क़ीर। चूँकि संपादन करना भी लेखन की ही श्रेणी में आता है, इसलिए यह बहुत आसान तरीक़ा है लेखक बनने का। कोई मेहनत करे और आप बस उस पर अपना नाम जोड़ कर अपनी किताबों की संख्या में वृद्धि कर लीजिए। मैंने कई लेखकों का पुस्तक में प्रकाशित होने वाला उनका परिचय पढ़ा है, वहाँ संपादित किताबों की इतनी लंबी सूची होती है कि पढ़ते-पढ़ते सुबह से शाम हो जाए। इस सूची को लगातार बढ़ाते रहने के लिए वे सतत् प्रयास करते रहते हैं। अगर आप उन संपादित पुस्तकों की सूची को ग़ौर से पढ़ेंगे तो पाएँगे कि वहाँ जो किताबें हैं, उन किताबों का होना न होना कोई मायने नहीं रखता है। संपादक-लेखक होने का एक फ़ायदा और भी है, वह फ़ायदा यह है कि हर कोई आपके संपादन में अपने आप पर एक किताब की कामना करने लगता है। जो कामना रख रहा है, वह तो आपको महान् लेखक मानेगा ही। इन संपादक-लेखकों की सूची में विधाओं की किताबें नहीं के बराबर ही होती हैं। मेरे मित्र ने मुझे जो जानकारी प्रदान की उससे तो मुझे एक ही तरीक़ा मिला है लेखक बनने का, इस तरह के और भी तरीक़े होंगे। यदि आज से ही संकलन करने जाऊँ तो संभव है जल्द ही 101 तरीक़ों का संकलन हो जाएगा। किताब हाथों-हाथ बिकने लगेगी। असल में हो क्या रहा है कि सोशल मीडिया का जो जिन्न गले पड़ गया है, उस जिन्न को रोज़ कुछ न कुछ खाने को चाहिए होता है। इसी कारण हर कोई लेखक बन जाना चाहता है। लेखक बनने का फ़ायदा यह है कि आपको सोशल मीडिया पर डालने के लिए मसाला मिलता रहता है। आप कभी किसी ग़ैर-लेखक व्यक्ति को देखिए, उसे अपनी सोशल मीडिया को रवाँ-दवाँ बनाने के लिए क्या-क्या नहीं करना पड़ता है। ख़ैर आज तो 101 तरीक़ों में से एक बताना था सो बता दिया, बाक़ी के 100 आपको मेरे संपादन में आ रही किताब में पढ़ने होंगे। **सादर आपका ही**

पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नए सेट में शामिल पुस्तकें

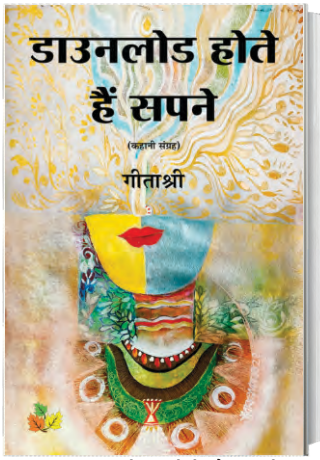

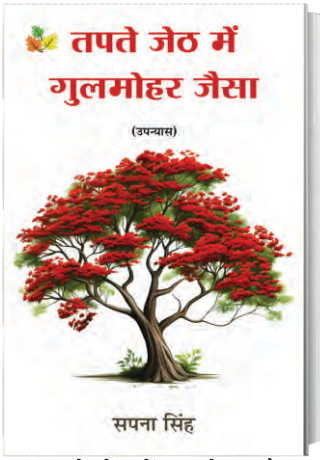

डाउनलोड होते हैं सपने
कहानी संग्रह
लेखक - गीताश्री
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

तपते जेठ में गुलमोहर जैसा
उपन्यास
लेखक - सपना सिंह
मूल्य- 220 रुपये, वर्ष- 2024

पन्नी
उपन्यास
लेखक - ज्योत्स्ना सिंह
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

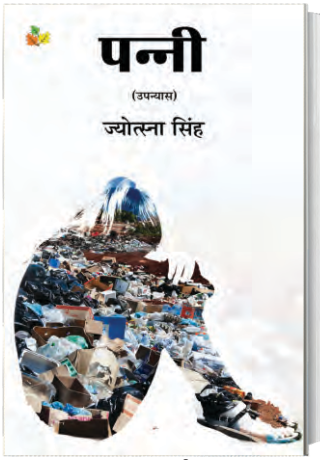

वजूद
उपन्यास
लेखक - अंशु प्रधान
मूल्य- 450 रुपये, वर्ष- 2024

अष्टछाप के अर्वाचीन कवि
कविता संकलन
संपादक - पंकज पाठक
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

मदिरा बरसे नभ से
वर्षा गीत संग्रह
लेखक - विजया भारती
मूल्य- 220 रुपये, वर्ष- 2024

मधुमास उतर आया
नाटक
लेखक - काशीराम सोनी
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

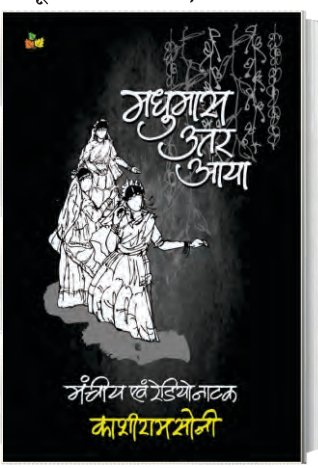

विमर्श- ये वो सहर तो नहीं
आलोचना
संपादक - शहरयार
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

माँ-बेटी
कविता संग्रह
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 220 रुपये, वर्ष- 2024

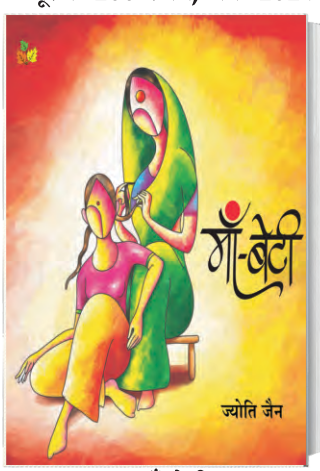

दिल चाहता है
कविता संग्रह
संपादक - विनोद कुमार
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

पुरवाई के झरोखे से
साक्षात्कार संग्रह
संपादक - नीलिमा शर्मा
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2024

रौशनी उस पार
ग़ज़ल संग्रह
लेखक - ज़हरा क़रार
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

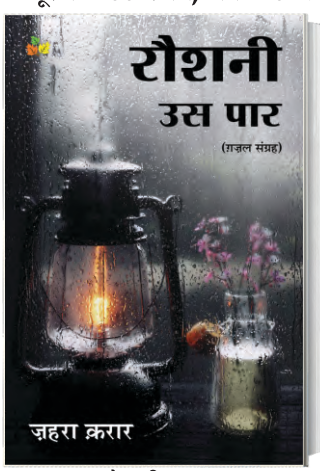

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 2-8, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेंसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372
मोबाइल- +91-9806162184 (शहरयार), +91-6265665580
व्हाट्सएप- +91-8959446244, ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com
वेबसाइट- www.shivnaprakashan.com

Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com
WhatsApp +91-8959446244
twitter https://twitter.com/shivnac
facebook https://www.facebook.com/shivna.prakashan
YouTube https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
available at amazon https://www.amazon.in/s?me=A17JJYGSVM2CEV

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2024-25 का सत्रारंभ समारोह। अतिथिगण- श्री अखिलेश राय, श्री शंकर प्रजापति, श्री अनिल पालीवाल, श्रीमती राजकुमारी पालीवाल, श्री सुनील भालेराव तथा श्रीमती अनीता भालेराव।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2024-25 का सत्रारंभ समारोह। अतिथिगण- श्री अखिलेश राय, श्री शंकर प्रजापति, श्री अनिल पालीवाल, श्रीमती राजकुमारी पालीवाल, श्री सुनील भालेराव तथा श्रीमती अनीता भालेराव।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2024-25 का सत्रारंभ समारोह। अतिथिगण- श्रीमती रश्मि व्यास, श्रीमती रेखा पुरोहित, सुश्री नीता सिंह, श्रीमती स्वाति भदौरिया, श्रीमती मुफ़्सिला मसूद तथा सुश्री प्रियंका दोहरे।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2024-25 का सत्रारंभ समारोह। अतिथिगण- श्रीमती रश्मि व्यास, श्रीमती रेखा पुरोहित, सुश्री नीता सिंह, श्रीमती स्वाति भदौरिया, श्रीमती मुफ़्सिला मसूद तथा सुश्री प्रियंका दोहरे।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-490372, Mobile 09806162184, 08959446244 07828313926

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।